ABDUL BISMILLAH KE UPANYASON KA

SAMAJSHASTRIYA ADHYAYAN

A THESIS SUBMITTED TO THE UNIVERSITY OF HYDERABAD IN PARTIAL FULFILMENT OF THE REQUIREMENT FOR THE AWARD OF THE DEGREE OF DOCTOR OF PHILOSOPHY IN HINDI

Researcher
RUPADHAR GOMANGO

Supervisor
PROF. RAVI RANJAN

2022

Department of Hindi, School of Humanities
University of Hyderabad
Hyderabad - 500 046
Telangana
India

अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबंध

शोधार्थी

रूपधर गोमांगो

शोध-निर्देशक

प्रो. रवि रंजन

2022

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद- 500046

तेलंगाना

भारत

DECLARATION

I Rupadhar Gomango (Registration no. 13HHPH18) hereby declare that the thesis entitled '**ABDUL BIMILLAH KE UPANYASON KA SAMAJSHASTRAIYA ADHYAYAN**' (**अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन**)submitted by me under the guidance and supervision of Professor Pro. Ravi Ranjan is a bonafide research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in shodhganga/ INFLIBNET.

Date: Signature of Student

Rupadhar Gomango

Regd. No. 13HHPH18

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **'ABDUL BIMILLAH KE UPANYASON KA SAMAJSHASTRAIYA ADHYAYAN''** **(अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन)** submitted by **RUPADHAR GOMANGO** bearing regd. No. **13HHPH18** in partial fulfilment of the requirements for the award of Doctor of Philosophy in Hindi is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance which is a plagiarism free thesis.

As far as we know the thesis has not been submitted previously in part or full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of Supervisor **Head of Department**

Dean of the School of Humanities

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **'ABDUL BISMILLAH KE UPANYASON KA SAMAJSHASTRIYA ADHYAYAN (अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन)** submitted by **MR. RUPADHAR GOMANGO** bearing Regd. No. **13HHPH18** in partial fulfilment of the requirements for the award of DOCTOR OF PHILOSOPHY in HINDI is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

This thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or institution for award of any degree or diploma.

Further, the student has the following publication(s) before submission of the thesis for adjudication and has produced evidence for the same in the form of acceptance letter or the reprint in the relevant area of his research:

A. Published research paper in the following publications:

1. 'Abdul Bismillah Ji Ke Upanyason Me Stree Jeevan Ki Vyatha-Katha'. (ISSN: 2277-2014), Chapter- 3.
2. 'Abdul Bismillah Ke Upanyason Me Badalte Jeevan Mulya'. (ISSN: 2394-2207), Chapter- 3
3. 'Abdul Bismillah Ke Upanyason Me Dharmik Evam Sampradayik Samasyayen'.(ISSN-2454-6283)
4. 'Abdul Bismillah Ke Upanyason Me Chitrit Arthik Samasyayen'.(ISSN-2454-6283)
5. 'Samar Shesh Hai- Ek Nimn Varg Ki Yatim Ki Gatha'. (ISSN-2454-6283)

B. Research Paper presented in the following conferences:

1. Abdul Bismillah ke Upanyason me Abhivyakt Stree Jeevan' (National), Banaras Hindu University, Varanasi, Uttar Pradesh.
2. Abdul Bismillah Ke Upanyason me Alpsankhyak Vimarsh Aur Sampradayik Samasya, (International), Rajkiy Mahila

Mahavidyalay, Hisar and Guganram Educational end Social Welfare Society, Bhivani, Haryana

Further the student has passed the following courses towards fulfilment of coursework requirement for Ph.D.

Course Code	Name	Credit	Result
1. 801	Critical Approches to Research	4	Pass
2. 826	The Ideological Background of Hindi Literature	4	Pass
3. 827	Practical Review-1	4	Pass
4. 828	Practical Review -2	4	Pass

Supervisor **Head of Department** **Dean of the School**

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

भूमिका **I-V**

प्रथम अध्याय- अब्दुल बिस्मिल्लाह: जीवन और साहित्य **1-41**

1.1 अब्दुल बिस्मिल्लाह का व्यक्तित्व

1.2 अब्दुल बिस्मिल्लाह का कृतित्व

1.3 पुरस्कार एवं सम्मान

द्वितीय अध्याय- साहित्य का समाजशास्त्र और उपन्यास: सैद्धांतिक विवेचन **42-78**

2.1. समाज: अर्थ और परिभाषा

2:2. साहित्य का समाजशास्त्र

2.3. उपन्यास का समाजशास्त्र

तृतीय अध्याय- अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में सामाजिक समस्या का चित्रण

79-153

3.1 उपन्यासों की अंतर्वस्तु

3.2 आर्थिक समस्याएँ

3.3 धार्मिक एवं सांप्रदायिक समस्याएँ

3.4 नारी-जीवन

3.5 बदलते जीवन मूल्य

चतुर्थ अध्याय- उपन्यासों का रूपगत वैविध्य **154-228**

4.1 कथा-निर्माण की प्रक्रिया

4.2 पात्र-योजना

4.3 भाषा शैली

4.4 लोक गीतों का समावेश

4.5 इस्लामी पुरागाथाओं से संबन्धित पारिभाषिक शब्दावली

उपसंहार **229-235**

संदर्भ ग्रंथ-सूची **236-244**

- आधार ग्रंथ-सूची
- सहायक ग्रंथ-सूची
- वेबसाईट/ ब्लॉग
- पत्रिकाएँ

भूमिका

समकालीन उपन्यासकारों में अब्दुल बिस्मिल्लाह का महत्वपूर्ण स्थान है। वे जनपक्षधर के ऐसे उपन्यासकार हैं जो अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों को साहित्य के केन्द्र में रखते हैं। अपनी रचनशीलता के माध्यम से वे हिन्दी साहित्य को व्यापक रूप से प्रभावित कर रहे हैं। उनकी कृतियों में परम्परा और प्रगतिशील चेतना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उनके कथा साहित्य में मध्यवर्गीय एवं निम्नमध्यवर्गीय जीवन जीने वाले मजदूरों की दुर्दशा एवं अनेक सम्प्रदायों, जातियों उपजातियों में बंटे भारतीय समाज की झलक को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। देश को बांटने वाली ताक़तें एक तरफ हिंसा का सहारा लेती हैं तो वहीं दूसरी तरफ धर्म और जाति के नाम पर भेदभाव करती है। इसीलिए अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने उपन्यासों में सामाजिक एवं धार्मिक पाखंड का व्यापक विरोध करते हैं। वे हिन्दू एवं मुस्लिम धर्म के पाखंड की मुखालफत अपनी लेखनी के माध्यम से कर रहे हैं।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों का लोक सामान्यतः पूर्वी उत्तर प्रदेश है, जहाँ सामन्ती शोषण और भ्रष्टाचार दोनों दिखाई देता है। कथाकार ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि ग्रामीण विकास योजना के अंतर्गत कई योजनाएँ बनाई जाती हैं, करोड़ों रूपयों का व्यय सरकार द्वारा किया जाता है, लेकिन उसका परिणाम शून्य दिखाई देता है। योजनाओं का लाभ सही पात्रों तक नहीं पहुँचाया जाता जिससे उसका गलत उपयोग किया जाता है। आजादी के सात दशक बाद भी गांवों की सूरत में बहुत अधिक बदलाव नहीं हुआ। अब्दुल बिस्मिल्लाह के कथा साहित्य में एकांगी विकास, उच्चवर्ग और अधिकारियों द्वारा किया गया भ्रष्टाचार, प्रशासनिक अधिकारी और नेताओं की मिली-भगत आदि अनेक कारणों से भारतीय गाँव और वहाँ के मजदूर तथा नगरों के मिल-मजदूर विकास से अछूते रहे हैं। सामान्य मजदूरों के विकास के लिए नियोजन-बद्धता, विकास, वर्ग चेतना और संघटन आदि को बढ़ावा देने की बात करते हैं।

अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने कथा साहित्य में मानवीय गरिमा एवं संवेदना को केंद्र में रखते हैं, जहाँ आम आदमी भी सम्मान का हकदार व आकांक्षी है। उनके उपन्यासों में 'समर शेष हैं', 'ज़हरबाद', 'दंतकथा', 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया,' 'कुठाँव,' 'अपवित्र आख्यान,' 'मुखड़ा क्या देखे' का महत्वपूर्ण स्थान है। उनके कथा साहित्य में अलग- अलग संस्कृतियों की धाराएँ दिखाई देती हैं, पर वे कही से भी एक दूसरे की संस्कृति को बड़ा या छोटा नहीं दिखाते। उनके कथा साहित्य में 'विरूद्धों का सामंजस्य' दिखाई देता है। उन्होंने समसामयिक मुद्दों को केन्द्र में रखकर आधुनिक

सामाजिक व्यवस्था का एक व्यापक स्वरूप प्रस्तुत किया है। इस तरह बनारस के ये बुनकर अपनी व्यापक उपस्थिति से एक बुनकर वर्ग का निर्माण करते हैं। इन बुनकरों को ही यहां की क्षेत्रीय भाषा में बिनवईया या बिनकार कहा जाता है जो उपन्यास में दृष्टगत भी है। कथाकार ने यहाँ जीवन की एक नयी तस्वीर को प्रस्तुत किया है। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास की हर घटना का आपस में गहरा सम्बन्ध हैं। परिवेश के अनुरूप ही अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने चरित्रों का गठन किया है। इस उपन्यास में लाखों बुनकरों की जीवन की त्रासदी को कलात्मक तरीके से प्रस्तुत किया गया है। कथाकार ने इकबाल के माध्यम से तमाम ज्वलन्त मुद्दों को सामने रखा है। ये प्रश्न बुनकरों के जीवन से गहरे रूप में जुड़े हुए। देश-विदेश तक बनारसी साड़ियों की चमक जिनके बदौलत आयी है वे खुद कैसा अन्धकारमय जीवन जी रहे हैं यह इस उपन्यास का मूल है। मतीन, भोला, लतीफ, हनीफ, इकबाल, हाजी अमीरूल्ला, गजाधर प्रसाद आदि महत्वपूर्ण पात्रों के माध्यम से बुनकर व्यवसाय से जुड़े लोगों की मार्मिक कहानी को सर्वथा नये रूप में प्रस्तुत किया गया है जहाँ ग्रामीण तथा नगरीय जीवन के निम्न वर्ग में अन्याय-अत्याचार, शोषण आदि के उपरांत भी जीवन- यापन की दुर्दम्य इच्छाशक्ति का प्रखर रूप दिखाई देता है। आपसी संबंधों में टूटन एवं विघटन के पश्चात इनमें आंतरिक भाव दिखाई देते हैं।

स्वतंत्रता के सत्तर वर्षों के पश्चात आज भी देश के दूर-दराज के गांवों, पिछड़ी जातियों, गरीब मुसलमानों में शिक्षा की दशा बहुत शोचनीय बनी हुई है। उच्च वर्ग द्वारा शोषण और ईमानदारी का अभाव इसका मूल कारण है। अशिक्षा के अभाव में रूढ़िवादी परंपरा, आस्था और अंधविश्वास का प्रभाव अधिक है। धीरे-धीरे वहाँ प्राथमिक सुविधाएँ उपलब्ध हो रही हैं और उनमें बदलाव के चिह्न नजर आने लगे हैं, लेकिन अभी इसकी रफ्तार बहुत धीमी। लेखक ने मुस्लिम समाज में तलाक, पर्दा प्रथा, हलाला, मेहर आदि समस्याओं का अंकन किया है। समाज की इन समस्याओं को वे धार्मिक कोढ़ और धर्मांधता तथा अंधविश्वास मानते हैं। वे मुस्लिम समाज की रूढ़वादी परंपराओं का मुखर विरोध करते हैं। साथ ही हिंदू समाज की विवाह व्यवस्था में पनप रही दहेज प्रथा का भी पर्दाफाश करते हैं। मुस्लिम समाज में प्रचलित बहु विवाह प्रथा और तलाक संबंधी गलत मान्यताओं को भी लेखक ने उजागर किया है। इस्लाम को एक पाक मज़हब माना जाता है और उसमें सभी को 'मसावत' यानी बराबरी का दर्जा दिया जाना अनिवार्य है, पर सामाजिक सच्चाई इससे कोसों दूर है। समाज में प्रचलित विषमता का बहुत ही कटु सत्य लेखक ने समाज के सामने प्रस्तुत किया है। उन्होंने इसके माध्यम से मुस्लिम समाज में उच्च और निम्न को भी यथार्थ धरातल पर स्पष्ट किया है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने कथा साहित्य में यथार्थ को बखूबी उद्घाटित किया है। इनका कथा साहित्य धर्मनिरपेक्षता की कसौटी पर खरा उतरता है। इनके साहित्य में हिंदू-मुस्लिम

और अन्य जाति-धर्मो के साथ गाँव और नगर तथा वहाँ के पिछड़े व सामान्य वर्ग के चित्रण के साथ सेठ-साहूकार, महाजन-जमींदार, पूँजीपतियों को खुली चुनौती दी गयी है जो समाज को तहस-नहस करने पर तुले हैं। उनका केवल एक ही ध्येय है कि किसी तरह से आम जन का शोषण जारी रहे जिससे उनके मुनाफे में लगातार बढ़ोत्तरी होती रहे। अब्दुल बिस्मिल्लाह की वैचारिकी मार्क्सवाद का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद है, इसलिए इनके कथा साहित्य में आर्थिक आयाम पर विशेष रूप से बात हुई है। आर्थिक शोषण जाति एवं धर्म से ऊपर बढ़ कर होता है। जाति एवं धर्म के नाम पर शोषक वर्ग शोषितों से कोई हमदर्दी नहीं रखते। नगरों तथा गांवों के निम्नवर्ग में आर्थिक विषमता को बहुत ही स्पष्ट रूप से चित्रित करते हैं। व्यवसाय तथा व्यापार का क्षेत्र चंद उच्चवर्गीय, पूँजीपति , सेठ, पंडित-पुरोहित और सामंतों के हाथों में है। इसलिए यहां का आमजन सामान्य मजदूर वर्ग पूँजीपति यों के हाथों पिस जाता है। इस आमजन के विकास हेतु सरकार द्वारा अनेक प्रयत्न किए जाते हैं, लेकिन सुविधाओं का लाभ इन तक न पहुँचकर कुछ खास लोगों तक ही पहुँचता है। चंद लोग इसका लाभ उठाकर अपने-आपको बड़ा बनाने में लगे हैं। इनकी सुख-सुविधाओं को हड़पकर उच्चवर्ग और भी संपन्न बनता जा रहा है। आर्थिक संपन्नता के कारण उच्चवर्गीय और गाँव के पूँजीपति , सेठ साहूकारों द्वारा निम्नवर्गीय जीवन व्यतीत कर रहे लोगों की स्त्रियों का भी शोषण किया जाता है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को कुल चार अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय ' अब्दुल बिस्मिल्लाह : जीवन और साहित्य' है। इस अध्याय में अब्दुल बिस्मिल्लाह के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ ही उनके प्रारंभिक जीवन परिवेश, शिक्षा-दीक्षा एवं उनके उस जीवन संघर्ष को दिखाया गया है, जहां वे जीविकोपार्जन के लिए प्रारम्भिक अवस्था में संघर्ष कहते हैं। इसके साथ ही उनके रचनात्मक संघर्ष को दिखाया गया है जहाँ से पल-पल के अनुभवों को वे शब्दों के माध्यम से अपने कथा साहित्य में पिरोते हैं। शोध प्रबन्ध का दूसरा अध्याय 'साहित्य का समाजशास्त्र और उपन्यास : सैद्धांतिक विवेचन' है। इस अध्याय के अन्तर्गत समाजशास्त्र की परिभाषा एवं साहित्य से समाजशास्त्र के संबंध को दिखाया गया है। साहित्य को भारतीय एवं पाश्चात्य आलोचक किस रूप में देखते हैं इसे भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। उपन्यास का उद्भव एवं विकास किन परिस्थितियों में हुआ, इस विधा को भारतीय एवं पाश्चात्य नजरिए से देखने की कैसी की गयी है, इन मुद्दों पर भी विचार किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबंन्ध का तृतीय अध्याय 'अब्दुल बिस्मिल्लाह के कथा साहित्य में सामाजिक समस्या' का चित्रण है। यह इस शोध प्रबन्ध का महत्वपूर्ण व मुख्य अध्याय है जो पूर्णत: अब्दुल बिस्मिल्लाह के कथा साहित्य की अन्तर्वस्तु एवं कथावस्तु को सामने लाता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह समकालीन उपन्यासकारों में अपने महत्वपूर्ण कथानकों के साथ उपस्थित होते हैं। इसके साथ ही उन्होंने भाषा एवं विषयवस्तु को जीवंत बनाने के लिए अनेक स्थानों

पर अलंकारों, बिम्बों, प्रतीकों आदि के साथ ही लोकोक्तियों, मुहावरों एवं गीतों का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। इस तरह लेखक के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं भाषा संबंधी दृष्टिकोण को समग्रता में दिखाने का प्रयास किया गया है। शोध प्रबन्ध का चतुर्थ अध्याय ' अब्दुल बिस्मिल्लाह के कथा साहित्य का रूपगत वैशिष्टय' है। इसके अन्तर्गत कथावस्तु की निर्माण प्रक्रिया, पात्र योजना, भाषाशैली, लोकगीतों का प्रयोग, इस्लामीक पुरागाथाओं से संबंधित शब्दावली को शामिल किया गया है। अब्दुल बिस्मिल्लाह की भाषा पर बहुत गहरी पकड़ है। परिस्थितियों के भाव बोध को कैसे प्रस्तुत किया जाता है, इसे वे बखूबी जानते हैं। भाषागत वैशिष्टय के कारण ही 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' और विशेष प्रकार के शिल्प के कारण 'दंतकथा' को हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व प्राप्त है। अब्दुल बिस्मिल्लाह देश काल एवं परिवेश से जुड़ी हुई भाषा का प्रयोग अधिक करते हैं जिस कारण इनके यहाँ कथावस्तु एवं परिवेश का जीवन्त चित्रण दिखाई देता है।

मुस्लिम जीवन के यथार्थ रूप को प्रतिबिम्बित करने के लिए इन्होंने मुस्लिम समाज में प्रचलित शब्दों को माध्यम बनाया है। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया', 'कुठाँव', 'समर शेष है' आदि उपन्यास ऐसी ही भाषिक शैली के सर्वोत्कृष्ट उपन्यास हैं। चौथे अध्याय के माध्यम से अब्दुल बिस्मिल्लाह के लेखन की विविध शैलियों को भी दिखाया गया है जिसमें संवादात्मक, वर्णनात्मक एवं आत्मकथात्मक शैली का महत्वपूर्णस्थान है। 'दंतकथा' उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है जिसमें कथाकार ने एक मुर्गे के माध्यम से शोषित मानव समाज का जीवंत यथार्थ प्रस्तुत किया है। उपसंहार के अन्तर्गत अब्दुल बिस्मिल्लाह जी के कथा साहित्य में अभिव्यक्त उनकी सामाजिक चेतना से सम्पन्न विचारधारा को दिखाया गया है, जहाँ वे पूर्वाग्रहों से मुक्त दिखाई देते हैं। वे भारतीय समाज का समग्रता में मूल्यांकन करते हैं तथा विघटनकारी शक्तियों की जमकर मुखालफत करते हुए दिखाई देते हैं।

मैं अपने इस शोध प्रबंध को सामाजिक प्रक्रिया का व्यक्तिगत अंश मानता हूँ। इस शोध कार्य का पूरा खाका अब्दुल बिस्मिल्लाह के साहित्य और समाज के अंतर्संबंधों को जानने का आकदमिक कार्य-व्यवहार का परिणाम है जो मुझे मार्गदर्शन, निर्देशन और सहयोग के रूप में मिला है।

इस शोध की संकल्पना के बीज मुझे अपने शोध निर्देशक प्रो. रवि रंजन सर के द्वारा मिले हैं, जिसके कारण मैं इस विषय के बारे में सोचने का साहस जुटा पाया। शोध निर्देशक के मार्गदर्शन से मुझे साहित्य और समाज के अंतर्संबंधों को समझने का एक नजरिया प्राप्त हुआ। मैं सर का हृदय से

आभारी हूँ । मैं अपने विभागाध्यक्ष प्रो. गजेन्द्र पाठक सर और विभाग के सभी गुरुजनों का हृदय से आभारी हूँ जिनका सहयोग एवं आशीर्वाद मुझे समय-समय पर मिलता रहा है।

मैं अपने माता-पिता के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुझे इस लायक बनाया। उनका स्नेहिल प्यार और भरोसे का मैं सदा ऋणी रहूँगा। मैं अपने सभी मित्रों एवं आत्मीयजनों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिनके सहयोग के बिना इस शोध-प्रबंध का पूर्ण होना मुश्किल था। उन सभी का आभार जिनका सहयोग इस शोध-प्रबंध को आकार देने में मिला है।

- रूपधर गोमांगो

प्रथम अध्याय

अब्दुल बिस्मिल्लाह : जीवन और साहित्य

किसी भी रचनाकार के रचना संसार से गुजरना उसके विविध आयाम एवं विधाओं का पड़ताल करना उस रचनाकार की कृतियों के वैविध्य को समझना है। साहित्यिक कृतियों का पड़ताल एकाकी पड़ताल नहीं होती है, बल्कि इससे गुजरते हुए रचनाकार के जीवन वैविध्य से भी गुजरना होता है। किसी भी रचनाकार का जो रचना संसार निर्मिति होता है उसमें रचनाकार के व्यक्तित्व का भी अहम योगदान होता है। रचना संसार सामाजिक विषमताओं एवं मानवीय संवेदनाओं के समिश्रण के साथ ही तैयार होता है। साहित्यिक सृजनशीलता महज कल्पना के परवाज़ पर ही सवार होकर आगे नहीं बढ़ती, बल्कि इसके लिए यथार्थ की जमीन ज्यादा माकूल होती है। अब्दुल बिस्मिल्लाह का रचना संसार यथार्थ की भाव भूमि पर अंकुरित हुआ है और इसी उबड़-खाबड़ जमीन पर पल्लवित भी होता रहा है।

लेखक के जीवन और साहित्य के बीच तारतम्य ऐसा होता है कि इसे अलगाया नहीं जा सकता। साहित्य में लेखक का जीवन और जीवन-दर्शन, दोनों का समावेश होता है। लेखक का जीवन जिस अभावग्रस्तता, बेबसी, लाचारी, गरीबी, दु:ख एवं पीड़ा के साथ गुजरा वह सभी साहित्य में भी उद्घाटित होता है। जीवन कोई एकालाप नहीं है, बल्कि इसमें सप्त स्वर हैं, इंद्रधनुषी है। दु;ख-सुख, हर्ष-विषाद सभी का मेल है, सभी का संयोजन है। किसी के हिस्से में दु;ख की अनुभूति ज्यादे गहरी होती है तो सुख किसी मेहमान की तरह आवाजाही मात्र है। अब्दुल बिस्मिल्लाह का जीवन इन दोनों स्तरों से होकर गुजारा है। दु;ख की गहन अनुभूति इनके साहित्य में दृष्टिगत होती है। अभावग्रस्तता इनके साहित्य का केंद्रीय तत्व है। लेखक का जीवन जिस तरह से रहा है वह इनके लेखन में भी स्पष्ट रूप से दिखता है। साहित्य को लेखक के जीवन से काटकर नहीं देखा जा सकता। जीवन के हर एक पहलू को भले ही साहित्य उसी रूप में उद्घाटित न करे, लेकिन इसका विलगाव भी संभव नहीं है। जीवन यथार्थ की भावभूमि कई बार साहित्य में कल्पना के साथ भी दृष्टिगोचर होता है। ऐसे में साहित्यकार अपने आस-पास के जीवन एवं स्वयं के जीवन का ऐसा मिश्रण तैयार करता है जिसे बहुत आसानी से अलग-अलग नहीं किया जा सकता। लेखक का यही काम्य है कि वह

अपने जीवन को इस रूप में प्रस्तुत करे कि वह उसका जीवन न होकर आमजन के जीवन जैसा लगे ।

1.1- अब्दुल बिस्मिल्लाह का व्यक्तित्व

आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों में अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने अनूठे व्यक्तित्व के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार हैं। इनकी लेखनी साहित्य के दोनों रूपों गद्य और पद्य में चली, लेकिन गद्य विधा खासकर कथा साहित्य रचने में उनको महारत हासिल है । इनके कथा साहित्य में जीवन का हर रंग मौजूद है । उपन्यासों में लेखक ने जीवन संघर्ष को जिस विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है वैसा कविताओं में नहीं हो पाया है । वैसे भी आधुनिक युग में कथा साहित्य ज्यादा प्रचलित ही है। कथा साहित्य में यथार्थपरकता का प्रभाव अधिक रहता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने यथार्थपरक साहित्य के लिए विशेष रूप से जाने जाते हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आलोचना, अनुवाद, वैचारिक लेख आदि विविध विधाओं के माध्यम से अपनी सृजनशीलता को अभिव्यक्त किया है । इनका रचना संसार व्यापक और विस्तृत है । मार्क्सवादी जीवन दृष्टि के यथार्थपरक रचनाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में आम आदमी का जीवन केंद्र में है । उपन्यासकार ने अपने साहित्य में आम जन-जीवन के हर उस पहलू को चित्रित किया है जो जीवन में कभी न कभी जरूर घटित होता है । समाज की जितनी भी विसंगतियाँ है चाहे वह जाति, धर्म, ऊँच-नीच, अमीरी-गरीबी या लिंगगत हो, सभी को बहुत ही बारीक रूप में लेखक ने उद्घाटित किया है । ग्रामीण जीवन के सामाजिक ताने-बाने में जो कमी आई है उसके पहलुओं का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है । उन्होंने धर्म और जाति के प्रश्न को पूँजी से जोड़कर उसका मार्क्सवादी विश्लेषण अपने साहित्य में किया है । आम आदमी के अस्तित्व पर किस तरह से संकट हैं, पूँजीवाद के नाम पर उसका शोषण किस तरह से किया जा रहा है और इस शोषण में धर्म का गठजोड़ किस रूप में हुआ है, इसे लेखक बेपर्दा करता है । अब्दुल बिस्मिल्लाह की चिंता आमजन के दु:खों व शोषण को कम करने की रही है । इसके लिए वे शोषितों की एकता व संघर्ष की बात करते हैं ।

अब्दुल बिस्मिल्लाह एक सशक्त कथाकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। वे समकालीन श्रेष्ठ साहित्यकार होने के साथ ही एक कलाकार, पत्रकार, विचारक, अनुवादक, गहन अध्येता, संपादक, सामाजिक कार्यकर्ता एवं प्राध्यापक हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह के साहित्य का में सिर्फ मार्क्सवादी विचारधारा नहीं है, बल्कि उनके जीवनानुभवों का दर्शन भी है। लेखक ने अपने अनुभव से जो कुछ भी जाना-समझा उसका विश्लेषण भले ही मार्क्सवादी विचारधारा के आलोक में किया, लेकिन उसमें निहित भाव-बोध विशुद्ध भारतीय है। कथा भूमि स्थानीय एवं जीवन के बहुत करीब है। ऐसे में जरूरी हो जाता है कि सबसे पहले साहित्यकार के व्यक्तित्व को जाना-समझा जाय। इसके बिना कृतित्व का सही आकलन नहीं किया जा सकता। साहित्य केवल विचार नहीं है वरन् जीवनानुभाव भी है। साहित्य में दोनों का अनुपात होना लाजमी है। किसी एक के बिना साहित्य का वह स्वरूप नहीं रह पाएगा। या तो वह वैचारिक लेख होकर रह जाएगा या फिर जीवनानुभव। इसलिए किसी भी साहित्यकार के साहित्य का मूल्यांकन उसके व्यक्तिगत जीवन के साथ ही होना चाहिए।

जन्म/जन्मस्थान-

सरकारी कागजात के अनुसार अब्दुल बिस्मिल्लाह का जन्म 5 जुलाई 1949 (जबकि सही तारीख 3 अगस्त 1950 को) इलाहाबाद जिले के बलापुर नामक गाँव में हुआ। इनके पिता वली मुहम्मद एवं माँ करीमन बीबी थीं। अब्दुल बिस्मिल्लाह के जन्म के पूर्व इनकी माँ की तीन संताने जन्म के कुछ महीनों के बाद ही मर गयी थीं। इस बात को लेकर इनकी माँ बहुत दु;खी रहती थी। इस संदर्भ में अब्दुल बिस्मिल्लाह स्वयं लिखते हैं- "मुझसे पूर्व मेरी माँ के तीन बच्चे हो चुके थे, मगर उनमें से कोई भी जीवित नहीं बचा था। एक वर्ष से अधिक की उम्र किसी ने नहीं पाई थी।"[1] स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव और कुपोषण इसमें सबसे बड़े कारण थे। अब्दुल बिस्मिल्लाह जब अपने माँ के गर्भ में थे तो उनकी माँ बहुत परेशान रहती थी। अपने इस बच्चे को वे किसी भी तरह से खोना नहीं चाहती थी। उसी दौरान गाँव में एक फकीर आया। फकीर को कुछ देने के लिए इनकी माँ बाहर

[1]बाबा रसूल शेख, अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में मुस्लिम समाज, पृष्ठ-1

आई तो फकीर ने दुआ दीं। फकीर ने कहा- 'तुम्हारा बेटा इकबालमंद हो बेटी।' यह सुनते ही वह रोने लगीं, क्योंकि उनका कोई बेटा नहीं था। फकीर के जब रोने का कारण पूछा तो माँ ने सारी बात बता दी। तब फकीर ने कहा- "मैंने तो दुआ इस बच्चे को दी है, जो तुम्हारे पेट में है। यह जिएगा और इकबालमंद होगा। हाँ पैदा होने पर इसका नाम 'बिस्मिल्लाह' रखना।"

नामकरण-

जैसा कि ऊपर बताया गाया है कि एक फकीर ने इनके जन्म से पूर्व ही दुआएँ दी थी और बच्चे का नाम 'बिस्मिल्लाह' रखने को कहा था। इसलिए जन्म के उपरांत इनका नाम बिस्मिल्लाह ही रखा गया। बाद में जब वे कुछ बड़े हुए और जब स्कूल में दाखिले का समय आया तो गुरुजी ने 'बिस्मिल्लाह' से पहले 'अब्दुल' जोड़ दिया। अब इनका नाम 'अब्दुल बिस्मिल्लाह' हो गया। इनके पिता जी ने भी इस पर कोई एतराज नहीं जताया, बल्कि इसे गुरू की कृपा समझकर स्वीकार कर लिया। इस तरह फकीर का दिया हुआ 'बिस्मिल्लाह' और गुरू जी का दिया नाम 'अब्दुल्ल' को मिलाकर 'अब्दुल बिस्मिल्लाह' रखा गया।

माता-पिता-

अब्दुल बिस्मिल्लाह की माँ का नाम करीमनबी था। इनका परिवार बहुत बड़ा किन्तु गरीब था। माँ की शिक्षा-दीक्षा नहीं हुई थी यानी अनपढ़ थी, लेकिन बहुत ही संस्कारशील एवं संघर्षशील महिला थी। पति की नौकरी छूट जाने पर व व्यापार में घाटा लगने के बाद स्वयं ही चूड़ी बेचना शुरू किया। घर-गृहस्थी चलाने के लिए माँ स्वयं आगे आई थीं। संस्कारशीलता के कारण ही पति द्वारा अन्याय अत्याचार सहती रही, लेकिन प्रतिकार नहीं किया। कम उम्र में ही माँ की मृत्यु हो गई।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के पिता का नाम वलीमुहम्मद था। वे उर्दू, अरबी और फारसी के जानकार थे। इनका परिवार रसूखदार था। पिता ने शौकिया तौर पर वन विभाग में नौकरी की थी, परंतु जंगल विभाग के अधिकारियों के साथ जमी नहीं। इनकी यह नौकरी अपने ससुराल क्षेत्र में, इसलिए नौकरी छोड़ने के बाद वे अपने गाँव चले आए। गाँव आकार चमड़े का व्यापार शुरू किया, लेकिन

इसमें भी वे सफल नहीं हुए। बाद में हड्डियों का चुरा बनाने एवं मछलियों का कारोबार शुरू किए इसमें भी उन्हें असफलता ही हाथ लगी। बाद में वे राजनीति की तरफ मुड़े, लेकिन आखिर तक अच्छी कमाई नहीं कर सके। आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होने के कारण अक्सर बीवी से लड़ाई होती थी। गरीबी की बिकराल होती स्थिति के कारण ही उनकी माँ ने अपना पुश्तैनी पेशा चूड़ी बेचना शुरू किया।

बचपन-

अब्दुल बिस्मिल्लाह का बचपन मध्य प्रदेश के मंडला जिले के हिनौता नामक गाँव में बीता। यहीं इनका ननिहाल था और पिता जी भी इसी इलाक़े में नौकरी करते थे। अतः उनका का बचपन अपने ननिहाल में ही व्यतीत हुआ है । वे बचपन से ही अब्दुल बिस्मिल्लाह को दुश्वारियाँ उठानी पड़ी । इनका बचपन बहुत दयनीय स्थिति में गुजरा । वे खाने-पीने के लिए तरसते रहे । न ढंग के कपड़े होते थे और न ही चप्पल । बचपन में कोई भी ख्वाहिश पूरी नहीं हो पाती थी । वे हर चीज के लिए तरसते रहते थे । पैसे की कमी के कारण पिता ने भी कभी उनकी ख्वाइशों पर ध्यान नहीं दिया था । बालक बिस्मिल्लाह को अपने माता-पिता में होने वाले झगड़ों तथा मारपीट के कारण भी परेशानियाँ उठानी पड़ती थीं।

अब्दुल बिस्मिल्लाह का बचपन साधारण परिवारों के बच्चों जैसा भी नहीं गुजरा। बचपन से ही उन्होंने अपने पिता के कामों में हाथ बंटाना शुरू कर दिया था। वे पिता के आदेश का पालन बचपन से करने लगे थे, बचपन में उन्होंने अपने पिता के साथ मछलियां पकड़ीं, चमड़े के कारोबार में हाथ बंटाया और जंगलों में मृत जानवरों की हड्डियाँ बीनने का काम किया है । इस कारण बचपन में खेलकूद से वंचित रहना पड़ा । इसलिए हमउम्र बच्चों के साथ उनकी गहरी दोस्ती नहीं हो सकी । ईद के त्योहार पर जहाँ सभी बच्चे उत्साहित एवं खुश होते थे वही अब्दुल बिस्मिल्लाह पिता के साथ काम करते रहते थे और कोई उत्साह भी नहीं होता था। पुराने कपड़े में ही वे ईद मना लिया करते थे और रिश्तेदारों के यहाँ से आयी हुई सेवैया खाया करते थे। कई बार तो ईद के दिन भी फाकाकसी करनी पड़ती थी

अब्दुल बिस्मिल्लाह बचपन में कई बार बीमार पड़े, लेकिन आर्थिक तंगी के कारण बेहतर ईलाज नहीं हो सका जिसका उनके सेहत पर बुरा प्रभाव पड़ा। अब्दुल बिस्मिल्लाह जब आठवीं कक्षा में थे तभी इनके माता-पिता का देहांत आठ- नौ महीने के अंतराल पर हो गया। बारह वर्ष की उम्र में ही माता-पिता दोनों का साया सर से उठ गया और वे अब अनाथ हो गए। बहुत कम उम्र में ही वे आश्रयहीन हो गए। उनके चाचाओं तथा रिश्तेदार न सहारा बने और न ही कोई सहयोग किया, बल्कि जायदाद हड़पने के लिए षडयंत्र ही करते रहे। ऐसे समय में उनकी सौतेली हिन्दू माँ की लड़की ने कुछ समय के लिए आश्रय दिया। यह आश्रय भी बहुत दिनों तक नहीं रहा। प्रताड़ित होने के बाद भी वे यहाँ रहना चाहते थे, लेकिन रह नहीं पाए और यहाँ से भी उन्हें निकाल दिया गया। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपना बचपन बहुत ही बेबसी, लाचारी, तंगहाली एवं प्रताड़ना में बिताया। 'ज़हरबाद' तथा 'समरशेष है' नामक आत्मकथात्मक उपन्यासों में इनके बचपन का चित्र परिलक्षित होता है।

शिक्षा -

अब्दुल बिस्मिल्लाह की प्रारम्भिक शिक्षा अपने ननिहाल में हुई। इनकी पढ़ाई के लिए घर में कोई तैयार नहीं था जबकि अब्दुल बिस्मिल्लाह की इच्छा पढ़ने की थी। अपनी पढ़ाई के लिए इन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा। पढ़ाई के प्रति दृढ़ इच्छा और अटूट आत्मविश्वास ने इनके हौसले को कम नहीं होने दिया। पढ़ाई के सहारे ही वे बेहतर जीवन की चाहत रखते थे। प्रारम्भिक शिक्षा हिनौता के स्कूल में हुई। इस स्कूल को खुलवाने में इनके पिता की अहम भूमिका थी। छठवीं से आठवीं तक की पढ़ाई दुल्लोपुर (म. प्र.) के मिशन स्कूल में हुई। इस दौरान के माता-पिता की मृत्यु हो गई। इनके जीवन में जो दुश्वारियाँ आई उससे सबसे अधिक उनकी शिक्षा ही प्रभावित हुई। पढ़ाई के लिए वे दर-दर भटकते रहे। कभी इस रिश्तेदार का तो कभी उस रिश्तेदार का दरवाजा खटखटाते पर हर जगह से उन्हें निराशा ही मिली। इस क्रम में उनकी पढ़ाई का सिलसिला टूट गया। अपने स्वाभिमान से समझौता करके भी वे पढ़ाई जारी रखना चाहते थे। वे इस बात से वाकिफ थे कि अगर इन्सानों

की तरह जीवन बिताना है तो उसके लिए शिक्षा बेहद जरूरी है। यही कारण है कि वे विषम परिस्थितियों से जूझते हुए भी पढ़ाई नहीं छोड़ी और प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण की।

अब्दुल बिस्मिल्लाह की आठवीं के बाद आगे की पढ़ाई उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले के लालगंज से हुई। उन्हें अपनी हाईस्कूल की पढ़ाई के लिए सबसे अधिक कष्ट उठाने पड़े। कई बार तो उन्हें भूखे ही सोना पड़ा। वे अपनी बहन तथा बुआ के यहाँ रहकर पढ़ते थे। यहाँ रहना इतना आसान नहीं था। रहने के बदले उन्हें चमड़ों पर नमक लगाना, बीड़ियाँ बनाना, लकड़ियाँ लाना तथा पानी भरना पड़ता था। तब जाकर उन्हें कुछ खाने को मिल पाता था और कई बार तो वह भी नहीं मिलता था। अवहेलना और दुत्कार भरी ऐसे हालत में इंटरमिडिएट की पढ़ाई पूरी की। गरीबी के कारण आगे की पढ़ाई जारी रखना बहुत मुश्किल था, ऐसे में वे नौकरी ढूंढने लगे। इंटर कॉलेज के प्रिंसिपल इन्हें बहुत मानते थे और इनकी जरूरतों को भी पूरा करते थे। इंटरमिडिएट में पूरे स्कूल भर में अब्दुल बिस्मिल्लाह का नंबर सबसे अधिक था। आगे की पढ़ाई जारी रखने के लिए प्रिंसिपल साहब ने काफी प्रेरित किया। इस दौरान उन्होंने स्नातक की शिक्षा भी मिर्जापुर के के. बी. कॉलेज से पूरी की। इस दौरान अब्दुल बिस्मिल्लाह ने कई छोटी-मोटी नौकरियाँ भी की। जिंदगी के उतार-चढ़ावों से गुजरते हुए उन्होंने स्नातक तक की पढ़ाई पूरी कर ली। इस दौरान उन्हें जिस संघर्ष से गुजरना पड़ा वह बहुत ही कष्टदायी था, लेकिन शिक्षा के प्रति उनकी जागरूकता के आगे ये सारे कष्ट कमजोर पड़ गए। आगे की पढ़ाई इलाहाबाद विश्वविद्यालय से की। यहाँ से इन्होंने हिन्दी साहित्य में एम.ए . किया। और बाद में यहीं से डी.फिल की उपाधि भी प्राप्त की।

विवाह तथा पारिवारिक जीवन-

अब्दुल बिस्मिल्लाह जी का विवाह असमत फातिमा से हुआ है। माता-पिता के मृत्यु के पश्चात इन पर कोई विशेष दबाव विवाह के लिए नहीं था। अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद जीवन साथी का चुनाव किया। इनका पारिवारिक जीवन सुखद है। ये अपनी पत्नी को हाशमी नाम से पुकारते हैं। इनके तीन बच्चे शिरी, एकरा और हिलाल हैं।

व्यवसाय-

अब्दुल बिस्मिल्लाह बचपन से ही अपने पिता के साथ काम किया करते थे। माता-पिता की असमय मृत्यु से बचपन में ही इन्हें काम करने पड़े। जीवन जीने के लिए जो संघर्ष इन्होंने किया वह बहुत कम ही लोग कर पाते हैं। आपने नौटंकी मंडली में काम करने से लेकर होटल में बर्तन साफ करने तक का काम किया। छिटफुट अन्य काम भी किए। कभी मजदूरी की तो कभी ट्यूशन भी पढ़ाया। पढ़ाई के प्रति जो लगन थी एवं अध्यापकों के प्रति जो सम्मान था उससे प्रेरित होकर बचपन से ही ये अध्यापक बनना चाहते थे। अब्दुल बिस्मिल्लाह को एक स्कूल में अध्यापन करने की मौका मिल गया। बाद में इलाहाबाद से प्रकाशित 'माया' नामक पत्रिका के उपसंपादक बने। इसके बाद वे कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय हनुमना (म.प्र) में व्याख्याता पद पर नियुक्त हुए। यहाँ उन्होंने महज 16 दिन ही नौकरी की और बनारस चले गए। बनारस में वे एक इंटर कॉलेज में दस साल तक लेक्चरर रहे।

उन्होंने प्रगतिशील विचारों वाली 'कदम' पत्रिका का संपादन किया। इस साहित्यिक पत्रिका को अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने प्रयासों से आगे बढ़ाया। इंटर कॉलेज में पढ़ाने के दौरान ही इनकी इच्छा किसी विश्वविद्यालय में जाकर पढ़ाने की हुई। अपने ज्ञान को व्यापक फ़लक पर लाने के लिए विश्वविद्यालय सबसे मुफीद जगह थी। उनकी यह इच्छा 1984 में जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय से जुड़कर पूरी हुई। यहाँ उन्हें सहायक प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति मिली। यहीं से निकलकर वे 1993 से लेकर 1995 तक 'वार्सा यूनिवर्सिटी (पोलैंड)' में विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में अध्यापन कार्य किया है। पोलैंड में वे हिन्दी भाषा और साहित्य के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के विभिन्न आयामों को लेकर अध्यापन कार्य किया। 1988 में सोवियत संघ कि यात्रा की। 1988 में ही ट्यूनीशिया में सम्पन्न अफ्रो-एशियाई लेखक सम्मेलन में हिस्सा लिया। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने 2003 से 2005 तक मास्को में हिन्दी भी एवं भारतीय संस्कृति का अध्यापन किया।

1. 2- अब्दुल बिस्मिल्लाह का कृतित्व

बहुमुखी प्रतिभा के धनी अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपनी सृजनशीलता को यथार्थता के बहुत करीब रखा। इनके लेखन में जो आमजन की पीड़ा, दु;ख, वेदना, बेबसी, लाचारी, गरीबी, अभाव ग्रस्तता दृष्टिगत होता है वह इनके आस-पास के परिवेश से ही संबंधित है। कथा के पात्र भी इनके जीवन के आसपास के पात्र हैं। अन्य साहित्यकारों की तरह ही अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपना साहित्य सृजन कविता से शुरू किया है। कविता के अलावा उन्होंने कहानी, उपन्यास, नाटक, बाल साहित्य, आलोचना, वैचारिक लेख आदि का सृजन किया। इनके लेखन में आम जनता और खासकर शोषितों एवं महिलाओं के प्रति हमदर्दी है। साथ ही जीवन के प्रति एक आग्रह है कि शोषण की बुनियाद कैसे कमजोर हो और श्रमिकों को उनके श्रम का उचित मेहनताना मिल सके।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के लेखन का दायरा सीमित नहीं है। वे भले ही शोषितों, वंचितों के हिमायती हों, लेकिन कथा में विविधता है। वे कभी ग्रामीण जीवन को व्यक्त कर रहे होते हैं तो कभी शहरी मजदूरों को कथा के केंद्र में ले आते हैं। उनकी कथा के पात्र जीवन के बहुत करीब के लगते हैं। दंतकथा उपन्यास में एक मुर्गे को पात्र बनाकर लेखक ने जो कथ्य प्रस्तुत किया है वह हिन्दी साहित्य में अनूठा है। भ्रष्टाचार एवं सांप्रदायिकता का जो नशा भारतीयों को लगा है उसका बहुत ही बारीक परीक्षण इस उपन्यास के माध्यम से वे करते हैं। इनके लेखन में विचारधारा का आग्रह नहीं दिखता, बल्कि ये कथा को इस रूप में प्रस्तुत करते हैं कि विचारधारा उसमें जुड़ जाती है। अलग से विचारधारा को नत्थी करने की जरूरत नहीं पड़ती। इनकी कथा की शैली ऐसी है कि पाठक का जुड़ाव उससे बहुत आसानी से हो जाता है। इनके पात्र जीवन-संघर्ष को बहुत ही सहज रूप में लेते हैं। शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने वाले पात्र प्रतिक्रांति के पक्षधर न होकर संघर्ष के रास्ते को चुनना अधिक पसंद करते हैं। इनका लेखन जीवन के जितना करीब है उतना ही संघर्ष के भी करीब। इनके सभी उपन्यासों में शोषण के विरुद्ध एक अनुगूंज सुनाई देती है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने जीवन –संघर्ष को जिस रूप में जिया और देखा वहीं इनके कथा साहित्य का वर्ण्य विषय बना। कथा साहित्य से लेकर कविता, अनुवाद एवं संपादन में भी जीवन का उत्स स्पष्ट दिखता है।

उपन्यास-

अब्दुल बिस्मिल्लाह के अभी तक कुल आठ उपन्यास प्रकाशित है। इन सातों उपन्यासों में ‘समर शेष है’, ‘ज़हरबाद’ और ‘मुखड़ा क्या देखे’ मैं शैली में लिखा गया है। ‘झीनी-झीनी बीनी चदरिया’ बनारस के साड़ी बुनकरों की पीड़ा और शोषण को आधार बनाकर लिखा गया है। ‘अपवित्र आख्यान’ और ‘रावी लिखता है’ में मनुष्य जीवन की जिजीविषा है तो वहीं ‘दंतकथा’ के केंद्र में भ्रष्टाचार एवं सांप्रदायिकता है। ‘कुठाँव’ उपन्यास में मुस्लिम जीवन के आडंबरों, जाति व्यवस्था, पदानुक्रम (हैरार्की) एवं स्त्री शोषण व यौनिकता को केंद्र में रखा गया है।

समर शेष है (1984)-

आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया अब्दुल बिस्मिल्लाह का यह पहला प्रकाशित उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखक ने अपने जीवन के एक हिस्से को कथा का आधार बनाया है। बचपन से लेकर युवा अवस्था तक का वर्णन इस तरह किया गया है कि आत्मकथ्य होकर भी आत्मकथा न लगे। यदि लेखक को कोई पहले से नहीं जानता रहेगा तो पाठक यह आत्मकथात्मक उपन्यास न लगकर मैं शैली में लिखा गया उपन्यास लगेगा। उपन्यास का शुरुआत पैतृक गाँव जाने के वर्णन से हुआ है। इलाहाबाद से पहले नैनी स्टेशन उतरकर इक्का गाड़ी में बैठकर जाने का जो चित्र लेखन ने खींचा है वह ग्रामीण जीवन को बखूबी व्यक्त करता है। कच्चे रास्ते से जाता हुआ इक्का धूल उड़ाता हुआ जैसे-जैसे आगे बढ़ रहा है लेखक के मन में एक उत्सुकता जगती जा रही है। यह उत्सुकता अपनी जन्मभूमि को देख लेने की है। लेकिन साथ ही व्याकुलता भी है कि नानी का घर छूटा जा रहा है। इक्का जिस रास्ते से होकर जा रहा है कई जगह उसके किनारे –किनारे पर कंटीली झाड़ियाँ हैं और दूर-दूर तक बगीचों के झुंड दिखाई देते हैं इक्का चल रहा था और बालक बिस्मिल्लाह के जेहन में कल्पना भी उमड़-घुमड़ रहा था।

हर किसी को जिस तरह से अपने जन्म स्थान को देखने-जानने की जो उत्कंठा होती है उसी तरह से अब्दुल बिस्मिल्लाह को भी हो रही थी। जिज्ञासु प्रवृत्ति के बालक के मन में तरह-तरह के सवाल उठ रहे थे। उदास एवं प्रश्नाकुल बालक बिस्मिल्लाह के मन को शांत करने के लिए इनके पिता ने गाँव के बारे में बताना शुरू किया। बलापुर पहुँचने से पहले ही अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने

गाँव के अतीत एवं वर्तमान को जान चुके थे और अपने घर की कल्पना में खोए हुए थे। घर पहुँचते ही घर में रहे भैया और भाभी ने खूब भगत की, लेकिन स्वागत का यह सिलसिला बहुत जल्द ही गुस्से में बादल गया, जब उन्हें लगा कि अब वे यहीं रहने आए हैं। भाभी अपने पति के साथ झगड़ने लगी और उनके साथ दुर्व्यवहार करने लगी।

यहाँ आने के बाद सबसे बड़ा सवाल उनकी पढ़ाई का था। अब्बा मुझे पढ़ा-लिखाकर एक अच्छा मनुष्य बनाना चाहते थे, इसलिए वे काफी परेशान रहते थे। किसी तरह से अब्दुल बिस्मिल्लाह की पढ़ाई का सिलसिला शुरू हुआ था कि अचानक पिता की असमय मृत्यु हो गयी। पिता के असामयिक निधन के बाद उनका जीवन पूरी तरह से तबाह हो गया। पिता के साथ सुरक्षित जीवन के जो सपने देखे थे वे सभी एकाएक ढ़हते हुए दिखने लगे। अतीत में अब्दुल बिस्मिल्लाह के साथ जो भी घटना घटी थी सब याद आने लगी। सारे सपने बिखर गए। "सपने उस पिता की लाश के साथ दफन हो गए थे। जिसकी कल्पनाएँ बेहद रंगीन और मोहक थी। कल्पनाएँ जिनका ताअल्लुक उस पत्र से था जो धरती पर एक गेंद की भांति ठहरा हुआ था और अनेकानेक पाँव उसे उसे घूर रहे थे।"[2] एकदम से अकेला पड़ जाने के कारण वे कुछ दिन परेशान रहे, लेकिन अपने सपनों को पूरा करने के लिए विपरीत परिस्थिति में भी जीवन संघर्ष का रास्ता नहीं छोड़ा। जीवन के इस गहन अँधकार में उजाला की उम्मीद लिए अपने दम पर दुर्भाग्य से लड़ते रहे। अपमान सहते हुए भी कभी अपने लक्ष्य से विचलित नहीं हुए और न ही कभी हार मानी। शिक्षा की बदौलत ही अपने सपनों को साकार किया। किशोरावस्था के दौरान ही एक लड़की से प्रेम आकर्षण भी हुआ, लेकिन अर्जुन की भाँति अपने लक्ष्य को सबसे आगे रखा। अब्दुल बिस्मिल्लाह जीवन संघर्ष के बारे में लिखते हैं- "संघर्ष केवल वह नहीं जो चंद खास लोगों और चंद आम लोगों के बीच होता है। संघर्ष किसी आदमी का जीवित रहना भी है। जब वह खुद से ही लड़ता है और खुद से निपटता है, खुद से ही हारता है और खुद से ही जीतता है। इस तरह आदमी का इतिहास है।"[3] आदमियत के इतिहास

[2] अब्दुल, बिस्मिल्लाह .(2016). *समर शेष* है. राजकमल पृष्ठ 24

[3] अब्दुल, बिस्मिल्लाह .(2016). *समर शेष* है. वही, पृष्ठ 66

में यकीन रखने वाले अब्दुल बिस्मिल्लाह ने हर समस्या का निडरता से सामना किया। जीवन के डगर में कई बार पाँव डगमगाएँ, लेकिन इससे कभी विचलित नहीं हुए। मुश्किलों को सहजता से स्वीकार किया और गुरुजनों की मदद से आगे बढ़ते रहे। रिश्तेदारों ने मदद नहीं की तो मजदूरी करके पढ़ाई जारी रखा। हाईस्कूल से लेकर एम.ए. तक की पढ़ाई अपने गुरुजनों की मदद से पूरी की। इस उपन्यास में लेखक ने अपने जीवन संघर्ष को बहुत ही संजीदगी से चित्रित किया है।

झीनी झीनी बीनी चदरिया (1986)

बनारस के साड़ी बुनकरों के यथार्थ को अभिव्यक्त करता यह बहुचर्चित उपन्यास लेखक का दूसरा उपन्यास है। इस उपन्यास को 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' से सम्मानित किया जा चुका है। हिंदी कथा साहित्य में यह पहला उपन्यास है जो बुनकरों के शोषण और मुस्लिम धर्म के आडंबरों को पाठक के सामने लाता है। पूँजीवाद और धर्म का गठजोड़ किस तरह से शोषण को और भी पुख्ता कर देता है इसका वह बेपर्दा करता है। यह उपन्यास एक नये अनुभव को मूर्त करता है। इस उपन्यास में साड़ी बुनकरों की अभावग्रस्त, गरीबी, बेबसी और इन सब से उपजे रोगग्रस्त जीवन को केंद्र में रखा गया है। तसनीम पटेल अपनी पुस्तक 'भारतीय मुसलमान: शोध और बोध में लिखती हैं- "इनमें जो बुनकर हैं, वह टूटते हुए भी साबुत हैं। वह हालात से समझौता नहीं करते बल्कि उनसे लड़ना और बदलना चाहते हैं।"[4] उपन्यासकार ने बनारस और आस-पास के बुनकरों के जीवन संघर्ष को आधार बनाकर इस उपन्यास को लिखा है।

आजादी के पचास साल बाद भी मजदूरों के हालत में कोई बदलाव नहीं आया है, बल्कि स्थिति पहले से बदतर ही हुई है। बढ़ती महँगाई और बीमारियों ने लोगों का जीना मोहाल कर दिया है। शोषक वर्ग नित नए-नए पैतरें ईजाद कर मालामाल होता जा रहा है और वही श्रमिक अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर हैं। न सही से हवा मिल पाती है और न ही पानी। दो टाइम खाना तो बहुत दूर की बात है। तन पर कोई कपड़ा भी नहीं होता जबकि वे बुनते कपड़ा ही हैं। इनकी घर की स्त्रियाँ

[4]पटेल,तसनीम, भारतीय मुसलमान : शोध और बोध, पृष्ठ. 158

बनारसी साड़ी देख तो पाती हैं, लेकिन कभी पहनना संभव नहीं हो पाता। लेखक ने इस उपन्यास में शोषित एवं शोषक वर्ग का चित्रण किया है। शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व मतीन करता है, तो शोषक वर्ग का नेतृत्व हाजी अमीरुल्लाह करते हैं। हाजी साहब जैसे लोग बुनकर की कोई कमी निकालकर पैसे काटने का काम करते हैं। और ऊपर से यह भी कहते हैं कि बुनकरों की वजह से उन्हें घाटा लग रहा है, जबकि हर साल शहर में कोई न कोई कोठी तैयार हो जाती है। लेखक ने इस उपन्यास में वर्गीय चेतना को चित्रित किया है।

उपन्यास का प्रमुख पात्र मतीन बुनकरों के हालात को सुधारना चाहता है। और इसके लिए वह बुनकरों की एकता की बात करता है। यदि बुनकरों में एकता होगी और सभी हाजी जैसे लोगों का काम करना बंद कर दें तो हालात बदलते देर नहीं लगेगी। मतीन बुनकरों को समझाता है कि हमारी जिंदगी केवल सेवा करने के लिए नहीं है। इन गिरस्तों को हमारे भविष्य की कोई चिंता नहीं है। इन्हें तो बस अपने करघों पर बुनकरों से काम लेना है और इसके बदले हमारे ऊपर कर्जा लाद देना है। वे हमें गुलाम बना रहे हैं और हम गुलाम बनने को तैयार हैं।

मतीन इन सारी स्थितियों से तंग आ जाता है। वह शाम को बुनकरों से मिलकर उन्हें समझाता है और एक संगठन बनाने की बात करता है। मतीन के घर की हालात बहुत ही दयनीय है। पत्नी अलीमुन को टी.बी. हुई है। इलाज के लिए पैसे नहीं हैं। साड़ी बुनकर वह किसी तरह अपनी गृहस्थी चलाता है। इस कमाई में दो जून की रोटी भी ठीक से नहीं हो पाती। इन सब से निजात पाने के लिए बुनकरों के हालात सुधारने के लिए वह आगे आता है और किसी के करघे पर काम न करने का शपथ बुनकरों को दिलाता है। अपना करघा लगाइए और उसे स्वयं बेचिए। बिचौलियों को जो बिना किसी मेहनत के हमारी कमाई खा रहे हैं उन्हें बाहर कीजिए। मतीन को सरकार द्वारा बुनकरों को लोन (क़र्ज़ा) देने की बात पता चलती है तो इसके लिए वह रात दिन एक कर प्रयास करता है। और इसके लिए वह बुनकरों का समूह बनाना चाहता है, लेकिन उसमें असफल हो जाता है। मतीन कहता है- “हाजी अमीरुल्ला का गढ़ तोड़ना है। लोगों का गला काट-काटकर बच्चू ने बड़ा धन जोड़ा है। देखते हैं, अब कौन बिनता है उनके यहाँ की साड़ी? सब अपना-अपना बिनेंगे और अपना-अपना बेचेंगे।

अभी तक हमारी मेहनत की रोटियाँ इन मुठल्लों ने खायी है, अब हम खुद खाएँगे"[5] संघर्ष के दौरान बहुत सी कठिनाई आती है। कई बुनकर समूह से निकलकर हाजी के साथ मिल जाते हैं। बहुत प्रयास के बाद भी मतीन समूह को बचा नहीं पाता और हाजी अमीरुल्ला सोसाइटी अपने नाम कर लेते हैं।

इस उपन्यास में अब्दुल बिस्मिल्लाह प्रेम विवाह, स्त्री जीवन की समस्या, मुस्लिम समाज में तलाक व्यवस्था को चित्रित किया है। मतीन-नजबुनिया, शरफुद्दी-रेहानवा और इकबाल-बिबिया के प्रेम प्रसंगों का चित्रण लेखक ने बड़ी सूक्ष्मता से किया है। व्यक्तिगत लाभ के लिए कैसे सांप्रदायिक दंगे करवाए जाते हैं का भी पड़ताल लेखन ने किया है। एम.एल.ए शरफुद्दीन और गजाधर प्रसाद ने मिलकर कैसे अपने लाभ और चर्चित होने के लिए हिंदू-मुस्लिमों में दंगा करवाया है और अपना उल्लू सीधा किया है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने उपन्यास के माध्यम से अभावग्रस्त बुनकरों की समस्या का वर्णन यथार्थ रूप में किया है। बुनकरों की दारुण स्थिति को इस रूप में चित्रित किया है कि किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को झकझोर देगा। ये बुनकर अपनी मेहनत की कमाई भी नहीं खा सकते। एक-एक दाने को तरसते बुनकर परिवार कैसे बहुत जल्द ही काल कवलित हो जाते हैं। युवा अवस्था में ही ये बुजुर्ग हो जाते हैं। जीवन संघर्ष को कुछ लोग अल्लाह का दिया हुआ मान लेते हैं तो मतीन जैसे युवा इसे शोषण के रूप में देखते हैं और इसके लिए आवाज भी उठाते हैं। ऐसे लोग किसी के सामने न तो झुकते हैं और न ही किसी तरह का समझौता करते हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने जिस तरह से शोषण को इस उपन्यास के केंद्र में रखा है और जिस कहने के अंदाज में इसे व्यक्त किया है उन्हें रेणु और प्रेमचंद की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया है। उपन्यासकार ने शोषण के उस पूरे तंत्र को बेनकाब कर दिया है जिसके एक छोर पर है गिरस्ता और कोठी वाला तो दूसरे छोर पर भ्रष्ट राजनीति हथकंडे और सरकार के नुमाइंदे हैं। आम जनता के लिए बनी कल्याणकारी योजनाएँ का बंदरबाट जिस तरह से होता है और अपेक्षित लोगों को इसका लाभ नहीं मिलता है को भी उपन्यास में बखूबी

[5]अब्दुल, बिस्मिल्लाह. (1986). *झीनी-झीनी बीनी चदरिया.* पृष्ठ. 13

चित्रित किया गया है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने बुनकर बिरादरी के आर्थिक शोषण में सहायक परंपराओं, सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक लंबरदार को भी बेनकाब किया है।

ज़हरबाद (1987)

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने सबसे पहले 'ज़हरबाद' उपन्यास का ही सृजन किया था, परंतु इसका प्रकाशन दो उपन्यासों के बाद हुआ। इस तरह से यह प्रकाशन के क्रम में तीसरा उपन्यास है। इस उपन्यास की कथा भूमि मध्य प्रदेश के आदिवासी बाहुल्य मंडला जिले की है। उनका बचपन इसी जिले में व्यतीत हुआ है। यह भी आत्मकथात्मक उपन्यास है। ग्रामीण जीवन पर आधारित इस उपन्यास में ऐसे चरित्रों का निरूपण हुआ है जो सरकार की बड़ी-बड़ी विकास योजनाओं से कोसों दूर हैं। इन्हे किसी भी योजना की न तो जानकारी है और न ही कोई लाभ ही मिल पाता है। सरकार के नुमाइंदे के रूप में ये केवल पटवारी और जंगल विभाग के अधिकारी को ही जानते हैं। सरकारी योजनाओं से एकदम अछूते एवं अपरिचित ये लोग गरीबी रेखा के बहुत नीचे जीवन-यापन करते हैं। लेखक ने एसे ही पात्रों को उपन्यास के केंद्र में रखकर समाज की विसंगतियों, वर्जनाओं और विषमताओं का मार्मिक चित्रण किया है।

जीवन रोज बद से बदतर होते जाने का नाम नहीं है, बल्कि कल से बेहतर होने का नाम है। सुदूर इस अंचल में न तो कोई अस्पताल है और न ही कोई दुकान। जरूरत का सामान लाने के लिए पूरा दिन लग जाता है। उपन्यास में लेखक ने पात्रों के माध्यम से दुःख-दर्द की ऐतिहासिक महागाथा को प्रस्तुत किया है। जीवन के प्रति आगाध प्रेम करने वाले यहाँ के ग्रामीण एक दियासलाई के लिए तरस जाते हैं। बारिश के दिनों में यह इलाक़ा एक टापू बन जाता है और सारे जगहों से संपर्क टूट जाता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने स्थानीय भाषा का प्रयोग कर कथा को और भी रोचक बना दिया है। इस रोचकता के कारण ही ग्रामीण जीवन का सजीव चित्रण प्रस्तुत हो पाया है।

आजादी के इतने सालों बाद भी भूख और कुपोषण से लगातार लोग मर रहे हैं। मलेरिया की दवा तक नसीब नहीं होती। क्लोरोकिन की गोली इन ग्रामीण के लिए किसी देवदूत का दिया प्रसाद जैसा होता है, लेकिन वह भी मिल पाना संभव नहीं होता। अब्दुल बिस्मिल्लाह मध्यप्रदेश के मंडला अंचल को आधार बनाकर ही ग्रामीण जीवन की अमानवीय व्यवस्था को आकार दिया है। सरकारें

चाहे जीतना भी विकास का नारे लगा लें, सड़के बना ले, डैम बना ले, ऊँची-ऊँची इमारते खड़ी करा ले, लेकिन इससे ग्रामीणों का पेट नहीं भरता। वे अपनी भूख के कारण दिन-रात तड़पते हैं। सरकारी योजनाएँ या तो कागजों पर चलती हैं या कुछ खास लोगों के लिए बनाई जाती हैं। खाए-पिए अघाए लोगों को ही ऐसी योजनाओं का फायादा मिलता है। आम जनता कहाँ मर-कट रही है इसकी कोई खबर सरकार के पास नहीं है। सरकार इनकी कोई सुध भी नहीं लेना चाहती। पशुवत जीवन जीने को अभिशप्त ऐसे ग्रामीण को केंद्र में रखकर इस उपन्यास को रचा गया है।

उपन्यासकार ने इस उपन्यास में जिन पात्रों का चित्रण किया है वे सभी आर्थिक समस्या से जूझते नजर आते हैं। जीवन जीने के लिए जो आधारभूत आवश्यकताएँ होनी चाहिए वह भी इन लोगों के पास नहीं है। इस कारण से पति-पत्नी में अक्सर झगड़ा होता रहता है। आजीविका का संघर्ष कई बार व्यक्तिगत संघर्ष में तब्दील हो जाता है जिससे पारिवारिक कलह बढ़ता है। पत्नी दिन-रात मेहनत करके किसी तरह से घर चलाती है। पति निठल्ले की तरह केवल मछली मारने का जुगत लगाता रहता है। "काम ना धंधा बस दिन-रात बंसी के पीछे... लाज नहीं आती कि मेहरियाँ कमाये और मरद बैठकर खाये।"[6] काम का अभाव और आर्थिक तंगी के कारण पारिवारिक जीवन बहुत ही दारुण है। कभी जब कोई काम मिल जाता है तो उससे कुछ गुजर-बसर हो जाता है। कई बार मजदूरी भी नहीं मिलती और भी मिलती है तो बहुत कम। इस कारण बच्चों को भी छोटी सी उम्र में काम पर जाना पड़ता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है- "अब्बा शाम को लौटे और मुझको उन्होंने बताया कि एक काम उन्हें मिल गया है। कल से तुम भी चलो तुम्हें भी रखवा दूँगा।"[7] इससे स्पष्ट होता है कि हालात किस कदर है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इस उपन्यास के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक विषमताओं का अंकन बहुत ही सजीव रूप में किया है। आजादी के बाद बदलते हालात ने गरीबों के लिए कुछ विशेष नहीं किया, बल्कि सामाजिक विषमताओं को बढ़ाया ही। समाज में अब भी छुआ-छूत की भावना जस की तस बरकरार है। किसी के सोच में कोई बदलाव नहीं आया। गरीबों की स्थिति में कोई

---

[6]अब्दुल,बिस्मिल्लाह. (2016). *जहरबाद*. पृष्ठ 7
[7]अब्दुल,बिस्मिल्लाह. (2016). *जहरबाद*. पृष्ठ 70

बदलाव नहीं हुआ। उनका जीवन पहले की तरह ही अमीर लोगों की सेवा के लिए है। अस्पृश्यता का एक उदाहरण द्रष्टव्य है- "उस समय मुझे याद आया कि टोले के पटेल के यहाँ अम्मा से कोई चीज छू ली गई थी तो वे उसे अपने इस्तेमाल के लिए उठा लायी थी और यहाँ ऐसी बात नहीं हुई जिसका यही मतलब होता था कि फुलझर के घर वाले पटेल नहीं बल्कि गाढ़े थे और उनका सामान हम लोग भी इस्तेमाल नहीं कर सकते थे।"[8] जाति की हैरार्की में किसी भी प्रकार की कमी नहीं आई है। कहने को लोकतंत्र है, लेकिन जो पहले से सरपंच बनता आ रहा है वही अब भी बन रहा है। पचास सालों से एक ही परिवार सरपंच है। उसकी ही धाक है। वही सरकार है और वही अन्नदाता भी और वही शोषक भी। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इस उपन्यास में विषमताबोध को विशेष रूप से उजागर किया है। आजादी के बाद भी ग्रामीण जीवन में किस तरह की अभावग्रस्तता है एवं जीवन जीने लायक आवश्यक सुविधाओं का अभाव है को चित्रित किया है। धार्मिक आडंबर अभावग्रस्तता को कैसे और बढ़ाते हैं की भी पड़ताल लेखन में सूक्ष्मता से की है। रोजमर्रा के जीवन में घटित होने वाले दुःख, दर्द, वेदना-पीड़ा, आनंद-उत्सव एवं छोटी-छोटी खुशियों को बहुत ही गहन रूप में प्रस्तुत किया है।

दंतकथा (1990)-

यह उपन्यास अपने संरचना में प्रचलित ढांचे से अलग है। उपन्यास के केंद्र में एक मुर्गा है। यह मुर्गा ही उपन्यास का केंद्रीय पात्र है। इस उपन्यास के रचनशीलता के संदर्भ में अब्दुल बिस्मिल्लाह का मानना है कि यह पूरी तरह से उस मुर्गा की प्रेरणा का फल है जिसे बनारस में मेरी पत्नी ने पाला था। मुर्गा अपनी जान बचाने के लिए एक दिन नाबदान में घुस गया था। अपनी जान बचाने के लिए मुर्गे ने जो जुगत की उसकी चिंता ही इस उपन्यास का आधार है। बाद में लेखन ने इसे प्रतीकात्मक बना दिया। वैसे भी किसी पशु-पक्षी पर लिखना आसान नहीं है। पशु-पक्षी कथा में आते रहे हैं, लेकिन केंद्रीय पात्र के रूप में नहीं। अपनी संरचना और कथ्य के रूप में यह एक अद्भुत उपन्यास है। उपन्यास में यह संशय लगातार बना रहता है कि इसमें मनुष्य की कहानी है या मुर्गे की या इन दोनों की।

---

[8]वही, 68

कथा नायक मुर्गा है मनुष्य के हत्यारी नियत को भाँपकर अपनी प्राण रक्षा के लिए नाबदान में घुस जाता है। नाबदान के आकार से बड़ा मुर्गे का शरीर जीवन रक्षा के लिए उस छोटे से नाबदान में किसी तरह से घुस जाता है। जान पर आन पड़ी इस स्वाभिमानी मुर्गे ने मनुष्य की नियत को बहुत ही नजदीक से जाना है। इसके मन में मनुष्य के प्रति नफरत है, प्रेम नहीं। वह कहता है- "मैं इस नाबदान में घुसकर मर जाऊँगा मगर इस पापी मनुष्य प्राणी के हाथों लगकर मैं ज़िबह नहीं होना चाहता क्योंकि ज़िबह करने के बाद उसने मुर्गे की स्थिति को देखा था। वह फुट-आध-फुट उछलता है और बुरी तरह छटपटाता है। उस मुर्गे की दशा उस आशिक की तरह होती है जिसे ज़िबह कर दिया हो। शायद इसलिए मनुष्य जाति के कवियों ने आशिक की तुलना 'बिस्मिल' यानी ज़िबह हुए मुर्गे से की है।"[9]

नाबदान में घुसे मुर्गे को अपनी जान बचाने में मुश्किल आ रही। बहुत कम जगह होने के कारण उसका दम घुट रहा है, लेकिन वह बाहर नहीं निकलना चाहता। इस स्थिति में वह लगातार अपने बारे में और अपनी जाति के बारे में सोचता रहता है। वह नाबदान में घुसकर लगातार जीवन-संघर्ष करता रहता है, क्योंकि नाबदान में न तो खाने के लिए कुछ है और न बैठने के लिए उतनी जगह। भूख से तड़पते खुद को दोषी मानता है। उसे भूखा मरना कबूल है, लेकिन हत्यारों के हाथ नहीं। नाबदान में मृत्यु सामने दिखाई देती है इससे डर कर वह बाहर निकलना चाहता है, जिंदा रहना चाहता है, लेकिन मनुष्य के हाथों हलाल नहीं होना चाहता। इससे बेहतर वह नाबदान में ही मर जाना उचित समझता है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने नाबदान में फँसे एक मुर्गे के बहाने समाज में व्याप्त भय, असुरक्षा और आतंक के बीच जीवन संघर्ष को बहुत ही नए रूप में प्रस्तुत किया है। यह उपन्यास मनुष्य और मुर्गे के अन्तः संबंधों की व्याख्या मात्र नहीं है, बल्कि यह मुर्गे- मुर्गियों का रहन-सहन उनकी आदतें और उनकी आकांक्षाएँ व जीवन संघर्ष को भी चित्रित किया है। इस उपन्यास में लेखक ने एक मुर्गे के माध्यम से आज का मनुष्य किस तरह से क्रूर बन रहा है उसका यथार्थ चित्रण किया है।

[9]अब्दुल बिस्मिल्लाह. (1990). *दंतकथा*. पृष्ठ 19

मुखड़ा क्या देखे (1996)-

'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में ग्रामीण जीवन के सामन्ती परिवेश को उद्घाटित किया गया है। साथ ही सांप्रदायिकता का भी चित्रण किया गया है। लेखक ने इस उपन्यास में भी अपने गाँव बलापुर के परिवेश को कथा के माध्यम से आगे बढ़ाया है। जातिगत भेदभाव, सामन्ती आचरण, पितृसत्तात्मक व्यवहार और प्रेम विवाह को भी कथा क्रम में आगे बढ़ाया गया है। बलापुर गाँव में सृष्टिनारायण पाण्डेय और रामवृक्ष पाण्डेय नाम के दो भाई हैं। पूरे गाँव में इन्हीं की चलती है। ये जो चाहते हैं वही होता है। इन दोनों का गाँव में रोब और डर है। इस डर के कारण ही लोग इनके सामने सर झुकाते हैं। इनके दरवाजे पर गाँव के लोगों की बैठकी लगती है और यहीं पर गाँव-गिराव से लेकर देश-विदेश की चर्चा होती है। किसको भारत का प्रधानमंत्री होना चाहिए किसे नहीं। ये दोनों भाई पंडित जवाहरलाल नेहरू और इंदिरा गांधी के प्रशंसक हैं, क्योंकि अपने को कांग्रेसी नेता मानते हैं।

रामवृक्ष पाण्डेय की अंतिम लड़की का ब्याह है। गाँव में सभी जाति के लोगों को न्योता दिया गया है। सभी लोग इस शुभ अवसर पर अपनी जिम्मेदारी निभा रहे हैं। हलवाई, कोहार, चमार, पासी सिपाही नाऊ सभी आए, लेकिन अली चूड़ीहार नहीं आया। अली चूड़ीहार का न आना सृष्टिनारायण पाण्डेय के शान में गुस्ताखी है। यह कैसे हो सकता है कि प्रजा होकर अली चूड़ीहार न आए। अली के न आने पर पाण्डेय जी आग बबूला हो जाते हैं। उन्हें बार-बार अली चूड़िहार पर गुस्सा आता है। पाकिस्तान बन जाने के कारण ही यह गुमान आया है नहीं तो एक प्रजा का यह मजाल कि गाँव की प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार की कन्या का शुभ विवाह हो और वह अनुपस्थित रहे। सृष्टिनारायण पाण्डेय जी एक आदमी को भेजकर अली चूड़ीहार को बुलाते हैं और उससे कुछ पूछने से पहले ही पीटना शुरू कर देते हैं। अली चूड़ीहार मार खाकर घर पर आता है। वह उसका बदला लेना चाहता है। वह इसकी शिकायत पंडित नेहरू से करने इलाहाबाद जाता है।

उपन्यास में सांप्रदायिकता का भी चित्रण हुआ है। अली चूड़ीहार का लड़का पासी समुदाय की एक लड़की से प्यार करता है और दोनों भागकर शादी कर लेते हैं। सृष्टि पांडे को एक मौका मिल जाता है और वे इसे सांप्रदायिकता के रंग में रंग डालते हैं। पासियों को चढ़ाकर मुसलमानों के घरों

पर हमला करवाते हैं। दो जातियों में सांप्रदायिक वैमनस्य फैलने से चूड़ीहारों का परिवार अपना गाँव छोड़कर मध्य प्रदेश में जाकर अपना घर बसाता है। मगर उसे अपने गाँव-परिवार और रिश्तेदारों की याद बराबर आती रहती है। अली चूड़ीहार अपना गाँव छोड़कर गया है, लेकिन उसका मन तो अपने गाँव में ही है। वह यहाँ तो डर के कारण रहता है। यहाँ अली की कमाई ठीक-ठाक होने लगी है और जिंदगी चल निकलती है। खुशहाल जिंदगी में अपने गाँव की याद सताती रहती है। उसे अपने गाँव की बार-बार याद आती रहती है। कई बार अपने को कोसता रहता है कि उसे गाँव छोड़कर नहीं आना चाहिए था। उसे आत्मग्लानि होती है और अपने गाँव आने की तड़प लगातार बनी रहती है।

आखिरकार वह अपने गाँव आता है। इतने साल बाद गाँव आने पर वह देखता है कि गाँव का हुलिया ही बदल गया है। जमींदार सृष्टिनारायण पाण्डेय का निधन हो गया है। अली बार-बार उन्हें याद करते हुए कहता है-"जिनके नाम से गाँव थर्राता था अब वह मिट्टी में मिल चुके हैं; वह जमींदोज हो गए हैं।"[10] अब्दुल बिस्मिल्लाह ने आजाद भारत में मुस्लिम समाज के भीतरी हालात, मुश्किलों और सांप्रदायिकता का चित्रण जिस संवेदना के साथ किया वह अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। सांप्रदायिकता को आधार बनाकर कई उपन्यास लिखे गए हैं, लेकिन ग्रामीण जीवन में सांप्रदायिकता का जहर किस तरह से व्याप्त हो रहा है इसकी पड़ताल लेखक ने इस उपन्यास में बखूबी किया है।

अपवित्र आख्यान (2008)-

इस उपन्यास के केंद्र में इंसान बनने की जद्दोजहद है। उपन्यासकार ने गंगा-जमुनी तहजीब के इर्द-गिर्द कथा को बुना है। यह समय की कैसी विडंबना है कि हम इंसान होने से पहले हिंदू-मुसलमान हो जाते हैं। पवित्रता-अपवित्रता के बीच जो वैमनस्य फैल रहा है उसकी चिंता लेखक को है। इन्हीं बेचैनियों को अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने इस उपन्यास में नायक जमील अहमद के मार्फत दर्ज किया है। यह उपन्यास हिंदू-मुस्लिम के आपसी रिश्तों की मिठास और खटास के साथ ही उन विरोधाभासों को भी व्यक्त करता है जो समय के साथ आ गए हैं। अब यह तय होने लगा है कि कौन क्या खाएगा, क्या पहनेगा और क्या पढ़ेगा। कोई मुसलमान होकर हिन्दी और संस्कृत कैसे पढ़ सकता

[10]बिस्मिल्लाह, अब्दुल. (2008). *मुखड़ा क्या देखे.* पृष्ठ 68

है। उसे तो केवल उर्दू, फारसी या अरबी पढ़ने का अधिकार है और यदि पढ़ भी लिया है तो किसी मुसलमान को हिन्दी पढ़ाने का मौका क्यों दिया जाना चाहिए।

उपन्यास का कथा नायक जमील का संबंध ऐसी संस्कृति से है, जहाँ जीवन मूल्य किसी धर्म से तय नहीं होता और भाषा धर्म के बीच कोई दीवार खड़ा नहीं करती। हिन्दी से प्रेम होने के कारण उसने अपनी पूरी पढ़ाई हिंदी से की है। नौकरी के लिए जहाँ भी इंटरव्यू देने जाता है पहला सवाल यही होता है कि तुम मुसलमान होकर हिंदी क्यों पढ़ना चाहते हो? जमाल अपने उत्तर से संतुष्ट करना चाहता है, लेकिन उसका मुसलमान होना आड़े आ जाता है। इस संदर्भ में वह अपने विभागाध्यक्ष प्रो. राम कुमार चतुर्वेदी से बातचीत करने जाता है। जमील कहता है "सर राष्ट्रीय समानता महाविद्यालय में हिंदी व्याख्याता हेतु कल इंटरव्यू है मैंने भी आवेदन किया है यदि आपके आशीर्वाद के कुछ आसान हो तो..."[11] चतुर्वेदी नहीं चाहते कि एक मुसलमान हिंदू कॉलेज में नौकरी करें। वह टाल देते हैं और जमील से कहते हैं कि- "तुम समाचार पत्र देखते रहे कभी शिब्ली कॉलेज, आजमगढ़ हलीम कॉलेज, कानपुर या फिर अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में जगह निकले तो अवश्य आवेदन करना। उस समय मैं जितनी सहायता कर सकूंगा करूंगा। "[12] जमील को यह बार-बार एहसास कराया जाता है कि वह मुसलमान है और उसे हिंदी पढ़ने का अधिकार नहीं है।

लेखक ने उपन्यास की नायिका यासमीन के हवाले से दोहरे चरित्र वाले किरदारों का चित्रण किया है। यासमीन पढ़ी-लिखी एवं नमाज-रोज़े वाली युवती है, लेकिन नौकरी के लिए किसी मुस्लिम नेता के साथ हमबिस्तरी करने में उसे कोई गुरेज़ नहीं है। पैसे के पीछे भागते मौजूदा समाज और मुस्लिम समाज के अंतर्विरोधों के बहाने सामाजिक गतिविधियों का राजनीतिक पड़ताल किया है। तेज तर्रार जमील बहुत तरक्की नहीं कर पाता है, वही यासमीन किसी भी तरह से अपना लक्ष्य पाना चाहती है और इसमें वह सफल भी होती है। मुसलमान स्त्री होते हुए भी एक महाविद्यालय में हिंदी विभाग की अध्यक्ष बनती है। जमील यासमीन से मिलने जाता है तो यासमीन को बहुत खुशी नहीं

---

[11] बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2008). *अपवित्र आख्यान*. पृष्ठ 34

[12] बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2008). *अपवित्र आख्यान*. पृष्ठ 34

होती। रस्म आदायगी कर दोनों वापस चले जाते हैं। घर आने के बाद जमील सोचता है कि क्या कोई स्त्री इस हद तक बदल सकती है।

यासमीन और जमील दोनों के रास्ते अलग हो जाते हैं और इस बीच जमील राबिया से विवाह कर लेता है। कम पढ़ी-लिखी राबिया को साहित्य की कोई समझ नहीं है, लेकिन वह इतना जानती है कि उसके शौहर जो लिखते हैं उससे शहर-भर में उनका नाम है। जमील को जानने वाले लोग उसे पत्र लिखकर उसके जीवन शैली की आलोचना करते हैं। जमील इन सारे पत्रों को बहुत ही ध्यान से पढ़ता है। इन सभी पत्रों को एक बड़े लिफाफे में रखता है और बाद में पत्नी राबिया से उसे नदी या तालाब में डालने के लिए कहता है। जमील सोचता है कि क्या पत्रों के एक-एक शब्द भी मिट जाएँ गे। उन्हें लिखने वाले भी नहीं रहेंगे तो भी क्या उन शब्दों के पीछे-पीछे अपवित्र शब्द भी उनके साथ मर जाएँ गे? लेखक ने यहाँ इस सत्य को उद्घाटित किया है कि कोई व्यक्ति यदि सच्चा मनुष्य बनना चाहता है तो समाज उसे बनने नहीं देता। सच्चा मनुष्य बनने से पहले उसे हिन्दू या मुसलमान बनना होगा।

रावी लिखता है (2010)-

यह अब्दुल बिस्मिल्लाह का सातवां उपन्यास है। इस उपन्यास के केंद्र में 'विकास की अवधारणा' के साथ ही पीछे छूट गए लोगों की स्मृतियाँ हैं। उपन्यास में एक तरह का नास्टेल्जिया है। यह उपन्यास पुरखों के गाँव-घर से शुरू होकर दिल्ली-इलाहाबाद जैसे महानगरों से होता हुआ यूरोपीय तक विस्तारित है। एक ऐसा उपन्यास है जिसमें गाँव-देहात से परे यूरोप की पृष्ठभूमि है। भौगोलिक सीमाओं को पार कर इस उपन्यास में व्यापक समयांतराल को समेटने का प्रयास किया गया है। यूरोप में बैठकर एक लड़की भारत को याद करती है, तथा रावी चार देशों की कहानी सुनाती है।

'रावी लिखता है' दो संस्कृतियों की भावनात्मक टकराहट से उपजी व्यथा की कहानी है। इस कथा में एक तरह वह युवा पीढ़ी है जिन्होंने गाँव नहीं देखा और नमक, तेल, लकड़ी जैसे बुनियादी चीजों के जुगाड़ के लिए संघर्ष करते नहीं देखा। इंटरनेट, ईमेल और फेसबुक के माध्यम से ही गाँव

को देखा एवं जाना समझा है। चिट्ठियों के अल्फाजों में रिश्तों की गरमाहट को महसूस नहीं किया। शब्दों की उस पीड़ा से भी दूर रहे जो एक सीमा तक मनोभावों को व्यक्त करने में सफल रहते थे।

उपन्यास में डैडी केंद्रीय भूमिका में हैं। डैडी अतीत और वर्तमान को जोड़ने की कड़ी हैं। इनके द्वारा ही बच्चे अतीत को जानने की कोशिश करते हैं। डैडी को भारत के विभिन्न अंचलों की बोली-भाषा और संस्कृति की जानकारी है। उन्हे मास्को, इंग्लैंड, वार्सा, जर्मनी आदि देशों की भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परंपराओं का ज्ञान और अनुभव है। इन्हें सभी यूरोपीय देश एक जैसे लगते हैं। इन देशों में भारत जैसी विविधता नहीं है । गुल्लू को अपने वतन से प्यार है। विदेश में रहते हुए भी वह हिंदुस्तान के बारे में सोचता रहता है । विदेशी स्कूलों में बच्चों की किताबों में अभी भी हिंदुस्तान की सैकड़ों पुरानी तस्वीर ही है । हकीकत से दूर इन तस्वीरों में भारत की छवि बहुत ही आदर्श रूप में प्रस्तुत की गई है जबकि हकीकत यह है कि भारत बहुत बदल चुका है। अब भारत यूरोपिय विकास मॉडल पर अपना भविष्य तय कर रहा है। बाजार के रास्ते भारत ने भी जो करवट बदली है उसमें सांस्कृतिक पहचान का संकट मौजूद है। अनेकता में एकता वाला भारत अपनी पहचान को खोता प्रतीत हो रहा है।

कुठाँव (2019)-

यह सबसे ताजा तरीन उपन्यास है। इस उपन्यास में स्त्री-पुरुष का प्रेम, वासना, हिन्दू-मुसलमान जातिगत हैरार्की के कैनवास पर जो चित्र उकेरा गया है वह सामाजिक विद्रूपताओं का है। लेखक ने मुस्लिम समाज की आन्तरिक विडम्बनाओं और विसंगतियों का एक को तैयार किया है जिसमें स्त्री देह की प्रमुखता है । उपन्यास में मेहतर समाज की मुसलमान औरत इद्दन और उसकी बेटी सितारा को केंद्र में रखकर कथा को आगे बढ़ाया गया है । ये दो महिलाएँ किस तरह से ऊँची जाति के पैसे वाले मुस्लिम मर्दों से लोहा लेती हैं का निरूपण बखूबी किया गया है । स्त्री यौनिकता को लेखक ने एक हथियार के रूप में प्रस्तुत किया है । मुस्लिम समाज में भी कैसे जातिगत भेदभाव है और यह जातिगत भेदभाव यौन संबंध बनाते समय तो नहीं होता, लेकिन वैवाहिक रिश्ता तय करने में आड़े आता है। उन्होने सामाजिक और मर्दाना प्रतिष्ठा को द्विगुणित करने के प्रयासों का भंडाफोड़

किया है। साथ ही यह प्रश्न भी उठाया है कि चौखटों के भीतर जकड़ी औरतें समाज से लड़ती भिड़ती और जीतती-हारती औरतों के लिए आखिर मुक्ति की राह कहाँ है? कोई भी उन्हें अपनी दैहिक ताकत से परास्त नहीं कर सकता और न ही उन्हें पराजित कर सकता है। यदि स्त्रियाँ चाह जाएँ तो उनके आगे सभी को नतमस्तक होना पड़ेगा, लेकिन ऐसा हो नहीं पा रहा है। स्त्रियों का सहारा लेकर लोग आगे बढ़ जा रहे हैं और उन्हें वापस वहीं जाना पड़ रहा है जहाँ से उन्होंने संघर्ष करना शुरू किया था।

1.3- कहानीकार अब्दुल बिस्मिल्लाह

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने लेखन की शुरुआत कविता और कहानी दोनों विधाओं में एक साथ की। शुरुआती दौर की कहानियों में प्रेम केंद्रीय विषय हुआ करता था। इनकी प्रारंभिक रचनाओं पर बंगाली लेखक केशवचंद्र का प्रभाव अधिक दिखता है । इन कहानियों में प्रेम को भावात्मक धरातल पर अभिव्यक्ति मिली है । प्रेमचंद, रेणु और अमरकांत जैसे जनपक्षधर एवं लोकधर्मी कहानीकार अब्दुल बिस्मिल्लाह के कहानियों का कैनवास बहुत व्यापक है । इनकी कहानियों का केवल एक ही रंग नहीं है बल्कि इंद्रधनुषी है । अब्दुल बिस्मिल्लाह जी ने सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, ग्रामीण एवं शहरी जीवन से सम्बन्धित कहानियाँ लिखी है । कहानियाँ किसी खास विचारधारा से सम्बन्धित नहीं है, बल्कि कहानियों में मानव जीवन के अनेक पक्षों का उद्घाटन हुआ है । जीवन में जो जीवन दर्शन है वह मार्क्सवाद के बहुत करीब है। मानव मात्र की बेहतरी और शोषण मुक्त समाज की कल्पना इनकी कहानियों का केंद्रीय कथ्य है । जीवन में जो कुछ भी बेहतर हो सकता है उसके लिए संघर्ष करते रहना, दमन और अत्याचार के खिलाफ आवाज बुलंद करना एवं शोषण की मुखालफत करना इनके पात्रों को भली भाँति आता है ।

टूटा हुआ पंख :- इस कहानी संग्रह में 'नन्ही नन्ही आंखें', शून्य की ओर, 'अपना-अपना अंत', कच्ची सड़क, तीर्थ यात्रा, शिरमाल का टुकड़ा, पागल, सील टूटा हुआ, पंख आदि कहानियां सम्मिलित हैं । इन कहानियों में प्रेम प्रसंग, सामाजिक प्रश्न, धर्म और जाति का सवाल, छुआछूत, राजनीतिक दुश्चक्र, शिक्षा आदि का चित्रण हुआ है।

कितने-कितने सवाल:- इस कहानी संग्रह में 'मुरीद', 'तलाक के बाद', 'नया कबीरदास', 'दरबे के लोग', 'फौलाद बनता आदमी', 'कितने-कितने सवाल', दंड जैसी कहानियाँ शामिल हैं। इस कहानी संग्रह की कहानी 'मुरीद', 'कबीरदास', 'कितने-कितने सवाल' और 'तलाक के बाद' की चर्चा सर्वाधिक होती है। 'मुरीद' कहानी में धर्म के नाम पर हो रहे पाखंड और अर्थ के आगे सब कुछ कमजोर पड़ जाने का चित्रण बहुत ही सहज रूप में हुआ है। कहने को तो सभी मुरीद बराबर है, लेकिन पीर साहब के लिए के लिए उस निर्धन मुरीद की कोई अहमियत नहीं है जिसके पास चढ़ावे के लिए दो रुपये भी नहीं है। 'तलाक के बाद'कहानी में लेखक ने मुस्लिम महिलाओं की दयनीय स्थिति को चित्रित किया है। वे इस कहानी में इसके पीछे के कारणों का भी पड़ताल कराते हैं।

'नया कबीरदास' का कथा नायक कबीर अल्प शिक्षित है। इतिहास, पुराण एवं एक-दूसरे की बुराई करने पर वह फटकारता है। उसके इस आचरण से हिंदू उसे मियां और मुसलमान हिंदू समझते हैं। अपने इसी विलक्षण स्वभाव के कारण वह दंगों के भेट चढ़ जाता है।

'कितने-कितने सवाल' कहानी बाल मनोविज्ञान पर केंद्रित है। कथाकार ने बहुत ही सहज रूपों में बाल मनोभावों को व्यक्त किया है । लेखक ने बाल मनोभावों को सूक्ष्मता से पकड़ते हुए नौकरी पेशा दंपत्ति बच्चों की परवरिश किस तरह से करते हैं को चित्रित किया है । ऐसे दंपत्ति न तो ठीक ढंग बच्चों की देखभाल कर पाते हैं और न ही उसे वह प्रेम ही दे पाते हैं । इस कहानी में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने माता-पिता द्वारा बच्चों के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन न कर पाने और उसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाली समस्या को बखूबी चित्रित किया है । इस कहानी संग्रह की सभी कहानियों में सामाजिक विद्रूपताओं के विविध पहलुओं को चित्रित किया गया है ।

रैन बसेरा : इस कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'पगला राजा', 'खिलाड़ी', 'कागज के कारतूस', 'विदूषक', 'दंगाई', 'खुशी', 'बैरंग चिट्ठी', 'लफंगा', 'रैन बसेरा', 'पुरानी हवेली' हैं। 'रैन बसेरा' कहानी शिल्प और संवेदना के स्तर पर एक मार्मिक कहानी है। इस कहानी में नायिका 'संबुल' न तो प्रेम का मतलब जानती है; और न ही अपने नाम पर हो रहे व्यापार को ही समझ पाती है। 'संबुल' की माँ यात्रियों को अपने 'रैन बसेरे' में ठहराकर उन्हें शादी का प्रलोभन देती है और इसके बदले में

उनसे पैसे एँ ठती है। वह सोचती है कि अगर इसी तरह एकाध यात्री उनके चंगुल में फंस जाए तो हमारे दिन कट जाएँ। इस कहानी संग्रह की अन्य कहानियाँ भी जीवन यथार्थ को उद्घाटित करती हैं।

अतिथि देवोभव: इस कहानी संग्रह में प्रमुख रूप से 'अलिया धोबी और पाव भर गोश्त', 'सिद्दीकी साहब', 'अभिनेता', 'पुण्यभोज', 'खाल खींचने वाले', 'आधा फूल आधा शव', 'यह कोई अंत नहीं', 'ग्राम सुधार' और 'अतिथि देवो भव', विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस संग्रह की कहानियों में व्यक्ति के संघर्ष की व्यथा कथा है। संघर्ष से टूटते कथा नायक जिंदगी से हार नहीं मानते। भौतिक द्वन्द्व को मनाने वाले अब्दुल बिस्मिल्लाह ने कथा नायकों को टूटते, कमजोर पड़ते, निराश होते तो दिखाया है, लेकिन कभी हार मानते हुए नहीं चित्रित किया है। मार्क्सवादी दर्शन का जो फलसफा है लेखक ने उसे आत्मसात किया है। तभी तो मुक्ति की कामना अकेले नहीं बल्कि सामूहिकता में करते हैं। प्रतिरोध के लिए शोषितों की एकता बहुत जरूरी है।

जीनिया के फूल : 'जीनिया के फूल' में प्रेम को भावनात्मक धरातल पर अभिव्यक्ति मिली है। दूसरी अन्य कहानियों में समाज और जीवन के जटिल संबंधों की जांच पड़ताल की गयी है। मानवीय संवेदना से युक्त ये कहानियाँ समाज की आंतरिकता को अभिव्यक्त करती हैं। इस संग्रह की प्रेमपरक कहानियों में 'मादा सारस की कातर आंखे', 'पटाक्षेप','जीनिया के फूल','प्रथम प्रसव','दावत' प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है।

शादी के जोकर: इस संग्रह में कुल सत्रह कहानियाँ हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह का जो सामाजिक सरोकार रहा है वह इन कहानियों में स्पष्ट रूप में दिखता है। आम जनता की तकलीफ़ों, परेशानियों एवं जद्दोजहद को विशेष रूप से इन कहानियों में चित्रित किया गया है। इस संग्रह की कहानियाँ सक्रिय जीवन की कहानियाँ हैं। लेखक ने आम जिंदगी से झांकती परेशानी और कशमकश को शब्दों की लयात्मकता के साथ सूत्र रूप मे सहेजा है। पहली ही कहानी 'खून' रिश्तों की हिफाजत करने वाले शख्स की दास्तान है। 'त्राहिमाम', 'कैलेण्डर', 'महामारी', 'तीसरी औरत' जैसी कहानियाँ उम्मीद जगाती है कि अभी भी बहुत कुछ बचा हुआ है जिसे सहेजा जा सकता है। सार्थकता सहभागिता से स्मरणीय का जन्म होता है जो बेहतर कल के लिए आवश्यक है।

रफ़ रफ़ मेल:- अब्दुल बिस्मिल्लाह की सबसे प्रसिद्ध कहानी-संग्रह 'रफ़ रफ़ मेल' है। इस कहानी संग्रह में कुल पंद्रह कहानियाँ 'दुलहिन', 'गृह प्रवेश', 'जीना तो पड़ेगा', 'चमगादड़', 'कर्मयोग', 'पेड़', 'लग्गी', 'बालकस्वामी', 'नींद जब नहीं आती', 'नायिका', 'जीवन', ' रफ़ रफ़ मेल', 'लंठ', और 'माटा-मिरला की कहानी' हैं। इस संग्रह की कहानियाँ अपने मिज़ाज और तेवर में परस्पर अन्य सग्रह की कहानियों से बिल्कुल अलग हैं। जड़ों की ओर वापस लौटने को प्रेरित करती ये कहानियाँ उत्तर आधुनिक परिवेश में अपने कथ्य एवं कहन की शैली में भी विशिष्ट है। जीवन में बेहतरी के लिए खासकर आधुनिक जीवन परिपेक्ष्य के संदर्भ में बने नए जीवन मूल्य व्यक्ति को बहुत ही अकेला छोड़ दिया हो और सब कुछ गोपन एवं व्यक्ति केंद्रित हो गया है तो ऐसे में हर कोई लौट जाना चाहता है अपने जड़ों की तरफ, जहाँ से उसने जीवन की यात्रा शुरू की थी। इस संग्रह की कहानियों में 'ये सभी कहानियाँ शिल्प के स्तर पर बिल्कुल नई हैं। संवादा शैली में लिखी गई ये कहानियाँ प्रयोगधर्मी भी हैं। इन कहानियों के केंद्र में लोक जीवन है। लोक-भाषा, लोक-गीत और लोकोक्तियों के माध्यम से कथा को आगे बढ़ाया गया है। एक तरह देखें तो हम पाते हैं कि लेखन ने कहन की इस शैली का प्रयोग कर लोक की थाती को संग्रहित एवं संरक्षित करने का भी प्रयास किया है।

बाल साहित्य:

अजगर का पेट- "इस संग्रह का प्रकाशन सन् 1989 में हुआ। इसमें कुल पाँच बालोपयोगी कहानियाँ 'अजगर का पेट','अपनी कमजोरी','मन का ताप','चिड़िया', और 'सोने की अँगूठी' संग्रहित हैं।

1.4 कवि : अब्दुल बिस्मिल्लाह

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने कविता और कहानी लेखन साथ-साथ शुरू किया था, लेकिन बाद में कथा साहित्य में अधिक रम गए। कविता में जीवन के हर अनुभव को शामिल करना थोड़ा मुश्किल होता है। अधिकांश साहित्यकार अपने लेखन की शुरूआत कविता से ही करते हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने भी अपनी लेखनी कविता से शुरू की। काशीनाथ सिंह भी कहते हैं कि अपने शुरूआती दौर में अब्दुल बिस्मिल्लाह कविता लिखते थे। इनकी कविताओं को बहुत गंभीरता से

नहीं लिया जाता रहा है, लेकिन जब इन्होंने कहानियाँ एवं उपन्यास लिखे तो लगा कि अब्दुल बिस्मिल्लाह के पास नया तेवर, नया कथ्य एवं कहन की विशेष शैली है। कथा साहित्य की तरह कविताओं में भी जीवनानुभव, वैचारिकता, आधुनिकता, धार्मिक रूढ़ियाँ, राजनीति, शोषक वर्ग, शोषित, मजदूर, किसान, ग्रामीण जीवन, प्रेम विकृति, जीवन संघर्ष एवं रीति-रिवाजों से जुड़े मुद्दों का चित्रण हुआ है। इनकी कविताएँ गहन संवेदना से ओत-प्रोत जीवन के हर एक पहलू को संवेदनात्मक रूप से प्रस्तुत करती हैं। उनकी कविताओं में व्यक्ति, समाज और जीवन के खट्टे-मीठे अनुभव, विडंबना और त्रासद पल मौजूद हैं। ऐसा कहा जाता है कि कविता में भाव पक्ष की अधिकता होती है। इसमें विचार नहीं होता। विचार को व्यक्त करने के लिए साहित्य के दूसरे माध्यम कहानी और उपन्यास अधिक मुफीद है। लेकिन ऐसा नहीं है। आधुनिक काल खासकर आजादी से मोहभंग के बाद कविता में विचारों का प्रभाव तेजी से बढ़ा। आज कविता में विचार पक्ष हावी है। कविता सिर्फ इंद्रियजन्य नहीं है, बल्कि विचार का होना लाजमी है। विचार को किस रूप में प्रस्तुत किया जाता है यह अधिक जरूरी है। एक अच्छी कविता में विचार और संवेदना की बराबर की भूमिका होती है। समकालीन कविता अपने रंग-रूप और विचार में विविधतापूर्ण है। इस दौर के कुछ एक कवि ही हैं जिनकी कविताओं में विचार और संवेदना का सुन्दर मिश्रण हुआ है। अब्दुल बिस्मिल्लाह उन्ही कवियों में से एक कवि हैं।

मुझे बोलने दो : (1977)-

1977 में प्रकाशित 'मुझे बोलने दो' अब्दुल बिस्मिल्लाह का पहला काव्य संग्रह है। इलाहाबाद में अध्ययन के दौरान ही उन्होने छिटफुट कविताएँ लिखना शुरू किया, लेकिन बनारस आ जाने के बाद विधिवत कविता लिखना शुरू किया। इस काव्य संग्रह में कुल पैंतीस कविताएँ हैं। इस कविता संग्रह को उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा सन् 1979 में पुरस्कृत किया है। इस कविता संग्रह की कविताओं में देश प्रेम, राजनीति, शोषण, अत्याचार, तानाशाही, भ्रष्टाचार पर व्यंग्य किया गया है। इनमें मनुष्य का दुःख, पीड़ा, कसक, टीस, वेदना एवं बेकारी को स्पष्ट रूप से चित्रित किया है। इनकी कविताएँ नारेबाजी के शक्ल में न होकर संवेदना के स्तर पर बेजोड़ हैं।

छोटे बुतों का बयान (1982)-

'छोटे बुतों का बयान' अब्दुल बिस्मिल्लाह का दूसरा काव्य संग्रह है। इस संग्रह की कविताएँ पहले संग्रह की कविताओं से पहले लिखी गई थी, लेकिन प्रकाशन बाद में हुआ। इस संग्रह में चालीस कविताएँ हैं। कवि ने इन कविताओं के माध्यम से प्रकृति को प्रमुखता देकर मनुष्यता की हत्यारी प्रवृत्तियों का पर्दाफाश किया है। उन्होने 'छोटे बुतों का बयान' के माध्यम से प्रकृति के सभी उपादानों को चिन्हित करने का प्रयास किया है। इन उपदानों का जीवन में कितना महत्व है को भी कविता के माध्यम से बताया है। जल, जंगल, पहाड़, पशु-पक्षी, हवा-बयार, बैल, चिड़ियाँ, पेड़-पत्ते आदि को केंद्र में रखते हुए उनके एक-एक पहलुओं और संवेदना को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

वली मुहम्मद और करीमनबी की कविताएँ (1988)-

यह अब्दुल बिस्मिल्लाह का तीसरा काव्य संग्रह है। इसका प्रकाशन सन् 1988 में हुआ। इस काव्य संग्रह में कुल पैंतीस कविताएँ संकलित हैं। 1991 में इस काव्य संग्रह को दिल्ली हिंदी अकादमी द्वारा पुरस्कृत किया गया। इस संग्रह की कविताओं में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने आम जनता, मजदूर, छोटे बच्चों तथा पति-पत्नी की व्यथा को व्यक्त किया है।

कविता फिर लिखी जाएगी (2012)-

'कविता फिर लिखी जाएगी' की कविताओं में जीवन की त्रासद पीड़ा एवं विडंबना को महसूस किया जा सकता है। 'घर की चिट्ठी', 'नींद', 'सरयू', 'ओले,' 'राजा की मृत्यु', 'बारात का घोड़ा' आदि कविताओं में जीवन की अनुभूति एवं संवेदना को स्थानीय परिवेश के साथ ऐसे रूपायित किया गया है कि ये कविताएँ वैश्विक हो जाती हैं। इस संग्रह की कई कविताओं में लोक-संवेदना की गहरी अनुभूति है। मिथ पर आधारित कविता 'सर्पतंत्र' एक श्रेष्ठ कविता है जो सीधे हमारे वर्तमान से जुड़ती है। इसमें वर्तमान सत्ता-व्यवस्था की निरंकुशता को जिस तरह से उजागर किया गया है वैसा बहुत कम देखने को मिलता है। यह कविता संग्रह केदारनाथ सिंह को समर्पित है। केदार नाथ सिंह के ही टोकने पर इस कविता संग्रह का प्रकाशन हो सका।

किसके हाथ गुलेल (2014)-

यह अब तक प्रकाशित कविता संग्रह से अलग है। 'किसके हाथ गुलेल' दोहों का संग्रह है। इस संग्रह के अधिकतर दोहों से पाठक परिचित हैं। इस संग्रह के आधिकांश दोहे पत्र-पत्रिकाओं में पहले से ही प्रकाशित होते रहे हैं। हिन्दी में दोहा की एक लम्बी परंपरा रही है। कबीर, वृन्द, रहीम एवं बिहारी जैसे कवियों ने दोहे में सफल भावाभिव्यक्ति की है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने 48 मात्राओं वाले इस छंद नये भाव-बोध के साथ बड़ी बातें कहीं हैं। इनमें सत्ता-व्यवस्था की विसंगति और विडंबना के साथ प्रेम की नये ढंग से अभिव्यक्ति हुई है। इस संग्रह के दोहे शास्त्रीय पद्धति से इतर लोक शैली पर आधारित हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इन दोहों को 'जनता का गान' कहा है। इन दोहों में वे अपने समय और समाज के साथ उपस्थित होते हैं। वे इन दोहों के संदर्भ में लिखते कि "अब और क्या लिखूँ? थोड़ा लिखना, ज्यादा समझना - यह तो हमारे पूर्वज भी कह गये हैं।"[13]

1.5 नाटककार : अब्दुल बिस्मिल्लाह:

समकालीन समय में नाटक कम लिखे जा रहे हैं। नाटक का मंचन भी कम हुआ है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने चार नाटक भी लिखे हैं। उनके नाटकों में सामाजिक विद्रूपताओं, राजनीतिक भ्रष्टाचार, धार्मिक रूढ़ियाँ एवं उन्माद, गरीबी एवं आर्थिक समस्याओं को प्रस्तुत किया है।

दो पैसे की जन्नत :

यह अब्दुल बिस्मिल्लाह का बहुचर्चित नाटक है। इसका प्रथम मंचन 8 अक्टूबर 1989 में सुरेश स्वप्निल के निर्देशन में भोपाल में हुआ था। 'दो पैसों की जन्नत' का संबंध वर्तमान समय से है। यह एक ऐतिहासिक नाटक होते हुए भी वर्तमान से सीधे जुड़ता है। नाटक में लेखक ने ऐतिहासिकता के माध्यम से वर्तमान समस्याओं तथा शासक वर्ग के तानाशाही रवैये को व्यक्त करने का प्रयास किया है। राज्य में अकाल पड़ा हुआ है और जनता भूख से बेहाल है। राजा इन समस्याओं को हल का करने के बजाय अपने राज्य में जन्नत बनाने की घोषणा करता है। जन्नत बनाने के लिए राजा ने जन्नत निर्माण अधिकारी भी नियुक्त कर दिया है। जन्नत बनाने के लिए सारी दुनिया से

---

[13]बिस्मिल्लाह, अब्दुल, किसके हाथ गुलेल, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 7

वस्तुओं को मंगवाया जा रहा। भूख से पीड़ित जनता के लिए अनाज नहीं मंगवाया जा रहा है। जन्नत बनाने का कार्य बहुत तेजी से चल रही है। राज्य की जनता जन्नत बनाने के मजदूर के रूप में काम कर रही है। देश-विदेश के विद्वानों के देख-रेख में इसकी निगरानी की जा रही है। राज्य का पूरा खज़ाना खत्म हो गया है। इसके लिए राजा ने आदेश दिया है कि सभी लोग अपनी बीवियों, बहुओं और बेटियों के जेवरात शाही खजाने में जमा करें। ऐसा नहीं करने वालों को सख्त से सख्त सजा दी जाएगी।

जन्नत बनाने के लिए मजदूरों की सुंदर युवतियों को सैनिक पकड़कर लाते हैं। जनता में नाराजगी है और जन्नत बनाने के लिए विरोध कर रही है। तब जन्नत निर्माण अधिकारी कहता है- "जन्नत सिर्फ संस्थाओं के लिए है। रैयत से उसका मतलब नहीं है ।"[14] जनता राजा की तानाशाही और रैयत के लोगों का विरोध करती है। जनता विद्रोह करके राजा को सत्ता से हटाने का प्रयास करती हैं। राज्य खजांची राजा को बताता है कि खजाना खत्म हो चुका है। अब जन्नत बनाने का विचार छोड़ दें, लेकिन राजा नहीं मानता । राज्य के कई अधिकारी अपने पद से इस्तीफा दे देते हैं। इस संकट की घड़ी में राजा का पुत्र और पत्नी भी साथ नहीं देते।

नाटककार इस नाटक के माध्यम से यह बताने का प्रयास करते हैं कि जहाँ भी अत्याचार होगा वहाँ की जनता उसके खिलाफ़ विरोध पर उतर आएगी। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सत्ता के नशे में चूर सत्ताधारी अपने मनमाने ढंग से जनता का शोषण करेगी तो जनता उसके विरुद्ध बगावत करेगी ही। इस नाटक में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने शोषण के विरुद्ध विरोध करने के लिए किसान, मजदूरों को प्रेरित किया है।

कागज का घोड़ा: 'कागज का घोड़ा' नाटक में वर्तमान में भ्रष्ट व्यवस्था को केंद्र में रखकर आधुनिक समस्या को व्यक्त किया गया है । इस नाटक में एक नवयुवक को अधिकारी, बैंक मैनेजर, स्कूल मैनेजर, प्रिंसिपल, डॉक्टर एवं इंस्पेक्टर सभी मूर्ख बनाते हैं । कोई मदद नहीं करता। अंत में वह अपने दोस्तों की सहायता लेता है। नाटक के केंद्र में भ्रष्टाचार है। इस नाटक के माध्यम से अब्दुल बिस्मिल्लाह ने आधुनिक व्यवस्था का पर्दाफाश किया है।

---

[14] बिस्मिल्लाह , अब्दुल .(1989). *दो पैसों की जन्नत*. पृष्ठ 32

नाटक का पात्र रामलाल हाईस्कूल में चपरासी था, किन्तु उसका अचानक देहांत हो गया। चपरासी का लड़का श्यामलाल अपने पिता के नाम के बैंक खाते से जो रूपए हैं उसे निकालना चाहता है। वह बैंक मैनेजर से अपनी व्यथा बताता है तो बैंक मैनेजर पिताजी की मृत्यु का प्रमाण पत्र लाने के लिए कहता है। मृत्यु प्रमाण पत्र के लिए वह डॉक्टर के पास जाता है, वहाँ डॉक्टर प्रमाण पत्र के एवज में पैसे की मांग करता है। डॉक्टर से मिलने के पहले लिए डॉक्टर का चपरासी दो रुपये की घूस ले लेता है। इस तरह उसे वह प्रमाण मिलता है। बाद में बैंक मैनेजर उसे कहता है कि एक फार्म पर किसी ऐसे आदमी के हस्ताक्षर ले आओ जो तुम्हें और तुम्हारे पिता जी को जनता हो और उसका खाता इस बैंक में हो। वह स्कूल में मैनेजर के पास जाता है। मैनेजर खुद को व्यस्त व्यस्त बताते हुए प्रिन्सिपल के पास जाने के लिए कहते हैं। प्रिन्सिपल रामलाल को पहचानने से इनकार कर देते हैं। इसके बाद पुलिस इंस्पेक्टर के पास जाता है। यहाँ भी उसे निराशा ही हाथ लगती है।

श्यामलाल बहुत मायूस होता है। तभी उसका मित्र ईश्वरी प्रसाद उसे एक उपाय बताता है कि तू खुद बाप बन जा और फर्जी दस्तखत से पैसे निकाल लेना। श्यामलाल अपने मित्र की बातों का विरोध करता है। तब ईश्वरी प्रसाद कहता है- “देखो श्यामू, यथार्थवादी बनो। आदर्श और नैतिकता की सीढ़ियाँ बहुत लंबी है, चढ़ते-चढ़ते मनुष्य के साथ टूट जाती है। यहाँ जो गलत है, वही सुखी है। असत्य और छद्म का मार्ग ही सुगम है।”[15] अंतत: श्यामलाल पैसे निकालने के लिए राजी हो जाता है। इस प्रकार ईश्वरी प्रसाद और श्यामलाल दोनों ने आदर्श और नैतिकता को दूर रखते हुए फॉर्म पर फर्जी हस्ताक्षर करके बैंक से तीन सौ रुपये निकालते हैं।

वर्तमान समाज की भ्रष्ट व्यवस्था में आम आदमी का शोषण किस प्रकार होता है का यथार्थ चित्रण हुआ है। जब मनुष्य आदर्श और नैतिकता को लेकर समाज में कोई काम करता है तो सभी लोग उन्हें मूर्ख बनाते हैं। आदर्शवाद और नैतिकता का पाठ गरीब लोगों को ही अधिक पढ़ाया जाता है।

[15]अब्दुल बिस्मिल्लाह- *कागज के फूल*

कलयुग का रथ: इस नाटक में एक पूँजीपति तीन रिक्शेवालों का किस तरह शोषण करता है का यथार्थ चित्रण हुआ है। मजदूरों का शोषण किस तरह से होता है का पूरा लेखा-जोखा नाटक में प्रस्तुत किया गया है । साथ ही वर्तमान पुलिस व्यवस्था आम आदमी को किस तरह परेशान करती है और उनका आर्थिक दोहन करती है का यथार्थ चित्रण अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इस नाटक में किया है।

गाँव से दिल्ली आए तीन अनपढ़ युवकों की कहानी है। वे दिन भर रिक्शा चलाकर अपना गुजारा करते हैं। दिन की जितनी भी कमाई होती है वह लालासेठ के पास लाकर दे देते हैं। लालासेठ इन युवकों के भोजन का प्रबंध करता है । सोने के लिए किराये से दरी तथा रजाई भी देता है। लाल सेठ इन युवकों को लुटता रहता है। इन युवकों के पास पटना से इरफान नाम का एक लड़का आता है। यह लड़का शिक्षित है। नौकरी न मिलने के कारण वह भी इन लोगों के साथ रिक्शा चलता है। जिस प्रकार लालासेठ और पुलिस वालों ने कादिर, रामदुलारे और जग्गू के साथ व्यवहार किया था, उसी प्रकार का व्यवहार इरफान के साथ भी होता है। शिक्षित इरफान लालासेठ एवं पुलिस के शोषण, लूट का विरोध करता है। और तीनों युवकों को भी सच्चाई से अवगत कराता है। वह बताता ही कि ललासेठ और पुलिस वाला उनका किस तरह शोषण कर रहे हैं। लालासेठ इन तीनों युवकों को कहता है कि- "देख पुतर, तू उस इरफान सिरफान के चक्कर में न पड़। बह बड़ा गलत लौंडा है। मैं जानता हूं कि उसी ने तुझे बहकाया है। मैं शुरू से ही उसके लच्छन देख रहा था। इस बिजनेस में पढ़े-लिखे लोग आकर सारा मामला चौपट कर रहे हैं ।"[16] हिसाब को लेकर सेठ और जग्गू में झगड़ा हो जाता है और अंत में लाला की पोल खुल जाती है।

इरफान के आगे आने पड़ पुलिस भी पीछे हटती है। इरफान पुलिस का डंडा लेकर लाला की पिटाई करता हैं और लाला का कालर पकड़कर पूरे पैसे वसूल करता है । इन तीन युवाओं को पता ही नहीं चला की उनका शोषण हो रहा है जब उन्हें इसका पता चलता है तो वे लाला से अपना हिसाब कराते हैं । इस नाटक में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने यह स्पष्ट किया है कि जब तक मनुष्य में

[16]बिस्मिल्लाह अब्दुल, कलयुग का रथ, पृष्ठ 101

शिक्षा का अभाव रहेगा, तब तक वह लाला सेठ जैसे लोगों के शोषण में पिसता रहेगा। अपने अधिकारों को जानने के लिए शिक्षित होना बहुत जरूरी है।

जनता खुद देखेगी- इस नाटक में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने किसान जीवन को आधार बनाया है। यह नाटक एक बुद्धू किसान और ठाकुर भगत सिंह के आपसी व्यवहार एवं द्वंद्व पर आधारित है। इस नाटक के माध्यम से सामन्ती और पूँजीपति वर्ग के मुखौटे का पर्दाफाश किया गया है। गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्ति ठाकुर भगत सिंह अपनी प्रतिष्ठा और झूठी शान शौकत की आड़ में बुद्धू जैसे भोले-भाले आदमी को किस प्रकार ठगता है का यथार्थ चित्रण है। एक दिन ठाकुर भगत सिंह बुद्धू को घर बुलाते हैं और ट्रैक्टर लेने की बात करते हैं। ट्रैक्टर के लिए जो सरकारी नियम था वह कम से कम बीस बीघा जमीन का था। ठाकुर भरत सिंह के पास केवल सोलह बीघा जमीन है। वे बुद्धू से कहते हैं कि तू मेरे नाम चारबीघा जमीन कर दे। बुद्धू को विश्वास में लेकर ठाकुर भरत सिंह बुद्धू की चारबीघा जमीन हड़प लेते हैं।

ठाकुर भगत सिंह चुनाव लड़ने की तैयारी करते हैं। इसके लिए वे अपनी झूठी ईमानदार छवि को गाँव वालों के सामने रखते हैं। वह बुद्धू को बुलवाकर गाँव वाले के सामने उससे कहलवाते हैं कि ठाकुर बहुत ईमानदार हैं। लेकिन जब शोमरु को यही कहने के लिए बुलाया जाता है तो वह इसका विरोध करता है और गुस्से में आकर कहता है कि ठाकुर बेईमान है। इसी समय दर्शकों में से बुद्धू भी उठकर चिल्लाता है कि ठाकुर साहब बेईमान आदमी है। एक एक करके सभी जनता उठती है और ठाकुर साहब के प्रति अपना विरोध दर्ज करती है। सशंकित ठाकुर साहब भागने लगते हैं, लेकिन जनता उन्हें पकड़कर मारने लगती है। किसी तरह से ठाकुर साहब वहाँ से भागने में कामयाब हो जाते हैं।

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने नाटकों के माध्यम से सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्याओं को चित्रित किया है। भोले-भाले ग्रामीण जनता को किस तरह से पूँजी पति और सामंत ठगते हैं को केंद्रीय आधार बनाया है। इसके साथ ही शोषक-शोषित मजदूर, मजदूर, किसान,

चपरासी, रिक्शे वाले सभी सामान्य से सामान्य आम आदमी के दर्द तथा कसक को व्यक्त करने का प्रयास किया है।

1.6 अब्दुल बिस्मिल्लाह जी का आलोचना साहित्य-

मध्यकालीन हिन्दी काव्य में सांस्कृतिक समन्वय (1985)- मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में मुस्लिम संस्कृति को प्रेम काव्यों में विशेष रूप से देखा जा सकता। सूफी मत का प्रचार-प्रसार इस दौर में अधिक हुआ जिसके परिणाम स्वरूप एक समन्वित संस्कृति का विकास इस समय में हो सका। उस दौर के साहित्य पर इसका प्रभाव कहीं गहरा तो कहीं प्रछन्न रूप में दिखता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने संस्कृति और साहित्य में निहित ऐसे समन्वयपरक तत्वों को खोजा है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने पूरी निरपेक्षता के साथ साहित्य एवं संस्कृति के समन्वयपरक तथ्यों का विश्लेषण वैज्ञानिक दृष्टि के साथ करने का प्रयास किया है और अंत में अपनी स्थापना दी है। वस्तुतः यह उनका शोध-प्रबंध है।

अल्पविराम (1994) -यह किताब आलोचनात्मक लेखों का संकलन है। अध्यापकीय जीवन में लिखे ये लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए है। इसमें प्रमुख रूप से 'प्रेमचन्द की रचना-दृष्टि', 'प्रेमचन्द की संघर्ष चेतना', 'प्रेमचन्द की कहानियों और तत्कालीन राष्ट्रीय परिवेश', 'जिजीविषा की कहानियाँ', 'नयी कहानी आन्दोलन के महत्वपूर्ण कथाकार: अमरकांत', 'सूखापत्ता यानी राष्ट्रीय व्यक्तित्व के विकास की कहानी', 'भाषा के राजगीर (हरीशंकर परसाई)', 'साहित्य में इतिहास का सृजन', 'बकरी का नाट्य सौन्दर्य', 'अनामदास का पोथा: एकांतिक जीवन पर सामाजिक जीवन की तरजीह', 'समकालीन हिन्दी कहानी का परिदृश्य', 'समकालीन कहानी की अंतर्वस्तु', 'इतिहास; संस्कृति और साहित्य के अंतःसंबंध', 'राष्ट्रीय एकता का स्वरूप और रचनाधर्मिता', 'जनवादी कहानी दशा और दिशा', 'हिन्दी के विकास में व्यवधानकारी तत्व', 'बहुजातीय समाज-व्यवस्था में साहित्य की एकता-निरूपक शक्ति' और 'धार्मिक रूढ़िवाद और लेखक' है।

विमर्श के आयाम (2006)- अब्दुल बिस्मिल्लाह ने समाज के साथ बदलते समाज और साहित्य और इसे प्रभावित करने वाले कारणों का आलोचनात्मक विश्लेषण किया है। इसमें जितने भी लेख हैं सभी साहित्य और विमर्श को आधार बनाकर लिखे गए हैं। यह पुस्तक दो खंडों में विभाजित है। खंड एक में 'बाजारवाद के दबाब में साहित्य और साहित्यकार', कहानी से पहले की कहानी', 'हिन्दी कहानी: स्वरूप और विकास ', गहरे मोहभंग की कहानियाँ', 'उपन्यास होता क्या है?', 'भारत विभाजन और हिन्दी उपन्यास', 'सामंती मूल्यों के विरुद्ध: शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ', 'कफन: उर्दू और हिन्दी पाठ का फर्क', 'काव्य-कला पर निराला', 'द्विवेदी जी के कबीर और कबीर के द्विवेदी जी', 'कबीर का पेशा और कबीर की कविता','एक नया गवाक्ष खोलती राही की भाषा','साहित्य में नगर' जैसे बिदुओं पर स्वतंत्र लेख लिखे गए हैं।

खंड दो में हिन्दी साहित्य के साथ-साथ उर्दू साहित्य से संबंधित लेख भी शामिल हैं। लेखक की दिलचस्पी उर्दू साहित्य में भी रहा है। और लेखक ने उर्दू के कई किताबों का हिन्दी में तर्जुमा किया है। लेखक स्वयं कहते हैं- "प्रस्तुत संग्रह में हिन्दी के अलावा उर्दू साहित्य से संबंधित लेख भी शामिल किए गए हैं। मैंने उर्दू साहित्य की विभिन्न विधाओं का हिन्दी में लिप्यंतरण भी किया है। लिप्यंतरण और अनुवाद और लोगों ने भी किए हैं, किन्तु ज्यादातर अनुवादों में रचनात्मकता नहीं दिखाई पड़ती। इसलिए मैंने उर्दूए हिन्दी में अनूदित उपन्यासों की भाषा पर अलग से एक काम किया था, जिसे इस पुस्तक में शामिल किया गया है।"[17] इसमें प्रमुखतया 'उर्दू-फारसी में लिखित राम की कथा', 'हिन्दी में अनुवाद की परंपरा', नेहरू के नाम मंटो का ख़त','मंटो की औरतें ', 'हिन्दी में अनूदित उर्दू उपन्यास', 'मिर्ज़ा हादी रुसवा', 'उमराव जान अदा', 'मीर अम्मन' और 'बाग़ो-बहार' प्रमुख है।

उत्तर आधुनिकता के दौर में (2014)- साहित्य में उत्तर आधुनिकता और विखंडनवाद को लेकर जो वितंडावाद चला उसने सभी को प्रभावित किया। अभी तक आधुनिकता का सही-सही पता ही नहीं चल पाया था कि उत्तर-आधुनिकता का नारा लगने लगा। और कहा जाने लगा कि 'विचारों

[17] अब्दुल, बिस्मिल्लाह. (2006). *विमर्श के आयाम,* अनंग प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ 4

का अंत हो गया है।' मनुष्य को अपनी जड़ों से जुड़ने देने के लिए तरह-तरह के वाद आते रहते हैं उसी में एक वाद विखंडनवाद भी है। इस पुस्तक के चार खंड हैं। पहले खंड में 'भाषा, संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति और इस्लामिक कल्चर्स', 'कबीर का मर्म', कबीर का मर्म', 'मीरा की काव्य-भाषा',' 'राहुल सांस्कृत्यायन की 'दक्खिनी हिन्दी काव्य धारा', 'प्रेमचन्द: उर्दू-हिन्दी का फ़र्क',' रामविलास शर्मा की आलोचना और हिन्दी की नई पीढ़ी','नौटंकी' प्रमुख है। इसी तरह दूसरे खंड में 'हिन्दी-उर्दू का बहनापा', 'ग़ज़ल को ग़ज़ल क्यों कहें', 'ग़ालिब का मुहावरा', 'बाइबिल में ग़ज़ल', 'पं. रतननाथ परासर' और 'फ़सानः-ए-आज़ाद',' जिन्दगी का हुस्न और फ़ैज़', 'उर्दू शायरी के तमाम रंग', फ़ैज़ की शायरी', 'मंटो का यज़ीद','सज्जाद ज़हीर होने का अर्थ' मुख्य है।

तीसरे खंड में 'कृषि-सभ्यता का ज़मीन', 'सातवीं शताब्दी का उपन्यास हिन्दी में', 'अग्निपर्व शान्ति निकेतन: अपरिहार्य पुस्तक', प्रमुख है। चौथे खंड में 'व्योमकेश दरवेश को पढ़ते हुए', 'आस्तीं किसी की लहू किसी का' का प्रमुख है। अंतिम खंड में 'उत्तर आधुनिकता का प्रेत' विषय पर बात की गई है।

1.7 अनूदित रचनाएँ-

पाकिस्तान कहानियाँ- (पाकिस्तानी कहानी के पचास साल) 2001- इस संग्रह में उर्दू की तेईस, सिन्धी की तीन, पंजाबी की दो, सराइकी की एक, पश्तो की दो एवं बलूची भाषा की एक कहानी संकलित है। कहानीकारों में सआदत हसन मंटो, मुमताज़ मुफ़्ती, ग़ुलाम अब्बास, अहमद नदीम क़समी, हाजराम सरूर, शौकत सिद्दीकी, इंतिज़ार हुसैन आदि प्रमुख नाम हैं। इस किताब का प्रकाशन साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली से हुआ है। पाकिस्तान के तरक्की पसंद साहित्यकारों ने आम आदमी के जीवन संघर्ष, राजनीतिक दमन, धार्मिक कट्टरता एवं जड़ता को आधार बनाकर जो कहानियाँ लिखी हैं उसका तर्जुमा अब्दुल बिस्मिल्लाह ने हिन्दी में किया है। पाकिस्तानी साहित्य से परिचय करवाने में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अहम भूमिका निभाई है।

नक़्श-ए-फ़रियादी (2020)-

नक़्श-ए-फ़रियादी' फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ का पहला कविता-संग्रह है, यह पहली बार 1941 में प्रकाशित हुआ था। इश्क और इंकलाब का जो अटूट संबंध फ़ैज़ की समूची शायरी में दिखती है, उसका बीज इसी संग्रह में निहित है। इस संग्रह में तीसरे-चौथे दशक की उनकी तहरीरें शामिल हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इसका तर्जुमा इस तरह से किया कि यह कहीं से भी अनूदित रचना नहीं लगती। ऐसा लगता है कि फ़ैज़ ने हिन्दी में ही लिखा हो।

दस्ते-सबा (2020)- यह फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ का दूसरा कविता-संग्रह है। 1952 में प्रकाशित इस संग्रह का समूचे प्रगतिशील साहित्य में ऐतिहासिक महत्त्व है। जेल से छूटने के बाद लिखी गई कविताओं में एक नया पहलू भी जुड़ गया। फ़ैज़ ने जेल के तजुर्बा के बारे में लिखते हैं- "जेलख़ाना आशिक़ी की तरह ख़ुद एक बुनियादी तजुर्बा है, जिसमें फ़िक्र-ओ-नज़र का एकाध नया दरीचा ख़ुद-ब-ख़ुद खुल जाता है।' इसलिए इस संग्रह में हम फ़ैज़ के उस जज़्बे को और पुरज़ोर होता देख सकते हैं, जिसे कभी उन्होंने 'क्यों न जहाँ का ग़म अपना लें' कहकर दिखाया था। साथ ही अपने उसूलों के लिए लड़ने का फौलादी इरादा भी कि 'मता-ए-लौह-ओ-क़लम छिन गई तो क्या ग़म है।"[18]

ज़िन्दाँनामा (2020)- इंकलाबी शायर फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ की शायरी का बुनियादी स्वर आवाम का हक़ है। क्रांतिकारी रोमानियत के इस शायर तेवर में सत्ता प्रतिष्ठानों के प्रति को तल्खी है वह वामपंथी विचारधारा के कारण है। प्रगतिशील मूल्यों की तरफ़दारी करने वाली इनकी शायरी इनके जीते-जी ही पाकिस्तान के साथ ही भाषा की सरहदों को पार कर दुनिया-भर के शोषित-पीड़ित अवाम की आवाज़ बन गई थी। 'ज़िन्दाँनामा' का विशेष महत्त्व है। फ़ैज़ केवल जज़बाती शायर नहीं है बल्कि अपने उसूलों के लिए इन्होंने क़ैद भी काटी। सत्ता के दमन की आगे कभी झुके नहीं। इस संग्रह की भूमिका प्रगतिशील आन्दोलन की दिग्गज और फ़ैज़ अहमद के मित्र सज्जाद ज़हीर ने लिखी है।

सारे सुख़न हमारे- (1987)- 'सारे सुख़न हमारे' उनकी बेहतरीन शायरी का उर्दू से हिन्दी में किया गया तर्जुमा है। इसमें फ़ैज़ की तमाम ग़ज़लों, नज़्मों, गीतों और क़तआत को पहली बार हिन्दी में

---

[18] दस्ते-सबा की भूमिका से

संकलित करने का कार्य अब्दुल बिस्मिल्लाह ने किया। इसमें उनका आख़िरी कलाम भी शामिल है। फ़ैज़ पाकिस्तान के शायर हैं, लेकिन उन्हें भारतीय महाद्वीप में खूब पसंद किया जाता है। जहाँ भी सत्ता का दमन आम जनता पर होता है वहाँ की जनता के लिए फ़ैज़ की शायरी स्लोगन और नारों के शक्ल में सत्ता का विरोध करती नजर आती है।

दस्तम्बू (2012)- यह मिर्जा असद-उल्लाह खां ग़ालिब के गजलों का हिन्दी तर्जुमा है। ग़ालिब भारत ही नहीं, बल्कि विश्व के महान कवियों में शामिल हैं। ग़ालिब ने 1857 के प्रथम स्वतंत्रा आन्दोलन के सम्बन्ध में अपनी जो रूदाद लिखी है उससे उनकी राजनीतिक विचारधारा का पता चलता है। 'दस्तंबू' फारसी भाषा का शब्द का है जिसका अर्थ होता है- पुष्पगुच्छ। ग़ालिब ने अपनी इस छोटी-सी किताब में 11 मई, 1857 से 31 जुलाई, 1857 तक की हलचलों का कवित्वमय वर्णन किया है।

उर्दू की आखिरी किताब (2016)- यह उर्दू में लिखे व्यंग्य का हिन्दी अनुवाद है। इसमें इब्ने इंशा का अन्दाज़ सबसे अलहदा और प्रभाव में कहीं ज़्यादा तीक्ष्ण है। 'उर्दू की आख़िरी किताब' पाठ्य-पुस्तक शैली में लिखी गई है। इसमें भूगोल, इतिहास, व्याकरण, गणित, विज्ञान आदि विभिन्न विषयों पर व्यंग्यात्मक पाठ तथा प्रश्नावलियाँ हैं। इंशा ने जिन चीजों को लेकर व्यंग्य किया है उसमें छोटी-मोटी चीज़ें नहीं हैं बल्कि विभाजन, हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की अवधारणा, मुस्लिम बादशाहों का शासन, कायदे-आज़म जिन्ना, आज़ादी का छद्म, शिक्षा-व्यवस्था, थोथी नैतिकता, भ्रष्ट राजनीति जैसे विषय प्रमुख हैं।

यहूदी की लड़की (2015)

आगा हश्र कश्मीरी द्वारा लिखित 'यहूदी की लड़की' का अनुवाद अब्दुल बिस्मिल्लाह ने किया है। आगा हश्र कश्मीरी उर्दू और हिन्दी दोनों ही रंगमंचों के लिए समान रूप से जाने जाते हैं। 'यहूदी की लड़की' आगा हश्र का एक बहुचर्चित नाटक है। इस नाटक के माध्यम से आगा हश्र कश्मीरी ने यहूदियों पर होने वाले रोमनों के जुल्म को उभारकर धर्मांधता, सत्ता के अहंकार तथा मानवीय भावनाओं की विजय का मनोरम रूप प्रस्तुत किया है।

1.8- पुरस्कार एवं सम्मान:

कोई भी रचनाकार किसी पुरस्कार एवं सम्मान के लिए साहित्य सृजन नहीं करता है । यह मध्यकाल नहीं कि राजा से पुरस्कार की अभिलाषा में राजा का चरण एवं अभिनंदन किया जाय। समकालीन कथाकारों में अपनी अलग पहचान बनाने वाले अब्दुल बिस्मिल्लाह को अपनी साहित्यिक कृतियों के लिए सम्मानित किया है और कृतियों को पुरस्कार से नवाजा गया है। अब्दुल बिस्मिल्लाह को तथा उनकी रचनाओं को अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है जो निम्न हैं।

उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान पुरस्कार:-

सबसे पहले 1977 में अब्दुल बिस्मिल्लाह के 'मुझे बोलने दो' (कविता-संग्रह) को उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया। 'रैन बसेरा' (कहानी-संग्रह) को उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के यशपाल पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

सोवियतलैंड नेहरू पुरस्कार:-

अब्दुल बिस्मिल्लाह को अपने सबसे चर्चित उपन्यास 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' के लिए सोवियत लैंड पुरस्कार सन् 1984 में प्राप्त हुआ। यह पुरस्कार सोवियत गणराज्य रूस द्वारा दिया जाता रहा है।

मध्य प्रदेश का केडिया पुरस्कार :-

'झीनी झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास पर अब्दुल्ल बिस्मिल्लाह को 1987 में केडिया पुरस्कार प्राप्त हुआ।

दिल्ली हिंदी अकादमी पुरस्कार :-

'वली मुहम्मद और करीमनबी की कविताएँ' काव्य-संग्रह को दिल्ली हिंदी अकादमी से पुरस्कृत किया गया है।

मध्य प्रदेश साहित्य परिषद् पुरस्कार :-

'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास को मध्यप्रदेश साहित्य परिषद का 'वीरसिंह देव' पुरस्कार मिला है।

द्वितीय अध्याय

साहित्य का समाजशास्त्र और उपन्यासः सैद्धांतिक विवेचन

साहित्य में समाज का हूबहू अक्स हो ऐसा नहीं है। साहित्य में समाज का यथार्थ रूप अभिव्यक्त होता है, लेकिन उसमें साहित्यिक कला का समावेश उसे कोरा समाजशास्त्रीय नहीं बनाता है। यह जरूर है कि साहित्य जनता के विचारों, आशाओं, आकांक्षाओं एवं उम्मीदों का मूर्तरूप होता है। इसी संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'जनता के चित्तवृत्तियों का प्रतिबिंब' कहा है। साहित्यकार जब अपने विचार, अनुभव, भाव और कल्पना आदि को जब शब्दों के माध्यम से कलात्मक अभिव्यक्ति देता है तो वह हमारे समाने साहित्यिक रूप में उपस्थित होता है। आधुनिक काल में साहित्य का व्यापक फ़लक है। गद्य और पद्य दोनों को साहित्यिक विधा के रूप में लिया जाता है। साहित्य का संदर्भ जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति से है और जीवन निरंतर परिवर्तनशील है न की स्थिर होती है। जीवन के तरह ही साहित्य भी निरंतर गतिशील है। चूंकि साहित्य देशकाल, वातावरण से परे नहीं है, इसलिए इसका स्वरूप एवं अवधारणा परिवर्तित होता रहता है। साहित्य और समाज के अंतर्संबंध में के बारे में विद्वानों ने साहित्य की अनेक परिभाषाएँ दी हैं।

2.1- समाज: अर्थ और परिभाषा

समाज शब्द की व्युत्पत्ति 'अज' धातु में 'सम' उपसर्ग 'धज' प्रत्यय के योग से बना है। 'समाज' का केन्द्र मानव है और मानव का संबंध समाज से है। सामान्यतः'समाज' शब्द का प्रयोग व्यक्तियों के समूह के लिए किया जाता है। समाज का शाब्दिक अर्थ है- मानव समूह है। समाज कोश में समाज को इस प्रकार परिभाषित किया गया है-

"समाज- मिलना, एकत्र होना, समूह, संघ, दल, सभा, समिति, समान कार्य करने वाला समूह, विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए संघटित संस्था।"[1]

[1]वृहत हिन्दी कोश,(1992). पृ.1202

"समाज- समूह। वह संस्था जो बहुत से लोगों ने मिलकर किसी विशिष्ट उद्देश्य से स्थापित की हो।"[2] मनुष्य सामाजिक प्राणी है। गुफाओं से निकलकर मनुष्य जब रहना शुरू किया तो पहली बार वह समाज निर्माण की प्रक्रिया में आया। उसका पहला प्रयास समूह निर्माण का था। मानव और समाज का संबंध सदियों से संगठित रूप में रहा है। एक समाज का निर्माण तभी संभव है जब व्यक्तियों के समूह में पारस्परिक संबंध हो और वे संगठित होकर रहें। व्यक्तियों के पारस्परिक अन्योन्याश्रित संबंध के बिना समाज की कल्पना नहीं की जा सकती।

समाज के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किए हैं।

- According to Maclver and Page – "Society is a system of usages and procedures, of authority and mutual aid of many groupings and division, of controls of human behavior and of liberties."[3]

यानी समाज, प्रथाओं, रिवाजों और कार्य करने की नीति, सत्ता और पारस्परिक सहायता की अनेक समूहों और श्रेणियों की, मानव व्यवहारों के नियंत्रण और स्वतंत्रता की व्यवस्था है।

इस परिभाषा के अनुसार समाज के विस्तृत स्वरूप को व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है। समाज का केंद्र मानव समाज है। मानव के व्यवहारों तथा रीति-रिवाजों, कार्य-पद्धति, एक-दूसरे के प्रति सहयोगी की भावना, उनकी स्वतंत्रता से संबन्धित व्यवस्था में समाज की महत्वपूर्ण भूमिका है।

According to Geinsberg – "A Society is a collection of individuals united by certain relations or modes of behavior, which mark them off from others who do not enter into these relations, or who differ from them in behavior."[4]

---

[2]संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर. पृ. 956

[3] Anand Navneet and Akhtar, shamin (2009) *sociology, sepectum books* page 31

समाज किन्हीं सम्बन्धों या व्यवहार पद्धतियों से जुड़े व्यक्तियों का समूह है जो उन्हें दूसरों के साथ शामिल नहीं होते है या उनका व्यवहार उनसे अलग होता है, से अलग करता है। समाज सामाजिक सम्बन्धों से बना एक जाल है जिसमें मानव समूह एक-दूसरे से बंधे हुए हैं तथा अपने भिन्न-भिन्न व्यवहारों और रीति-रिवाजों से एक अलग समाज का निर्माण करते हैं। स्थान, रीति-रिवाज, भाषा, संस्कृति, खान-पान आदि के कारण भी अलग-अलग समाज समूह का निर्माण होता है। भारत में इसके संदर्भ में जाति भी अहम भूमिका निभाती है।

According to Giddings- "Society is the union itself, the organization, the sum of formal relationship, in which associating individuals are bound together."[5] समाज स्वयं एक संघ है, एक संगठन है, औपचारिक सम्बन्धों का समग्र है जिसमें संबंध व्यक्ति परस्पर बंधे होते हैं।

समाज के संदर्भ में आलोचक डॉ. नगेन्द्र का अभिमत है – "समाज से अभिप्राय सामुदायिक जीवन की ऐसी अनवरत एवं नियामक व्यवस्था से है, जिसका निर्माण व्यक्ति पारस्परिक हित तथा सुरक्षा के निमित्त जाने अनजाने कर लेते हैं।"[6]

समाज में रहते हुए व्यक्ति एक ऐसे संगठन का निर्माण करते हैं जिसके द्वारा उनके समस्त क्रिया कलापों, व्यवहारों, नियमों, सुरक्षा संबंधी व्यवस्थाओं तथा एक-दूसरे के हितों का ध्यान रखा जाता है। समाज में कई बार व्यक्तियों के हितों की टकराहट भी बनी रहती है। समाज एक जटिल प्रक्रिया है। इससे प्रक्रिया से सभी का जुड़ाव बनाता है। चाहे वह कितना भी असामाजिक क्यों न हो।

---

[4] Anand Navneet and Akhtar, shamin (2009) *sociology, sepectum books* page 31

[5] Anand Navneet and Akhtar, shamin (2009) *sociology, sepectum books* page 31

[6]नगेन्द्र, (1982) साहित्य का समाजशास्त्र. पृ. 6

समाज में ही मनुष्य के शारीरिक और बौद्धिक विकास की प्रक्रिया प्रतिफलित होती है। हम कह सकते हैं कि मानव जीवन का आधार स्तम्भ समाज है। समाजशास्त्र के अनुसार- “समाज मनुष्यों का समूह है। किसी भी समाज को समझने के लिए उसके विविध अंगों, परिवार, वर्ग, वर्ण, शहरी और ग्रामीण जन-जीवन अथवा राज्य को, देशकाल को समझना अत्यावश्यक होता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक अन्तःक्रिया एवं उसमें परिव्याप्त नाना प्रकार के आध्यात्मिक, धार्मिक, नैतिक व राजनैतिक चेतना का अनुशीलन भी आवश्यक है।”[7] समाज को जानने के लिए उसके संगठित रूप को जानना तथा सामाजिक अन्तःक्रिया के आधार पर मनुष्य की जरूरतों की पूर्ति संभव है। इसके साथ-साथ मनुष्य का सामाजिक संबंध मानव की संपूर्णता का बोध कराता है। सभ्यता का रक्षक, पोषक के रूप में समाज की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। “व्यापक अर्थ में ‘समाज’ शब्द का प्रयोग सामाजिक सम्बन्धों की समूची व्यवस्था के संदर्भ में किया जाता है । जब किसी निश्चित देश और काल से सीमित समाज का नाम न लेकर हम केवल ‘मानव-समाज’ या समाज कहते हैं तो ‘समाज’ शब्द का व्यापक अर्थ होता है।”[8] समाज में ही मनुष्य के जीवन और व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ उसके विचारों, क्रियाकलापों, सामाजिक सम्बन्धों का दृढ़ आयाम स्थापित होता है। उसकी समस्त इच्छाओं, आशाओं, आकांक्षाओं की पूर्ति समाज में ही होती है।

“समाज क्रिया द्वारा एक-दूसरे पर प्रभाव डालने वाले व्यक्तियों का संगठन है। अपने व्यक्तियों पर परस्पर प्रभाव डालने वाली सभी स्थायी क्रियाएँ समाज के अंतर्गत होती है और वह खुद व्यक्तियों के परिश्रम (क्रिया) के पारस्परिक संबंध पर आश्रित है।”[9] समाज वह जगह है जहाँ मानव जीवन निरन्तर विकास की ओर अग्रसर होता है जहाँ एक-दूसरे की भावनाओं, अनुभूतियों को समझता है और अपने

[7]तिवारी, गोरखनाथ, (2008) . *अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन.* पृ.19

[8]सिंह, वासुदेव, (2001). *हिन्दी संतकाव्य समाजशास्त्रीय अध्ययन*. पृ.174

[9]संस्कृत्यायन, राहुल,(2012) *मानव-समाज, महादेव साहा (संशोधन कर्ता)*, पृ. 11

उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक होता है। अतः समाज का वास्तविक आधार केवल व्यक्तियों का समूह नहीं है बल्कि मानव का एक-दूसरे के साथ सामाजिक संबंध है।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समाज व्यक्तियों के समूह, उनके आचार-व्यवहार एवं जीवन के समस्त क्रिया-कलापों का वह जगह है जहाँ वह अनुभव एवं सामाजिक नियम-व्यवहार के माध्यम से सिखता है। समाज के पति व्यक्ति का कुछ उत्तरदायित्व होता है जिसका उसे निर्वाहन करना पड़ता है। समाज के साथ ही साहित्य के कुछ परिभाषाओं के माध्यम से समझने का प्रयास किया गया है।

आधुनिक युग में बदलती हुई परिस्थितियाँ को आत्मसात करते हुए साहित्य का विकास जिस रूप में हुआ वहाँ जीवन की नई व्याख्या मौजूद है। वर्तमान समय में ज्ञान-विज्ञान के प्रसार के साथ-साथ साहित्य की अवधारणा में भी परिवर्तन हुआ। अब साहित्य को केवल भावना तक सीमित नहीं रखा जा सकता है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने ‘साहित्य की महत्ता’ नामक निबंध में लिखा है कि, “ज्ञान राशि के संचित कोश का नाम साहित्य है।” बाबू श्यामसुंदर दास ने ‘साहित्य’ शब्द के दो अर्थ अभिहित किए हैं। उनके अनुसार “अँग्रेजी के लिटरेचर शब्द कि भांति हिन्दी का साहित्य शब्द भी अब दो अर्थो में प्रयुक्त होने लगा है। बोल चाल की भाषा में हम किसी भी छपी हुई पुस्तक को ‘साहित्य’ की संज्ञा दे सकते हैं। यहाँ तक कि दवाइयों के साथ आने वाले छपे हुए पर्चे भी साहित्य कहलाते हैं। किन्तु दूसरे और अधिक उपयुक्त अर्थ में साहित्य से उन्हीं पुस्तकों का बोध होता है जिनमें कला का समावेश है। [10]बाबू श्यामसुंदर दास के कथन से यह स्पष्ट होता है कि सर्वोच्च भावों और विचारों की कलात्मक अभिव्यक्ति ही साहित्य है।

[10]श्यामसुंदर दास(1986) *साहित्यालोचन*. राजकमल प्रकाशन ,2015 पृ 182

प्रेमचंद के विचार में साहित्य अपने युग से, समाज से बहुत ही घनिष्ठ रूप से जुड़ा रहता है, इसलिए उन्होंने साहित्य को "जीवन की आलोचना" माना है।[11] जबकि डॉ. नगेंद्र ने कहा है कि "साहित्य एक प्रकार से कलात्मक विचार का नाम है।" डॉ. नगेंद्र ने "विचार और अनुभूति" नामक निबंध में माना है कि "साहित्य का जीवन से दोहरा संबंध होता है। एक क्रिया रूप में तो दूसरा प्रतिक्रिया रूप में। क्रिया रूप में वह जीवन की अभिव्यक्ति है और प्रतिक्रिया रूप में उसका निर्माता और पोषक। विद्वानों की परिभाषाओं के विश्लेषण के बाद यह विदित होता है कि साहित्य की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं हो सकती, क्योंकि इसकी अवधारणा सतत परिवर्तनशील है। इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि भाषा का हर व्यक्त रूप साहित्य नहीं हो सकता। साहित्य मानव-चेतना का वाहक है। साहित्य का संबंध मानवीय संवेदना और विचार से है। मानवीय संवेदना युगीन परिस्थितियों, तथ्यों और घटनाओं से प्रभावित होती है। इस प्रकार युग जीवन में घटित होने वाले परिवर्तन मानवीय संवेदना को प्रभावित करते हैं जो साहित्य में भी उद्धाटित होता है।

पाश्चात्य विचारकों की भांति भारतीय विचारकों ने साहित्य की समाजशास्त्रीय मान्यताओं का निरूपण करने की उस रूप में पहल नहीं की है परंतु उनकी साहित्य संबंधी मान्यताओं में 'साहित्य का समाजशास्त्र' निहित है। हिन्दी के प्रथम निबंधकार बालकृष्णभट्ट ने अपने निबंध 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' में इस पर विचार करते हैं। वे लिखते हैं- "प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के मनुष्य के हृदय का आदर्श रूप है। वह जन समूह के चित्त का चित्रपट है।"[12]

किसी समूह/जाति/वर्ग विशेष के भाव-विचार एवं मान्यताएँ किसी युग विशेष के साहित्य के अध्ययन द्वारा जानी जा सकती है। भट्ट जी साहित्य को समाज की प्रतिछाया मानते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि साहित्य का मुख्य सरोकार समाज है। दुःख-सुख, हर्ष–विषाद, पीड़ा को

---

[11] प्रेमचंद कुछ विचार,डाइमंड पॉकेट बुक्स पृ. 17

[12] https://hindisarang.com/sahitya-jansamuh-ke-hriday-ka-vikas-hai-balkrshn-bhatt/

अनावृत करने का काम साहित्यकार करता है। मानव जिन परिस्थितियों में अपना जीवन व्यतीत करता है उस अनुभव को उद्घाटन करने का कार्य साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से करता है। जिस प्रकार साहित्य की सोच और रचना के लिए समाज का होना जरूरी है उसी प्रकार साहित्य के अभाव में समाज की पूर्णता का अवलोकन नहीं हो सकता। साहित्य के बिना मनुष्य बिना पूँछ के पशु के समान हो जाता है। इसलिए समाज और व्यक्ति के लिए साहित्य का होना आवश्यक है। मनुष्य के आशाओं, इच्छाओं, उम्मीदों पर समाज, और संस्कृति का भी प्रभाव पड़ता है। इसलिए किसी भी रचना के संदर्भ को पूरी तरह से समझने के लिए उसका समाजशास्त्रीय अध्ययन आवश्यक है।

समकालीन समय में तकनीकी उन्नति से एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के बहुत करीब आ गए हैं। लेकिन 'मीडियम इज मैसेज' के दौर में सामाजिक सामंजस्य में कमी आई है। सामाजिक समरसता बनी रहे इसके लिए जरूरी है कि साहित्य को समाज के उन हिस्सों पर विशेष बल देना है जहाँ अभी भी जीवन की बुनियादी जरूरतें नहीं पहुँच पाई हैं। साहित्य का समाजशास्त्र मनुष्य के बुनियादी ढांचों (भौतिक एवं भावनात्मक) को उद्घाटित करने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी भी है। इसके लिए 'साहित्य का समाजशास्त्रीय' अध्ययन की सहायता लेनी पड़ेगी।

2.2- साहित्य का समाजशास्त्र

साहित्य मानव जीवन की अभिव्यक्ति है। साहित्य के माध्यम से मनुष्य जीवन की व्यापक होती है। चूंकि मनुष्य सामाजिक प्राणी है और साहित्य के केंद्र में भी मानव जीवन ही है इसलिए दोनों का अन्योन्याश्रित संबंध बनाता है। समाजशास्त्र में समाज के पारस्परिक संबंधों, मनुष्य के व्यवहार तथा उसकी अन्तःक्रियाओं का विश्लेषण किया जाता है। साहित्य व समाजशास्त्र दोनों मिलकर अर्थनीति, विचारनीति और राजनीति की भांति एक नया शास्त्र गढ़ते हैं जिसे साहित्य का समाजशास्त्र कहा जाता है। 'साहित्य का समाजशास्त्र' 19वीं सदी के अंतिम दशक में अधिक प्रभावी विषय बनकर उभरा है। इसके शाब्दिक अर्थों को देखें तो हम पाते हैं कि वह शास्त्र जो साहित्य के माध्यम से समाज का

अध्ययन करता है, उसे साहित्य का समाजशास्त्र कहा जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो साहित्य के समाजशास्त्र का अर्थ मनुष्य के सामाजिक जीवन में साहित्य का विशद अध्ययन है।

साहित्य का समाजशास्त्र वह ज्ञान है जो कलाकृतियों तथा कलाकारों के पारस्परिक प्रभाव के संदर्भ में कला (साहित्य) के स्वरूप का विवेचन करती है। इसलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। साहित्य और समाज दोनों एक दूसरे के अभिन्न अंग है। जहाँ समाज है वहाँ साहित्य है। साहित्य समाज के बाह्य एवं अन्तः दोनों प्रक्रियाओं से गुजरता है जिससे समाज की रूपरेखा दिखाई देती है। साहित्य का समाजशास्त्र साहित्य को एक संस्था के रूप में प्रतिष्ठित कर लेखक, पाठक एवं आलोचक के परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन भी करता है। आधुनिक समय में साहित्य के किसी भी विधा के अध्ययन, मूल्यांकन एवं विश्लेषण के लिए साहित्य के समाजशास्त्र का प्रयोग किया जाता है।

वरिष्ठ आलोचक डॉ. निर्मला जैन साहित्य का समाजशास्त्रीय चिन्तन करते हुए लिखती हैं कि- "अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एक विशिष्ट मध्यवर्गीय पाठक समुदाय के उदय ने भी लेखक की निर्भरता की स्थिति को व्यावसायिकता की स्थिति में बदलने में मदद की।"[13] आधुनिक काल में मध्यवर्ग की सांस्कृतिक पहचान बहुसंख्यक संस्कृति से परे साहित्य को वास्तविक अर्थ में दिखाई देता है। साहित्य को समाज प्रभावित करता है। यह लेखक की स्थिति, उसकी सृजनात्मक क्षमता को अनेक रूपों में प्रभावित कर सकता है। साहित्य के लिए ऐसा वातावरण हितकर नहीं है कि वह अपने चारों ओर वातावरण का मात्र तत्व भर बन कर रह जाए।

समाजशास्त्र विशद रूप से मनुष्य के सामाजिक क्रिया-कलापों एवं उसके आचार-विचार का अध्ययन करता है। उन कारकों को विश्लेषित करने का प्रयास करता है जो समाज को प्रभावित करते हैं। अधिकांश समाजशास्त्री समाजशास्त्र को सामाजिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने वाला विज्ञान मानते हैं। तो कुछ समाजशास्त्रियों के अनुसार सामाजिक सम्बन्धों, व्यवहारों तथा व्यवस्था आदि के

---

[13]जैन, डॉ. निर्मला (2004). *आधुनिक साहित्य: मूल्य और मूल्यांकन* , पृ. 108

संबंध में विशुद्ध ज्ञान प्रस्तुत करने वाला विज्ञान है। समाजशास्त्र का संबंध केवल घटनाओं के वर्णन मात्र में नहीं होता है।

साहित्य की समाजशास्त्रीय आलोचना के विकास ने मानव की बौद्धिक विचारधारा को एक नवीन दृष्टिकोण दिया है जिसके परिणाम स्वरूप ज्ञान के नवीन शाखा का प्रादुर्भाव हुआ। इसे ही साहित्य का समाजशास्त्र कहा जाता है। साहित्य और समाजशास्त्र को एक दूसरे के समीप लाकर समझने में सहायक होता है। इस संदर्भ में एलिन स्विंग वुड अपने मत को इस रूप में प्रतिपादित करते हैं – "विषय वस्तु की दृष्टि से साहित्य और समाजशास्त्र समान स्तर रखते हैं।"[14] उपर्युक्त कथन का तात्पर्य यह है कि दोनों का अध्ययन का विषय समाज है। समाजशास्त्र समग्र रूप में समाज का क्रमबद्ध अध्ययन है। वह समाज के किसी विशेष पक्ष का अध्ययन नहीं करता वरन उसके सामान्य पक्षों का समग्रता के साथ अध्ययन करता है। सेमुयल कोइनिंग की मान्यता है कि- " समाजशास्त्र का संबंध मूलतः मानव के सामूहिक कार्यों को संचालित करने वाले सामाजिक सम्बन्धों एवं प्रक्रियाओं से है, तथापि इस शास्त्र का लक्ष्य व्यक्ति के सामूहिक जीवन का समग्र रूप से अध्ययन, उसके शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक स्वरूप, उसकी पाशविक व अर्जित प्रकृति का अध्ययन करना भी है।"[15] साहित्य सृजन स्वयं में एक सामाजिक प्रक्रिया है। इसके माध्यम से साहित्य और समाज के अंतर्संबंधों को व्याख्यायित किया जाता है।

भारतीय समाजशास्त्री डी.पी.मुखर्जी ने भी साहित्य और समाजशास्त्र के संबंधों को विश्लेषित किया है। वे लिखते हैं- "साहित्यिक परम्परा और प्रयोग जो साहित्यिक इतिहास और साहित्य की विषयवस्तु की दृष्टि से सांस्कृतिक परम्पराओं और प्रयोग की दृष्टि से एक बहुत प्रभावोत्पादक साधन और अभिव्यक्ति है, जो समाज प्रक्रिया से प्रभावित होती है और उसे प्रभावित करती है।"[16] समाजशास्त्र

---

[14]एलिनवुड. द *सोशियोलॉजी ऑफ लिटरेचर*. पृ. 18

[15]सेमुएल कोइनिंग. (2016). समाजशात्र, अनुवाद-डॉ. एस.पी. जैन, पृ. 186

[16]मुखर्जी , डी.पी. *डाइवर्सिटीज़*, पृ. 46

की विषयवस्तु के अंतर्गत सौंदर्यात्मक एवं अभिव्यक्ति मूलक संस्थाओं रखा गया है। साहित्य इन्हीं कलात्मक संस्थाओं का एक संस्था है। यही कारण कि साहित्य समाजशास्त्र अध्ययन का विषय बन जाता है।

संस्था के रूप में साहित्य अत्यन्त प्राचीन काल से समाज में अपनी पकड़ बनाए है। पश्चिम के विद्वान सर्वप्रथम बर्नेट ने सबसे पहले इस तथ्य को प्रतिपादित किया है। यदि नियमित संस्थाओं का अभाव हो जाए तो ऐसे में साहित्य विचार का यंत्र मात्र होकर रह जाएगा। साहित्य में समाज की विभिन्न आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक संस्थाओं का स्वरूप एवं पारस्परिक संबंध साहित्य में चित्रित होता है। इस संदर्भ में रुचेक का तर्क समीचीन प्रतीत होता है। वे लिखते हैं- "साहित्य आर्थिक, पारिवारिक सम्बन्धों, जलवायु और प्रादेशिकता राजनीतिक घटनाओं, आचरणों, युद्धों, धर्मों और पर्यावरण तथा सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं का प्रतिबिम्बन करता है।"[17] जिस तरह से इन सभी का वर्णन एवं विश्लेषण साहित्य में किया जाता है उसी तरह सामाजिक विश्लेषण में इनकी आवश्यकता पड़ती है। समाजशास्त्र भी इन सभी को अपनी विषय वस्तु में शामिल किए हुए है।

साहित्य सदैव आलोचना से संबंधित रहा है। बर्न्स के अनुसार- "आलोचनात्मक क्रिया के रूप में समाजशास्त्र स्वयं को परिभाषित करता है...समाजशास्त्र का स्वभाव आलोचना है। ...समाजशास्त्री का यह कार्य है कि वह अपनी जनता और उसकी सामाजिक संस्थाओं से संबन्धित उपकरणों के बारे में आलोचनात्मक परिचर्या का आयोजन करें।"[18] यथार्थतः साहित्य की समाजशास्त्रीय आलोचना एवं पद्धति के विकास में दोनों के विषय एवं प्रकृति में साम्य है जिसके कारण "साहित्य का समाजशास्त्र" पृथक विषय बनकर रह गया है।

---

[17]जे.एस.एच : सोशियोलॉजी ऑफ लिटरेचर 132

[18]बर्न्स. सोशियोलॉजी ऑफ लिटरेचर, पृ.

साहित्य का समाजशास्त्र अभी अपनी शैशवावस्था में है। साहित्य के समाजशास्त्रियों ने साहित्य के समाजशास्त्र की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी है जो सर्वमान्य हो। वे साहित्य की समाजशास्त्रीय पद्धति के स्वरूप निर्धारण पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करते रहे हैं। साहित्य के समाजशास्त्र के जनक एच.तेन से लेकर आधुनिक मार्क्सवादी विचारक पद्धति मूलक विश्लेषण तक ही सीमित रहे हैं। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि साहित्य का समाजशास्त्र ज्ञान कि वह शाखा है जो साहित्य के माध्यम से समाज का क्रमबद्ध अध्ययन करता है। कृति, कृतिकार और जनता के मध्य होने वाली अंतःक्रियाओं के परिणाम स्वरूप निर्मित होने वाली संरचनाओं जिनके आधार पर कोई भी कृति अपना स्वरूप ग्रहण करती है, का वस्तुनिष्ठ अध्ययन करने वाला विज्ञान साहित्य का समाजशास्त्र है।

साहित्य व समाज का परस्पर संबंध को लेकर समाजशास्त्री समाज में घटित और इससे संबन्धित तत्व की खोज करता है। वह सामाजिक सांस्कृतिक घटनाओं, प्रारूपों एवं अनेक प्रकार के बाह्य एवं अन्तः सम्बन्धों का भी अध्ययन करता है। इस प्रकार समाज के भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति साहित्य करता है। समाजशास्त्रीय अध्ययन के केंद्र में समाज होता है और समाज के केंद्र में मनुष्य जीवन। मनुष्य के समूहिक हितों की रक्षा के लिए समाज की रचना की जाती है। समाज में रहकर ही मनुष्य विभिन्न प्रकार का कार्य-व्यवहार करता है। इन सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था में सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, मान्यताएँ महत्वपूर्ण हैं। समाजशास्त्र सामाजिक संबंधों को व्यवस्थित करने वाले प्रमुख आधारों, विभिन्न प्रकार की मान्यताओं, नियंत्रण व अधिकार के स्वरूपों व पारस्परिक सहयोग आदि को जानने का प्रयास करता है। समाज कभी स्थिर नहीं रहता, गतिशीलता एवं विकासशीलता ही समाज का पहचान है। समाज पर परिस्थितियों और परिवेश का भी प्रभाव पड़ता है। समाजशास्त्र में समाज को प्रभावित करने वाले घटकों, कारकों का विस्तृत अध्ययन किया जाता है।

हिन्दी में साहित्य के समाजशास्त्रीय चिन्तन, स्वरूप और प्रयोजन के बारे में आलोचकों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। 'साहित्य का समाजशास्त्र' को समाजशास्त्री समाजशास्त्र की एक शाखा के

रूप में देखते हैं तो वहीं लेखक व आलोचक इसे साहित्य की स्वतंत्र विधा के रूप में देखते हैं जिसका विकास हो रहा है। इस संदर्भ में डॉ. मैनेजर पाण्डेय का विचार है कि- "समाजशास्त्र भले ही साहित्य के समाजशास्त्र को समाजशास्त्र की एक शाखा समझे लेकिन वास्तविकता यह है कि अब यह समाजशास्त्र से स्वतंत्र एक साहित्यिक विधा के रूप में विकसित हो रहा है। पिछले सौ वर्षों में संस्कृति की भौतिक व्याख्या के आधार पर कलाओं का जो समाजशास्त्र विकसित हुआ है उसका एक रूप है साहित्य का समाजशास्त्र । उसे कोई साहित्य का समाजशास्त्र कहे ,साहित्यिक समाजशास्त्र कहे या साहित्यशस्त्रीय आलोचना कहे –कोई खास फर्क नहीं पड़ता। मुख्य बात यह है कि उसका लक्ष्य साहित्य की सामाजिकता की व्याख्या करना है।"[19] साहित्य के समाजशास्त्रीय चिन्तन की परम्परा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दौर में ही प्रारम्भ हो गई थी। इस चिन्तनधारा को व्यवस्थित रूप में आरंभ करने का श्रेय फ्रांस की मादाम स्तेल को है। 1800 ई. में प्रकाशित पुस्तक "सामाजिक संस्थाओं से साहित्य के संबंध पर विचार" से इस चिन्तन परम्परा की शुरुआत माना जाता है। उन्होंने अपनी पुस्तक में साहित्य तथा विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के सम्बन्धों पर बहुत ही गंभीर चर्चा की है। इनके बाद साहित्य के समाजशास्त्र के विकाश में मार्क्सवादी विचारकों लिओ लावेंथल, लूसिए गोल्डमान और रेमेंड विलियम्स, जार्ज लुकाच आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

बदलते समय के साथ ही साहित्य की भूमिका में भी परिवर्तन हुआ है। अब साहित्य केवल सौंदर्य बोधात्मक ही नहीं है वरन वह चेतनापरक भी है। समाजपरक और चेतानपरक साहित्य का अध्ययन एवं समीक्षा केवल भाषिक विश्लेषण के आधार पर ही नहीं हो सकती। जब भाषिक विश्लेषण की सीमाएं सामने आने लगी तो समीक्षक साहित्य की समाजशास्त्रीय पद्धति की और मुड़े। साहित्य की समाजशास्त्रीय पद्धति के साथ जुड़ने का एक और कारण यह कि आज के युग में प्राय: सभी रचनाएँ सामाजिक यथार्थ से जुड़ी होती हैं। उसमें किसी न किसी रूप में समाज का अक्स जरूर होता है भले ही उसका रचनाकार उसे सामाजिक न कहे, इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि साहित्यिक रचना के बाहर

[19]पाण्डेय, मैनेजर . (2012). *साहित्य की समाजशास्त्रीय भूमिका, पृ. 142*

मनुष्य के सामाजिक जीवन का भी विवेचन किया जाए। इसके विवेचन के लिए जो प्रणाली अपनाई जाती है वह समाजशास्त्रीय पद्धति के अंतर्गत आता है। रामविलस शर्मा, रांगेय राघव, मुक्तिबोध, नामवर सिंह, शिवकुमार मिश्र, डॉ. निर्मला जैन आदि के विचारों ने साहित्य के समाजशास्त्र को आगे बढ़ाया है।

प्रगतिशील चेतना से जुड़े साहित्यकार समाजवादी यथार्थवाद की अवधारणा को साहित्यिक आलोचना का प्रमुख आधार मानते हैं। डॉ. नामवर सिंह के शब्दों में कहें तो- "साहित्य में रूप विधान की अपेक्षा विषयवस्तु के महत्व को स्वीकार करते हैं। साहित्य और समाज के मध्य की कड़ी लेखक का व्यक्तित्व विशेष महत्वपूर्ण है। साहित्य रचना की प्रक्रिया में समाज, लेखक और साहित्य परस्पर एक-दूसरे को इस तरह प्रभावित करते हैं कि इनमें से प्रत्येक क्रमशः परिवर्तित और विकसित होता रहता है– समाज से लेखक, लेखक से साहित्य और साहित्य से पुनः समाज।"[20] आधुनिक युग में साहित्य पर सामाजिक संदर्भ और राजनीतिक परिस्थितियों का बहुत ही व्यापक प्रभाव पड़ा है। साहित्यकार भी समाज तथा वर्तमान सत्ता एवं व्यवस्था का अंग है। लेखक की सामाजिक स्थिति और उसकी विचारधारा तथा उसके लेखन को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों का अध्ययन साहित्य के समाजशास्त्र का विषय है।

साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन साहित्य की सही समझ, सामाजिक यथार्थ की वैज्ञानिक पड़ताल, उसके कलात्मक रूपांतर और अंत में मानवीयमूल्य चेतना से संबंध सिद्धांत है। साहित्य के समाजशास्त्र में साहित्य और समाजशास्त्र का निरूपण होता है। साहित्य में समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण वह दृष्टिकोण है जो किसी भी विषय के अध्ययन में सामाजिक प्रकृति, सामाजिक कारकों और सामाजिक प्रभावों पर बल देता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण की तीन मुख्य विशेषताएँ है। पहला- यह अध्ययन विषय के सामाजिक स्वरूप को प्रकाश में लाता है। दूसरा- यह संबन्धित विषय की सामाजिक उत्पत्ति

---

[20] सिंह, नामवर http://www.abmcollegejamshedpur.ac.in/pdfs/studymaterials

एवं सामाजिक घटकों की विवेचना करता है। तीसरा- यह इस विषय के सामाजिक प्रकार्यों, परिणामों एवं प्रभावों का विश्लेषण करता है।

आलोचक मैनेजर पाण्डेय समाज और साहित्य के संदर्भ में कहते हैं कि- "साहित्यिक समाजशास्त्र का लक्ष्य कृति की केवल व्याख्या नहीं है। उसका लक्ष्य साहित्यिक कृति की सामाजिक अस्मिता की व्याख्या है। साहित्यिक कृति की सामाजिक अस्मिता रचना के सामाजिक संदर्भ और सामाजिक अस्तित्व से निर्मित होती है। इसीलिए साहित्य के समाजशास्त्र में पूरी प्रक्रिया को समझने की कोशिश होती है जिसमें कोई रचना साहित्यिक कृति बनती है।"[21] एक आम धारणा है कि साहित्य समाज से प्रभावित ही नहीं होता, वह समाज को प्रभावित भी करता है। साहित्य और समाज दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। साहित्य संकट के समय समाज का मनोबल भी बढ़ता है, संस्कृति का संवर्धन करता है, वर्ग विशेष में नई चेतना का संचार करता है। विशेष प्रकार के सामाजिक परिवर्तनों को लाने में सहायक होता है। पाठकों के मन में साहित्य के प्रति रुचि पैदा करता है और साहित्य समाज को दिशा भी प्रदान करता है। यह सब ऐसे तत्व हैं जिसकी पड़ताल साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन से किया जाता है।

साहित्य के समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण की एक विशेषता और है उसकी वैज्ञानिक प्रकृति। यह दृष्टिकोण विषय के वैज्ञानिक अध्ययन पर विशेष बल देती है। यह अध्ययन क्रमबद्ध किया जाता है और इसमें वस्तुनिष्ठ भी होता है। इसकी पहली मान्यता यह कि यह साहित्य को सामाजिक तथ्य के रूप में देखना। मानव की रागात्मक अनुभूतियों की भावमयी अभिव्यक्ति होते हुए भी साहित्य समाज की उपज है। वह समाज और मानव चेतना को प्रभावित करती है। इसके माध्यम से सामाजिक यथार्थ की खोज साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन का मुख्य लक्ष्य है। साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन का अर्थ यह है कि जीवन सम्बन्धों के माध्यम से साहित्य का अध्ययन सुचारु रूप तथा सुव्यवस्थित ढंग से

[21]मैनेजर पाण्डेय (2012) *साहित्य की समाजशास्त्र की भूमिका. पृ. 28*

करना। यह सर्वविदित है कि साहित्यकार जिस वातावरण में साहित्य सृजन करता है, वही वातावरण उसकी रचना में पूर्णतः परिलक्षित होता है। इसलिए साहित्यकारों के सामाजिक वातावरण की विवेचना को साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन कहा जाता है।

व्यक्तिगत दृष्टिकोण से प्रभावित रचनाकार लेखकीय चेतना को गतिशील कर सृजन कार्य करता है जिसमें जीवन के यथार्थ की कटु पलों के ऊपर मानवीय दुर्बलता, और सौंदर्यशीलता के साथ-साथ आत्मबल के नयेपन को मूर्त रूप में साकार कर रहा होता है। इसलिए साहित्य में मनुष्य के सम्बन्धों की व्याख्या और जीवन की गतिशीलता में नवीन मूल्यों और मान्यताओं को स्थापित करता हुआ यथार्थ के समग्र रूप को देखा जा सकता है। मानवीय संवेदनाएँ स्थिर नहीं रहती बल्कि काल और परिवेश के अनुसार बदलती रहती हैं। साहित्यकार अपनी कृति के माध्यम से युगीन परिस्थितियों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है और पारंपरिक रूढ़ियों को तोड़ने का प्रयास करता है। बदलते समाज का स्पष्ट रूप साहित्य में देखा जा सकता है, क्योंकि साहित्य परंपराओं एवं मान्यताओं की तरह जड़ नहीं है बल्कि गतिशीलता इसकी पहली निशानी है। यही कारण है कि साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व का समर्थन सभी करते हैं।

साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के अंतर्गत सामाजिक संस्थाओं एवं सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक तरीके से किया जाता है। साहित्य और समाजशास्त्र का संबंध सामाजिक जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों अर्थव्यवस्था, राजनीति व्यवस्था, कला-वाणिज्य एवं विधि, शिक्षा आदि से जुड़ता है। साहित्यकार किसी भी कृति की पृष्ठभूमि में अपने सामाजिक वातावरण को रखता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह के सभी उपन्यासों में सामाजिक वातावरण को स्पष्टतया देखा जा सकता है। चाहे वह 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' हो या 'समर शेष है' हो या 'रावी लिखता है' सभी उपन्यासों का पृष्ठभूमि अलग-अलग है और सभी में देश काल और वातावरण को भी अलग ही रखा गया है।

साहित्य के समाजशास्त्र को इस रूप में भी समझा जा सकता है कि जहां बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में साहित्य के केंद्र में स्वतंत्रता आंदोलन जैसे महत्वपूर्ण विषय थे तो वहीं बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के साहित्य में स्वतंत्र भारत की विकृतियाँ, सामाजिक विसंगतियाँ, सत्ता की लिप्सा, सांप्रदायिकता, बेरोजगारी, आचारहीन नेतृत्व, भ्रष्टाचार, स्त्रियों के मुद्दे, अकेलापन, सामाजिक विघटन आदि समस्याओं को निर्भीक, निष्पक्ष एवं सशक्त रूप से चित्रित किया गया है। यह साहित्य समाज तथा मनुष्य के जीवन-यथार्थ को प्रस्तुत करता है। बदलते सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक परिवेश में साहित्य के कथ्य में भी बदलाव हुआ है। यह बदलाव सामाजिक बदलाव के अनुरूप ही दिखता है।

वर्तमान समय में साहित्य के केंद्र में समाज की रूढ़िगत मान्यताओं की जगह पर नई मान्यताओं को स्थापित कर बदलते हुए सामाजिक एवं परिवर्तन की अपेक्षा रखने वाले साहित्य संरचना को अधिक महत्व मिलता है। इसे ही साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जाता है। समकालीन समय में मनुष्य के जीवन में जो बदलाव हो रहे हैं वह बदलाव साहित्य में भी परलक्षित हो रहा है। वर्तमान साहित्य केवल साहित्यकार के खुद के अनुभवों तक सीमित नहीं हैं, अपितु इसमें सामाजिक दृष्टि अधिक देखने को मिलती है। साहित्य अपने आप सामाजिक जीवन के उत्थान में तथा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में योग देने का यत्न कर रहा है। समय के अनुकूल समाजशास्त्रीय अध्ययन को आज विशेष महत्व दिया जा रहा है। वर्तमान साहित्य समग्रता में सामाजिकता को समेट कर साहित्यिक को और भी समाज के करीब ला रहा है।

साहित्य-आलोचना की प्रमुख प्रणालियाँ भी समाज से इतर नहीं है, बल्कि सीधे समाज से इनका जुड़ाव बनाता है। व्यक्तिवादी, मनोविश्लेषणात्मक, मार्क्सवादी, रूपवादी, समाजशास्त्रीय। इन पद्धतियों के माध्यम से साहित्य को विश्लेषित किया जाता है और इन सभी के मूल में मानव जीवन ही है। वर्तमान समय में व्यक्तिवादी आलोचना दृष्टि का कोई महत्व नहीं है। मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि में

किसी भी साहित्यकार के अन्तर्मन की बातों को पात्रों के अन्तर्मन की कुंठाओं, ग्रंथियों, मानसिक प्रवृत्तियों प्रस्तुत किया जाता है। इस विचार प्रणाली में फ्रायड के सिद्धांतों को महत्व दिया जाता है।

रूपवादी समीक्षा का सबंध साहित्य से होता है। इसमें 'रूप' यानी शब्दों के प्रयोग को अधिक महत्व दिया जाता है। इसमें शब्दों के सौंदर्य, अलंकार, छंद ,रस, बिम्ब, प्रतीक एक कहने की शैली को विश्लेषण का आधार बनाया जाता है। इस समीक्षा पद्धति में तारतम्य बना रहता है।

मार्क्सवादी चिंतन परंपरा भौतिक द्वन्द्ववाद को साहित्य एवं कला रूपों के विश्लेषण में प्रयोग करते हैं। प्रगतिवादी समीक्षकों ने सौंदर्य की परिस्थिति एवं जीवन की सच्चाई को स्वीकार किया। यह परंपरा दुनिया में अधिक मान्य है। आम जनता की पीड़ा, शोषण को अभिव्यक्त करने और उसकी समीक्षा करने के लिए इस आलोचना पद्धति का प्रयोग किया जाता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने साहित्य में मार्क्सवादी चिंतन परंपरा के माध्यम से जीवन को व्याख्यायित करने का प्रयास किया है।

साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन के अंतर्गत साहित्य में अभिव्यक्त जीवन की परिभाषा जैसे सामाजिक जीवन की परत को खोलने में साहित्यकार की क्या महत्वपूर्ण भूमिका है? समाज में निहित सही-गलत के फैसले, उसका आकलन जिस रूप में साहित्यकार करता है वह साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन कहलाता है। इस पद्धति के अंतर्गत समाजशास्त्र में नवीन सौन्दर्य ज्ञान तथा सामाजिक संवेदना को अत्यधिक महत्व दिया गया है। साहित्य का समाजशास्त्र लोकमंगल की भावना रखता है। इस संबंध में शिवकुमार मिश्र का कथन द्रष्टव्य है- "कुल मिलाकर विकास के लंबे और कठिन दौर से गुजरते हुए साहित्य विश्लेषण की यह समाजशास्त्रीय दृष्टि आज एक भरे पूरे सौन्दर्यशास्त्र में रूपायित हो चुकी है, जो परंपरागत तथा समकालीन दूसरी सौंदर्यशास्त्रीय अवधारणा से इन मायने में विशिष्ट है कि उनमें इतिहास बोध तथा समाजबोध के साथ जिसे साहित्य की कलात्मक सत्ता कहते हैं उसकी भी सही पहचान है और इन दृष्टियों की संश्लिष्ट संस्थिति के बल पर ही जो रचना, अपनी आस्वाद और मूल्यांकन तीनों धरातलों पर साहित्य विश्लेषण के संदर्भ में अपनी अपरिहार्यता सिद्ध

करती है और जिसकी सबसे अहम उपलब्धि यह है कि उसमें जीवन मूल्यों के बीच की खाई को पाट दिया गया है ।"[22] उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट है कि साहित्य के माध्यम से सामाजिक जन-जीवन को प्रतिबम्बित करने का प्रयास किया जाता है।

साहित्य युगीन परिस्थितियों से कटकर नहीं रह सकता। युगीन परिस्थितियों को अपने अंदर समाहित करते हुए ही चलता है। लेखक सम-सामयिक वातावरण से प्रभावित तो होता है। मनुष्य का जीवन जहाँ कहीं भी किसी रूप में प्रभावित होगा साहित्यकार उसे नजरअंदाज नहीं कर सकता क्योंकि वह जनता का ही प्रतिनिधित्व अपने रचना में कलात्मक रूप में करता है। समाजशास्त्र के अंतर्गत अर्थव्यवस्था को समाज का मुख्य आधार माना गया है जो हर समाज को किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित करता है। वर्तमान समय में अर्थ ने सभी कारकों को पीछे छोड़ दिया है। वह चाहे सामाजिक कारक हो या सांस्कृतिक कारक। साहित्यकार को भौगोलिक कारक भी प्रभावित करता है। लेकिन वह उस रूप में नहीं है जिस रूप में अन्य कारक। भौगोलिक परिवेश को ठीक ढंग से जब तक विश्लेषित नहीं किया जाता, तब तक साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन पूर्ण नहीं होता।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के अंतर्गत साहित्य की पहचान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में किया जाता है, क्योंकि समाज का क्षेत्र जितना विस्तृत होगा, उतनी ही समाजशास्त्रीय आलोचना विस्तृत एवं व्यापक होगी। सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक पक्ष के आधार पर साहित्य के सामाजिक पक्ष का अध्ययन किया जाता है। वर्तमान समय के साहित्य का संबंध समाज से अधिक बन रहा है इसलिए जरूरी हो जाता है कि साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जाय।

[22]वी.टी. गुप्त-संपादित. *साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ. 123*

2.3- उपन्यास का समाजशास्त्र

आधुनिक काल का सबसे चर्चित विधा उपन्यास में जीवन के सभी पक्ष साकार होते हैं। साहित्य के अन्य विधाओं की अपेक्षा उपन्यास में विस्तार अधिक होता है। यही कारण है कि इसमें जीवन का विस्तार अधिक दिखता है और समाज से सीधे जुड़ाव बनता है। उपन्यास के समाजशास्त्र को समझने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि उपन्यास क्या है। अतीत से वर्तमान तक के सफर में इसमें कितना बदलाव हुआ और समाज से जुड़ाव किस रूप में है।

उपन्यास को अंग्रेजी में नॉवेल'(Novel) कहा जाता है। नॉवेल' आख्यान प्रधान रचना के संदर्भ में प्रयुक्त होता है। यानी अंग्रेजी में जिसे नॉवेल कहते हैं उसी तरह के रचना विधान को हिन्दी में उपन्यास के नाम से जाना जाता है। उपन्यास का शाब्दिक अर्थ समीप रखना है। उपन्यास शब्द की व्युत्पत्ति न्यास शब्द में उप उपसर्ग से हुई है। "उपन्यास शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है- उप+न्यास। 'उप' का अर्थ है- समीप और 'न्यास' का अर्थ है- रखना। इस तरह उपन्यास का शाब्दिक अर्थ है 'समीप रखना' या मनुष्य के निकट रखी हुई वस्तु अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर लगे कि वह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिंब है, इसमें हमारी ही कथा हमारी ही भाषा में कही गयी है।"[23]

'आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली' पुस्तक में अमरनाथ ने 'न्यू इंग्लिश डिक्शनरी' के हवाले से नॉवेल को कुछ इस रूप में परिभाषित किया गया है- "नॉवेल वह विस्तृत आख्यान प्रधान रचना है जिसमें वास्तविक जीवन का अनुकरण करने वाली घटनाओं और पात्रों का एक व्यवस्थित कथा वस्तु के रूप में वर्णन रहता है।"[24] 'आधुनिक युग की सबसे महत्वपूर्ण साहित्यिक विधा उपन्यास जीवन के सबसे अधिक करीब है। इसके माध्यम से कोई उपन्यासकार सामाजिक यथार्थ की अनुभूति

---

[23]अमरनाथ .(2012). *हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली*. पृष्ठ संख्या. 91

[24]अमरनाथ .(2012). *हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली*. पृष्ठ संख्या. 91

को अपने अतीत, भूगोल, राजनीति एवं आर्थिक मूल्यों को केंद्र में रखते हुए अपनी कल्पनात्मकता को एक आकार देता है। उपन्यास के माध्यम से समय, काल, वातावरण को आसानी से समझा जा सकता है।

उपन्यास के बारे में कथा सम्राट प्रेमचंद कहते हैं कि- "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[25] प्रेमचंद ने इसे मानव चरित्र से जोड़कर जीवन के सूक्ष्म अंकन के साथ-साथ सामाजिक समस्याओं, मानवीय संबन्धों तथा उसके रहस्यों को उद्घाटित करने पर बल दिया है। प्रेमचन्द सम्पूर्ण मानव जीवन के चित्रण की अपेक्षा मानव-चरित्र को विशेष महत्त्व देते हैं। वैसे भी समाज में मानव जीवन से अधिक उसके चरित्र पर बाल दिया जाता है बात की जाती है। भारतीय समाज में चरित्रवान और सत्य के मूल्य का महत्त्व अधिक है। इसी तरह हजारी प्रसाद द्विवेदी उपन्यास और उसके यथार्थ के संदर्भ में अपनी बात रखते हुए कहते हैं कि- "जन्म से ही उपन्यास यथार्थ की और उन्मुख रहा है। वे (यानि पुरानी कथा, आख्यायिकाएँ) जीवन के खटकने वाले यथार्थ के संघर्षों से बचकर स्वप्नलोक की मादक कल्पनाओं से मानव को उलझाने, बहकाने और फुसलाने का प्रयत्न करती थीं, जबकि उपन्यास जीवन की यथार्थताओं से रस खींचकर चित्त-विनोदन के साथ ही साथ मनुष्य की समस्याओं के सम्मुखहीन होने का आह्वान लेकर साहित्य क्षेत्र में आया था । उसके पैर ठोस धरती पर जमें हैं और यथार्थ जीवन की कठिनाइयों और संघर्षों से छनकर आनेवाला'अव्याज मनोहर' मानवीय रस ही उसका प्रधान आकर्षण है ।"[26] हजारी प्रसाद जी मानते हैं कि उपन्यास का जुड़ाव जीवन के यथार्थ से है। इसके अंतर्गत जीवन की समस्याओं, जटिलताओं, विसंगतियों आदि को उसके वास्तविक रूप में देखा जा सकता है। उपन्यास कल्पना लोक की यात्रा में कम ही निकलता है। और यदि कोई कल्पना है

[25]प्रेमचन्द . (2003). *प्रेमचन्द के श्रेष्ठ निबंध,* ज्योति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 80

[26]द्वेवेदी हजारी प्रसाद. (2013). *साहित्य सहचर.* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.80

भी तो उसके केंद्र में भी मानव जीवन ही है। इह लौकिता पर विश्वास करने वाला उपन्यास जीवन-यथार्थ से रस ग्रहण करता है और उसमें भाव और कथन की कला मिश्रण कर पुन: समाज को ही लौटा देता है।

'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आचार्या रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक विधाओं पर बात करते हुए उपन्यास के बारे अपनी राय देते हुए लिखते हैं कि- "वर्तमान जगत में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है उसे भिन्न-भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियों उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, अवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न कर सकते हैं।"[27] शुक्ल जी उपन्यास की शक्ति से वाकिफ थे। समाज का प्रत्यक्ष प्रतिफलन उपन्यासों में दृष्टिगत होता है। इसकी व्यापकता में समाज के हर पहलू सम्मिलित हो जाते हैं। शुक्ल जी साहित्य की व्यापकता पर प्रकाश डालते हुए उपन्यास के महत्व से अवगत कराते हैं। 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' पुस्तक में गोपाल राय ने उपन्यास और समाज के संदर्भ में विस्तृत रूप से विचार करते हैं। उपन्यास के संदर्भ में वे लिखते हैं- "उपन्यास पर्याप्त आकार की वह मौलिक गद्य कथा है जो पाठक को एक काल्पनिक, पर यथार्थ संसार में ले जाती है, जो लेखक द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभूत और सर्जित होने के कारण नवीन होता है।"[28] उपन्यास में भले ही लेखक का ही अनुभव जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करता है, लेकिन यह नितांत लेखक के जीवन की को ही प्रस्तुत नहीं करता है बल्कि वह इसके माध्यम से मनुष्य के सामाजिक जीवन को प्रस्तुत कर रहा होता है।

आलोचक नित्यानन्द तिवारी अपनी पुस्तक 'साहित्य का शास्त्र' में उपन्यास के बारे में विचार करते हैं। उनका मानना है कि उपन्यास – "उप (अर्थात् समीप) + न्यास (अर्थात् थाती) यानी वह चीज जो मनुष्य के बहुत समीप है। इन्ही परिस्थितियों से प्रभावित होते हुए, लड़ते-उलझते और उन्हें बदलते हुए आदमी अपने जीवन चरित्र और स्वभाव को संगठित करता है। यही मनुष्य का वास्तविक जीवन है। यह वास्तविक जीवन, भाव और आदर्श के मुक़ाबले परिस्थितियों को बदलने वाले संघर्ष पर निर्भर

---

[27]शुक्ल, रामचन्द्र, (2004). *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. पृ. 357
[28]राय, गोपाल, (2012). *हिन्दी उपन्यास का इतिहास*. पृ. 86

है।”[29] उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की अभिव्यक्ति है। उपन्यास केवल यथार्थ का चित्रण भर नहीं करता, बल्कि बदलाव की संकल्पना को भी साथ लेकर चलता है।

विद्वानों के इन परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उपन्यास मानव जीवन के विविध पहलुओं को यथार्थ रूप में चित्रित करता है। समाज में घटित घटनाओं का सूक्ष्मतम निरीक्षण करता है। यही कारण है कि यह आधुनिक युग का सबसे सशक्त विधा है। इसमें घर-परिवार, समाज, राजनीति, अर्थनीति, व्यक्ति की आकांक्षाएँ, अपेक्षाएँ एवं उसके मनोभावों को विशेष तरजीह दी जाती है। यही कारण है कि उपन्यास की प्रभाविता मानव समाज को समग्र रूप से चित्रित करने की अधिक है।

उपन्यास का दायरा इतना वृहद है कि निश्चित ही इसका संबंध समाज से जुड़ता है। चूंकि समाज के केन्द्र मनुष्य है, इसलिए उपन्यास का मानव समाज के अनुभूतियों को विश्लेषण करने के साथ-साथ समाज की विभिन्न पहलुओं को भी उद्घाटित करता है। उपन्यास का समाजशास्त्रीय विवेचन इसी रूप में किया जाता है। यूरोप में आधुनिक जीवन बोध के साथ ही उपन्यास और समाजशास्त्र का उपज लगभग एक साथ ही हुआ।। आधुनिक जीवन बोध के अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम उपन्यास बनाता है। उपन्यास के माध्यम से मनुष्य की सामाजिकता और उसकी ऐतिहासिकता को विशेष रूप से निरूपित किया जाता है। यही कारण ही कि इसकी लोकप्रियता पाठक और साहित्य के समाजशास्त्रियों के बीच बरकरार बनी हुई है। जिस तरस से समाजशास्त्र के केंद्र मानव जीवन की हारा घटना का व्यापक परीक्षण किया जाता है उसी तरह से उपन्यास में भी मानव का जीवन ही केंद्र में रहता है। उपन्यास जहाँ मानव जीवन की कलात्मक पुनर्रचना का माध्यम है तो वही समाजशास्त्र मनुष्य के बौद्धिक विश्लेषण का साधन। साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा उपन्यास समाजशास्त्रीय विश्लेषण के ज्यादा अनुकूल है, क्योंकि कविता की तरह इसमें बहुत अधिक प्रतीकात्मकता और

[29]तिवारी , नित्यानन्द .(2010). *साहित्य का शास्त्र: आरंभिक परिचय*. पृ.84

लक्षणा में बात नहीं की जाती। यही कारण है कि उपन्यास में मौजूद मानव जीवन का समाज से संबंद्धता और उसके अतीत को इतिहास के सापेक्ष रूप में आसानी से पहचाना जा सकता है।

समाजशास्त्र के जनक अगस्ट काम्टे के विचारों का उपन्यास के विकास पर गहरा प्रभाव पड़ा है। भारत में उपन्यासों के प्रारम्भिक दौर में विधेयवाद का गहरा प्रभाव दिखता है। बंगाल के साहित्यकार बंकिमचंद्र के उपन्यासों को इस आलोक में देखा जा सकता है। इनके प्रारम्भिक उपन्यासों में विधेयवादी दृष्टि है, लेकिन बाद के उपन्यासों में इसकी कमी दिखती है। यह कमी उनके वैचारिक परिवर्तन को उद्घाटित करता है। कुछ आलोचकों का मानना है कि बंकिमचंद्र बाद में हिन्दू चेतना से ओत-प्रोत उपन्यासों की रचना करने लगे थे जिसमें वैज्ञानिक तार्किकता का अभाव था। भारत में जो तिलस्मी और जासूसी उपन्यास लिखे गए उसमें मानव जीवन का समाजशास्त्रीय विश्लेषण नहीं किया जा सकता है।

उपन्यास में साहित्यिक कल्पना और समाजशास्त्रीय दोनों का समावेश होता है और उसी की खोज उपन्यास के समाजशास्त्र का मुख्य लक्ष्य होता है। समाजशास्त्र का जो लक्ष्य होता है वही साहित्य के केंद्र भी होता है। साहित्य का मुख्य सरोकार मनुष्य की सामाजिकता, अनुकूलता और बेहतर जीवन के लिए उसमें बदलाव की इच्छा निहित रहती है। इसलिए उसमें परिवार, राजनीति तथा सत्ता के साथ मनुष्य के सम्बन्धों के सामाजिक जगत के सृजन का सार्थक प्रयास दिखाई पड़ता है। व्यक्ति की परिवार एवं अन्य संस्थाओं के भीतर उसकी भूमिका के साथ ही सामाजिक जीवन के बीच संघर्ष और तनाव को भी लेखक उद्घाटित करता है। जिस तरह से पश्चिम में साहित्य के समाजशास्त्र के विश्लेषण का शुरुआत उपन्यास के प्रारम्भिक दौर से ही हो गया था लगभग उसी तरह का विश्लेषण पद्धति भारत में भी रहा है। उपन्यास का सामाजिक आधार, अर्थ और अभिप्राय की खोज इसके शुरुआती दौर से ही होती रही है। उपन्यास के जन्म से ही उसके रूप और अंतर्वस्तु का ऐतिहासिक, सामाजिक स्वरूप आलोचकों को आकर्षित करता रहा है।

पश्चिम में तेन और हेगेल के चिंतन से उपन्यास के सामाजिकता को लेकर विचार की जो परंपरा शुरू हुई, वह उपन्यास के विकास के साथ ही आगे बढ़ी चली गई है। इसी विश्लेषण के कारण के लिए पिछली सदी में उपन्यास की कलात्मकता में भी परिवर्तन हुआ है। अब यह समाज और मानव जीवन के अधिक करीब प्रतीत होता है। मानव जीवन के तरह ही उपन्यास की रचना दृष्टि में विविधता आयी है और कलात्मक प्रयोगों की अनेक परम्पराएँ भी विकसित हुई हैं। इस विविधिता के फलस्वरूप ही उपन्यास के समाजशास्त्रीय विश्लेषण की पद्धतियों ने भी नए रूप ग्रहण किए हैं।

उपन्यास की समाजशास्त्रीय व्याख्या का सबसे पुराना दृष्टिकोण विधेयवाद है। विधेयवाद का ही कुछ आंशिक रूप हमें अनुभववाद में दिखाई देता है। इस प्रणाली के माध्यम से उपन्यास के सामाजिक अस्तित्व को निर्धारित करने वाली भौतिक परिस्थितियों के विश्लेषण के साथ ही उपन्यास के पाठकीय ग्रहण का विवेचन किया जाता है। उपन्यास के समाजशास्त्रीय विश्लेषण का सबसे चर्चित पद्धति मार्क्सवादी विश्लेषण में मिलता है। इसके माध्यम से अंतर्वस्तु और रूप में निहित सामाजिक यथार्थ, चेतना, मनुष्य के शोषण की आर्थिक पहलुओं पर विशेष ज़ोर दिया जाता है। इसके अलावा कुछ समाजशास्त्रियों ने संरचनवाद के सहारे उपन्यास के समाजशास्त्र को विश्लेषित करने का प्रयास किया है। गोल्डमान ने मार्क्सवाद और संरचनावाद के बीच एकता स्थापित करते हुए 'उत्पतिमूलक संरचनावाद' की पद्धति से एक नये तरह का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। जिस तरह से उपन्यास का जन्म यूरोप में हुआ उसी तरह से इसके समाजशास्त्रीय विश्लेषण की प्रणालियों का जन्म भी अधिकांशत: पश्चिम में ही हुआ। स्थानीय एवं देशज पद्धति के माध्यम से उपन्यास और समाज को देखने एवं विश्लेषित करने का प्रयास उस रूप में नहीं हो पाया है जिस रूप में होना चाहिए। यूरोपीय ज्ञान मीमांसा एवं परंपरा में विकसित अवधारणाओं और पद्धतियों के सहारे ही उपन्यास के समाजशास्त्र की पड़ताल की जाती है। या कहें कि इस प्रणाली का प्रभाव साहित्य और समाज के अन्तर संबंधों को जानने-समझने के लिए सबसे अधिक प्रयुक्त होता है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

जर्मन दार्शनिक हेगेल उपन्यास को गद्य युग का महाकाव्य मानते हैं जिसका सीधा जुड़ाव मनुष्य के सामाजिक जीवन से बनाता है। इस संदर्भ में आलोचक मैनेजर पाण्डेय अपनी पुस्तक 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका' में लिखते हैं कि- "उपन्यास अस्तित्व के लिए अनिवार्य प्रेस, प्रकाशन और पत्र-पत्रिकाएँ आधुनिक युग के वैज्ञानिक विकास की दें हैं तो उसके लेखक और पाठक के रूप में क्रियाशील मध्यवर्ग पूंजीपति सामाजिक संरचना का परिणाम है। इन भौतिक आधारों के साथ-साथ विचारधारा के स्तर पर व्यक्तिवाद, धर्मनिरपेक्ष जीवनदृष्टि और यथार्थवादी विश्वदृष्टि की जरूरत थी, जो आधुनिक युग की विवेकवादी चेतना का उपज है।"[30] उपन्यास की रचना दृष्टि में मनुष्य की स्वतन्त्रता, व्यक्ति की महत्ता और मानवीय सम्बन्धों की गरिमा को भी केन्द्रीय महत्व मिला, जब आधुनिक मनुष्य अपने अनुभव और तर्क के अलावा किसी लौकिक शक्ति की सत्ता को स्वीकार करने के लिए तैयार न था। उपन्यास मध्ययुगीनता के विरुद्ध आधुनिकता के विद्रोह की अभिव्यक्ति करने वाला साहित्य है।

आधुनिक युग की सांस्कृतिक चेतना का प्रतिनिधि कला रूप में वर्तमान समय उपन्यास को जो महत्व मिला है वह उसके लंबे संघर्ष के बदौलत ही मिल पाया है। एक लम्बे दौर तक उपन्यास का विरोध होता रहा है। इस विरोध के कई कारणों में सबसे महत्वपूर्ण कारण था उपन्यास में निहित लोकतान्त्रिक चेतना। सामन्ती चेतना से परिपूर्ण लोग ही सके विरोध में सबसे अधिक थे। इस संदर्भ में डव्ल्यु. जे. हार्वी का विचार अधिक प्रासंगिक है। "उपन्यास की रचना में क्रियाशील मानसिकता समाज में लोगों की पूर्णता, विविधता और वैयक्तिकता को स्वीकार करती है। वह विश्वासों तथा मूल्यों की अनेकता में विश्वास करती है। सहिष्णुता, संशयवाद और दूसरों की स्वायत्तता के प्रति आदर भाव उसके आदर्श हैं, मतभेद और कट्टरता से उसे घृणा है।"[31] लोकतान्त्रिक मूल्य मनुष्य की गरिमा के पक्ष में

[30]पाण्डेय, डॉ. मैनेजर. (2012). *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका.* पृ- 229

[31]डव्ल्यु.जे. हार्वी . *केरेक्टर एंड थे नॉवेल.* पृ. 24

सबसे अधिक वकालत करती है जो सामन्ती मूल्य के व्यक्तियों को कभी पसंद नहीं आता। वे इसके खिलाफ कुतर्क करते हैं और भाव के कोरी कल्पना का सहारा लेते हैं।

साहित्य और समाजशास्त्र के विश्लेषण के संदर्भ में जॉन रक बैल अपनी पुस्तक 'फ़ैक्ट इन फिक्शन' में इस तथ्य को प्रतिपादित करती हुई कहती हैं कि- "अन्य संस्थाओं कि तरह साहित्य समाज का अभिन्न अंग है। कथा-साहित्य समाज की उपज है और यथार्थ से संबन्धित होता है। वह यथार्थ का प्रस्तुतीकरण ही नहीं करता, बल्कि वह सामाजिक नियंत्रण और सामाजिक परिवर्तन का भी अंग है।"[32] उपन्यास अपने पाठकों को विभिन्न जीवन मूल्यों के बीच चुनाव का संकेत देता है। साथ ही उसकी सहानुभूतियों का विस्तार भी करता है जो जीवन की कला सिखाता है। आधुनिक युग का यह नैतिक आयाम है कि मनुष्य के गरिमा को बरकर रह सके। हर किसी कि मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार है। इसीलिए रूढ़िवादी नैतिकता के समर्थक उसका विरोध करते हैं। ऐसे ही लोग यह हवाला देते हैं कि उपन्यास अनैतिकता का पक्षधर है। इस कारण उपन्यासों पर प्रतिबंध लगाएँ जाए।

भारत में रूढ़िवादी एवं परंपरवादियों को धर्म और नैतिकता का सवाल सबसे अधिक परेशान करता है। मनुष्य किस हालत में जीवन जी रहा है। जाति और धर्म उसके जीवन में किस तरह आड़े आता है। घर-परिवार में ही किस तरह से यौनिक शोषण होता है को यदि साहित्य में चित्रित कर दिया जाय तो समाज व्यवस्था की न जाने कौन सी चूले हिलने लगती हैं। यहाँ इस तरह के झूठे विरोध की परंपरा रही है। अज्ञेय का उपन्यास 'शेखर एक : एक जीवनी' का जब प्रकाशन हुआ तो इसके ऊपर अनैतिकता का आरोप लगा था। तथाकथित नैतिकतावादियों ने इस पर प्रतिबंध लगाने की माँग की, और खूब हंगामा भी किया। हिन्दी में उन्नीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों से लेकर बीसवीं सदी के दूसरे दशक तक प्रकाशित के कई उपन्यासों पर अनैतिक होने का आरोप लगा। इन आरोपों को श्री वेंकटेश्वर समाचार, प्रयाग समाचार, भारतमित्र, सुदर्शन आदि पत्रिकाओं ने हवा दी। जो यह नहीं समझ पाता कि

[32] राकबैल, जॉन. फेक्ट इन फिक्शन. पृ. 174

उपन्यास कैसे सामाजिक यथार्थ का संश्लिष्ट प्रतिरूप बनता है। वह समाज और संस्कृति पर उपन्यास के प्रभाव को भी नजरअंदाज करता है। साहित्यकार अपने कलात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से उपन्यास का सृजन करता है और उसमें जीवन यथार्थ के अनुभूति को निरूपित करता है। वह इसके रूप और अर्थ के बारे में पहले से परिचित होता है। वह अपने अनुभवों एवं कला के मानकों का ख्याल रखता है। उपन्यास सामाजिक यथार्थ की एक कला है। दूसरे शब्दों में कहें तो सामाजिक अभिव्यक्ति का एक रूप है जिसे साहित्यकार कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। रूपवादी आलोचक उपन्यास को लेखन की एक कला ही मानते हैं जबकि समाजशास्त्री उसे अभिव्यक्ति का एक रूप मानते हैं।

सामाजिक यथार्थ से हटकर उपन्यास का कोई अस्तित्व नहीं है। लेकिन यह भी सच की केवल सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति के कारण कोई रचना उपन्यास नहीं हो जाता। इसके लिए साहित्यिक कला एक आवश्यक तत्व है। इस संदर्भ में ग्राम्शी का कथन अधिक समीचीन लगता है। वे लिखते हैं कि- "दो लेखक एक ही सामाजिक ऐतिहासिक यथार्थ की अभिव्यक्ति का प्रयास करते हैं, लेकिन उनमें से एक कलाकार साबित होता है और दूसरा केवल कातिब (लिपिकार)।"[33] ग्राम्शी ने जो प्रश्न उठाया है वह बहुत ही वाजिब सवाल है। सामाजिक यथार्थ को लिपिबद्ध कर देना उपन्यास नहीं। इसमें कला का और कथन का विशेष महत्व है। इसके बिना उपन्यास का जो समाजशास्त्र बनेगा वह कला के रूप न होकर तथ्यों का वर्णन मात्र होगा।

उपन्यास के समाजशास्त्र के विश्लेषण में लेखक की विचारधारा एवं विश्व दृष्टि के सहारे उपन्यास का सामाजिक अभिप्राय जानने का प्रयास किया जाता है। इस संदर्भ में जार्ज लुकाच का मानते हैं कि रचनात्मक साहित्य और वर्ग संरचना में विशेष संबंध होता है। वे मानते हैं कि साहित्य वर्ग की विश्व दृष्टि के संदर्भ में लिखा जाता है। उसका कोई अभिप्राय होता है। उपन्यास का भी वर्ग से विशेष संबंध होता है। लेखक अपने वर्ग की गतिशीलता को कलात्मक रूप से बताने के लिए ही उपन्यास का

---

[33]ग्राम्शी, अन्तोनीय. *सेलेक्शन फॉर कल्चरल राइटिंग*. पृ .93

सृजन करता है। यानी उसका प्रमुख उद्देश्य इस बात की प्रस्तुतीकरण में है कि समाज किस प्रकार गतिशील रहता है। रेल्फ फॉक्स 'उपन्यास और लोक जीवन' पुस्तक में लुकाच को कुछ इस प्रकार उद्धृत करते हैं- "चूंकि यह समाज के विरुद्ध, प्रकृति के विरुद्ध,व्यक्ति के संघर्ष का महाकाव्य है। और यह केवल उसी समाज में विकसित हो सकता था जिसमें व्यक्ति और समाज के बीच संतुलन नष्ट हो चुका हो और जिसमें मानव को अपने सहजीवी साथियों और प्रकृति से युद्ध ठना हो। पूंजीवादी समाज ऐसा ही समाज है। उपन्यास का पलड़ा इस मामले में सदा भारी रहेगा कि- वह मानव का कहीं अधिक पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर सकता है तथा उस महत्वपूर्ण आंतरिक जीवन कि झांकी देख सकता है जो कि मानव के नाटकीय क्रियाशील से भिन्न होती है और जो सिनेमा कि दासता से बाहर की चीज़ है ।"[34] यहाँ यह स्पष्ट होता है कि विश्व दृष्टि के सहारे उपन्यास का सामाजिक अभिप्राय जानने की प्रक्रिया में समाजिक यथार्थ के का मूल्यांकन होता है। एक उपन्यासकार जीवन यथार्थ के एक रूप को महत्व देता है तो दूसरा, किसी और रूप का चित्रण करता है। रचनाकार की चेतना एवं विश्वदृष्टि का कला के रूप से सीधे जुड़ाव बनता है। उपन्यास के समाजशास्त्रीय विवेचन करते समय रचना की सामाजिकता और उसके कलात्मक रूप से लेखक की वैचारिकता और समाज के साथ उसके संबंध को परखा जा सकता है।

प्रेमचंद से पहले हिन्दी साहित्य में आदर्शवादी यथार्थ को अधिक महत्व दिया गया। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में समाज का यथार्थ रूप में चित्रण किया। कथा नायकों को समाज के खास वर्ग का प्रतिनिधित्व का अवसर दिया। इनके नायक आम जनता के प्रतिनिधि के रूप में सामने आते हैं। प्रेमचंद से इतर इलाचंद जोशी, अज्ञेय, मोहन राकेश एवं अन्य उपन्यासकारों की रचनाओं के केंद्र में व्यक्ति अहम है। व्यक्ति-चरित्र के व्यक्तिगत गुणों और जीवन के अनुभवों और मानवीय संबंधो के माध्यम से समाज को व्यक्त किया गया है। ऐसे में उपन्यासों के समाजशास्त्रीय विश्लेषण का कोई एक ही पद्धति से नहीं हो सकता। इसको इस तरह से समझा जा सकता है- एक ही समाजशास्त्रीय पद्धति से अगर अब्दुल

[34] फाक्स, रेल्फ. *उपन्यास और लोकजीवन, पृ. 9*

बिस्मिल्लाह और नरेश मेहता के उपन्यासों का विश्लेषण होगा तो दोनों के साथ ज्यादती होगी। अब्दुल बिस्मिल्लाह की नैतिक चेतना और नरेश मेहता की नैतिक चेतना में बहुत अंतर है। इससे मानवीय संबंधो और जीवन मूल्यों के बारे में उनकी दृष्टियों में अंतर आया है, चरित्र विधान की प्रक्रियाएँ भी अलग-अलग हैं। दोनों के पात्र अलग-अलग वर्गों के हैं। इन पात्रों की मनसिकताओं में भी फर्क है। बिस्मिल्लाह जहाँ निम्नमध्यवर्ग और मुस्लिम जीवन को कथा के केंद्र में रखते हैं वही नरेश मेहता मिथकीय पत्रों को अधिक महत्व देते हैं। इसी तरह हम प्रेमचंद के 'गोदान' और रेणु के 'मैला आंचल' को देख सकते हैं। दोनों में किसान जीवन है दोनों में समाज का यथार्थ उद्घाटित हुआ है, दोनों में निम्नमध्यवर्ग है, लेकिन दोनों के विश्वदृष्टि में अन्तर है। रेणु ने किसान जीवन के यथार्थ और कुछ दूसरे पक्षों को और रूपों को दिखाते हैं और प्रेमचंद से भिन्न पद्धति से चित्रित किया है। यहाँ किसान जीवन का नया रूप सामने आता है और उपन्यास का कलात्मक स्वरूप भी अलग रूप में उभरा है।

आम तौर पर यह माना जाता है कि भारत में और वैश्विक स्तर पर उपन्यास का विकास यात्रा औद्योगिक करण के साथ शुरू होता है। इसलिए इसके समाजशास्त्र का उद्योगीकरण से घनिष्ठता है। उपन्यास उन समाजों में प्रमुख साहित्यिक विधा के रूप में उभर कर सामने आया है। सामान्य अर्थ में उपन्यास औद्योगिक मध्यवर्ग की व्यापक दृष्टि को प्रतिबिम्बित करता है। उपन्यास में वर्गीय स्रोत, अपने समाज की वास्तविकता, अतीत की जीवन यात्रा और समय की सच्चाई की अभिव्यक्ति कई रूपों में होती रही है। अभिव्यक्ति का एक रूप प्रतिनिधित्व का है और दूसरा प्रतीकात्मक। उपन्यास में अभिव्यक्ति का प्रतिनिधित्व कौन कर रहा है और समाज में कौन रहा है के बीच साम्यता। यह साम्यता यथार्थवादी परंपरा में अधिक मिलता है। दूसरा रूप प्रतीकात्मकता का है जो साहित्य में थोड़ा पुराना है। प्रतीकात्मक पद्धति के अंतर्गत मिथक, फैंटेसी, और अद्भुत कथानकों का उपयोग होता है। बीसवीं सदी के उपन्यासों में प्रतीकात्मक पद्धति का प्रयोग पहले की अपेक्षा बढ़ा है। इस संदर्भ में मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं- "हिन्दी उपन्यास के शुरूआती दौर में प्रतीकात्मक पद्धति का कथा-विधान मिलता है। देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों में इसका एक रूप है तो अंबिकादत्त व्यास के 'आश्चर्य वृतांत' में इसका

दूसरा रूप। हिन्दी के महत्वपूर्ण उपन्यासों में प्रतिनिधि और प्रतीकात्मक पद्धतियों का मिलाजुला रूप दिखाई देता है ।"[35] उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में दोनों पद्धतियों का प्रयोग उपन्यासकारों ने किया है।

यूरोप में उपन्यास के समाजशास्त्रीय विश्लेषण में जार्जलुकाच का महत्वपूर्ण योगदान है। इन्होंने उपन्यासों के समाजशास्त्र के विकास की दो पद्धतियों को विशेष रूप से चिन्हित किया है। 1916 में आई पुस्तक 'उपन्यास का सिद्धान्त' में उपन्यास के आरंभिक अवस्था का उल्लेख है। इस पुस्तक में पहली बार उपन्यास के दार्शनिक, ऐतिहासिक और सामाजिक स्वरूप का गंभीर विश्लेषण हुआ है। लुकाच ने अपनी दूसरी पुस्तक 'यूरोपीय यथार्थवाद का अनुशीलन' और 'समकालीन यथार्थवाद का अर्थ' में उपन्यास का मार्क्सवादी समाजशास्त्र निर्मित किया। इन किताब में आलोचनात्मक यथार्थवाद को उपन्यास के समाजशास्त्रीय विश्लेषण का आधार बताया गया है। इस पद्धति के हतः ही लुकाच ने यूरोप के कई उपन्यासकारों की रचनाओं के विश्लेषण तथा मूल्यांकन में उसका सार्थक उपयोग किया है। यथार्थवाद के दो रूपों को साहित्यिक आलोचना में देखा जा सकता है। पहला है- आलोचनात्मक यथार्यवाद और दूसरा समाजवादी यथार्थवाद है। लुकाच समाजवादी यथार्थ की तुलना में आलोचनात्मक यथार्थवाद को अधिक व्यापक रचनात्मक प्रवृति मानते हैं। जार्ज लुकाच मार्क्सवादी विचारधारा के पोषक व यथार्थवाद की अवधारणा के व्याख्याता के रूप में अधिक जाने जाते हैं। इन्होंने मार्क्सवादी सिद्धांतों को साहित्य के परिपेक्ष्य में विश्लेषित किया है और इसके लिए कुछ आलोचनात्मक प्रणालियों की सैद्धांतिकी स्थापित की है। ये समस्त साहित्य को वर्ग-संघर्ष की दृष्टि से देखते हैं। इनका मानना है कि साहित्य में वर्ग-संघर्ष का प्रतिबिम्बन होना आवश्यक है। कला की वास्तविकता कसौटी समाजवाद के प्रति निष्ठा है। समाजवादी यथार्थवाद सत्यता तक पहुँचने का एक मार्ग है। हमारे समाज में सत्य का जो वैल्यू है उसका रूप साहित्य में भी दिखता है। सत्य के प्रति जिज्ञासा तथा यथार्थ के प्रति तीव्र आसक्ति के कारण ही लेखक यथार्थवादी बनाता है। यथार्थवाद ही

[35]पाण्डेय, डॉ. मैनेजर. (2012). *साहित्य के समाजशास्त्रीय की भूमिका*. पृ. 234

साहित्य में द्वंदात्मकता भौतिकवाद का प्रतिनिधि है साहित्य जीवन की वस्तुपरक व्याख्या प्रस्तुत करता है।

समाज-इतिहास के यथार्थ की विकास-प्रक्रिया की अनिवार्यताओं एवं संभावनाओं को, वर्तमान की अनिवार्यताओं और भविष्य की संभावनाओं को देखने-दिखाने की क्षमता विचारधारा कहलाती है। इस प्रक्रिया के तहत आने वाली रचनाएं यथार्थवादी होती हैं। यह बात जितना बाल्जाक के संदर्भ में सच है उतना ही प्रेमचंद के बारे में भी सच हैं। प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में सामंतवाद और साम्राज्यवाद के जकड़न से जूझती भारतीय जनता के सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन के यथार्थ को वर्तमान रूपों की अभिव्यक्ति है और संभावनाओं की ओर भी संकेत किया है। प्रेमचंद ने समाज के इतिहास की विकास प्रक्रिया को, व्यापक क्रियाशील शक्तियों की विकास प्रक्रिया में बदलते यथार्थ को एक जन पक्षधरता के साथ उद्घाटित किया है। यह दृष्टि प्रेमचंद के यथार्थवाद की मुख्य विशेषता है।

चूंकि लेखक समाज से अलग नहीं रहते हैं, बल्कि निश्चित समूहों के भीतर अपना जीवन जीते हैं। लेखक के साथ भी समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा- परिवार, समाज, राजनीति आदि में मूल्यों और यथार्थ के संबंध में एक दृष्टिकोण बन जाता है जिसे वे अपने साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। अपने उपन्यास में इस जटिल ताने-बाने की समझ को व्यक्त करना उपन्यास के सच्चे समाजशास्त्र का मुख्य लक्षण है। साहित्य (कथा-साहित्य) के समाजशास्त्रीय पद्धति को लूसिए गोल्डमान ने 'उत्पतिमूलक संरचनावाद' कहा है। लुकाच ने जो समग्रता की अवधारणा को साहित्य और क समाजशास्त्र रूप में व्याख्यायित की उसे गोल्डमान ने संरचना के रूप में ग्रहण किया। वे साहित्य को सर्जनात्मक प्रक्रिया मानने पर अधिक ज़ोर देते हैं। हर कोई साहित्यिक रचना अंतरंग और बहिरंग दोनों स्तरों पर लेखक की सामाजिक स्थिति एवं उसके समूह तथा वर्ग के मूल्यों के संगम से जन्म लेती है। लेखक साहित्यिक रचना के माध्यम से ही अपने समूह की महत्वपूर्ण संरचनाओं को प्रस्तुत करता है।

उत्पतिमूलक संरचनवाद प्रत्येक रचना के अंदर और उसके बाहर समूह में महत्वपूर्ण संरचनाओं की पहचान करता है।

गोल्डमान अपने निबंध 'द सोशियोंलॉजी ऑफ लिटरेचर स्टेट्स एंड प्रॉब्लेम्स ऑफ मेथड' में 'उत्पतिमूलक संरचनवाद' की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि "उत्पतिमूलक संरचनवाद चिन्तन इस अवधारणा पर आधारित है कि मानव विज्ञानों में होने वाला समस्त अनुचिंतन समाज के बाहर से नहीं, बल्कि अंदर से किया जाता है ।"[36] निष्कर्षत: हम देखें तो पाते हैं कि गोल्डमान की पद्धति यह है कि साहित्य के समाजशास्त्र का संबंध सांस्कृतिक सृजन से है, बाजार के लिए मात्र उत्पादन से नहीं। अपनी रचना में लेखक इतिहास के विशिष्ट युग में अपने समाज-समूह की चेतना को अभिव्यक्त करता है। गोल्डमान अपने इस लेख में एक ऐसे सिद्धान्त का सुझाब देते हैं जो उपन्यास के उद्भव और संरचना का संबंध निर्णायक रूप से बुर्जुआ वर्ग से जोड़ने वाले पूर्व के सिद्धान्त से भिन्न है। उपन्यास हमेशा से खंडित संसार में अखंडता का भाव लाने की प्रयास करता है। इस प्रकार हम देखें तो पाते हैं कि उपन्यास जीवन का महाकाव्य है जिसमें जीवन की व्यापक समग्रता रची बसी है।

साहित्य और समाजशास्त्र के विश्लेषण के लिए गोल्डमान पाँच सिद्धांत प्रतिपादित किया है जो निम्नवत हैं । 1 - समाज, जीवन और साहित्य सर्जन के मध्य आधारभूत संबंध उन मानसिक संरचनाओं से है, जो किसी सामाजिक समूह की अनुभवजनित चेतनाओं से है, जो किसी सामाजिक समूह की अनुभवजनित चेतना तथा लेखक द्वारा निर्मित काल्पनिक सृष्टि के परिणाम स्वरूप संगठित होती है।

2- इस प्रकार की मानसिक संरचनाएं किसी एक व्यक्ति के अनुभव का परिणाम नहीं होती, बल्कि समान परिस्थितियों में रहने वाले व्यक्तियों के संयुक्त कर्म का प्रतिफल होती है।

---

[36]गोल्डमान लूसिए. *द सोशियोंलॉजी ऑफ लिटरेचर- स्टेट्स एंड प्रॉब्लेम्स ऑफ मेथड* (लेख) संपादक- एम.सी.एलबर्ट, पृ. 582 (http://unesdoc.unesco.org/)

3- साहित्य सर्जन, सामाजिक तथा ऐतिहासिक यथार्थ तथा शक्तिशाली सर्जनात्मक कल्पना के मध्य विरोध का अभाव पाया जाता है, उसमें सरल एवं सार्थक संबंध वाले सादृश्य की प्राप्ति होती है।

4- इस दृष्टि से सादृश्य श्रेष्ठ कृतियाँ भी साधारण कृतियों जैसी ही ध्येय होती हैं तथा कृति में विद्यमान संरचनाओं के कारण उसकी अखंडता भी बनी रहती है।

5- कृति के अंदर विद्यमान संरचनाओं एवं उनमें निहित तथ्यों को प्रकाश में लाना इस पद्धति अर्थात संघटनात्मक और समाजशास्त्रीय आधार पर ही संभव है, न कि अंतमूर्त साहित्यिक अध्ययन या लेखक के सचेत उद्देश्य या अचेतन मनोविज्ञान के आधार पर।[37]

इस प्रकार 'उत्पति मूलक संरचनवाद' कृति में विद्यमान संरचनाओं के प्रकाशन और विश्लेषण तक ही सीमित न होकर उसकी ऐतिहासिक निर्मिति से भी संबन्धित है।

मार्क्सवादी चिंतक रेल्फ फाक्स उपन्यास के भौतिकवादी दृष्टिकोण के समर्थक हैं। ये मानते हैं कि-"लेखक की काल्पनिक सृष्टि उसी वस्तु जगत का प्रतिबिम्ब है जिसमें कि वह रहता है।"[38] आधुनिक पूंजीवादी समाज में उपन्यास महाकाव्य है। इसका उद्देश्य मनुष्य के आवश्यकताओं को पूरा करना, उसकी आकांक्षाओं को व्यक्त करना तथा उसके जीवन-संघर्ष चित्रित करना है। उपन्यास के केंद्र व्यक्ति का होना निश्चित है। "वह समाज के विरुद्ध, प्रकृति के विरुद्ध, व्यक्ति के संघर्ष का महाकाव्य है। उपन्यासकार का लक्ष्य इतिवृत्त लिखना नहीं, बल्कि इतिहास की रचना करना है। रेल्फ फाक्स 'लेखन को व्यवसाय या धन्दा' बनाने के पक्ष में नहीं थे। श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण की प्रवृति ने लेखक की वास्तविक जगत को समग्र रूप में देखने की प्रवृति को आघात पहुंचाया है।"[39] एलन स्विंग हुड ने गोल्डमान की विचारधारा का समर्थन करते हुए उपन्यास के समाजशास्त्र के विवेचन के क्रम में लिखते

---

[37] गोल्डमान, लूसिए. *द सोशियोंलॉजी ऑफ लिटरेचर.* पृ. 584

[38] फाक्स, रेल्फ. *उपन्यास और लोकजीवन.* पृ. 12

[39] फाक्स, रेल्फ. *उपन्यास और लोकजीवन,* पृ. 20

हैं- "उपन्यास भी समाजशास्त्र की भांति सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक संरचनाओं से संबंध रखता है। औद्योगिक समाज की प्रमुख साहित्यिक विधा के रूप में वह परिवार, राजनीति और राज्य के साथ मानव के संबंधो की दुनिया की पुनःसृष्टि करने का प्रयास करता है। वह समाज के अध्ययन में समाजशास्त्र के मात्र वस्तुनिष्ठ व वैज्ञानिक विश्लेषण व वर्णन से आगे बढ़ जाता है –स्त्री और पुरुष समाज को भावनात्मक रूप में किस प्रकार अनुभव करते है ।"[40]सामाजिक जीवन में घटित हुआ है या भविष्य में जिसकी संभावना है का चित्रण उपन्यास को समाजशास्त्र से जोड़ता है।

'उपन्यास और समाजशास्त्र ' के बारे सैद्धांतिक निरूपण करते हुए माइकल जेरफा अपने निबंध 'द नॉवेल एज़लिटेरारी फॉर्म एंड एज़ सोशल इंस्टीट्यूशन' में लिखते हैं – "उपन्यास एक संस्था है। संस्था के रूप में वह समग्र जीवन से संबंद्ध है। उपन्यास का स्वरूप और विषय-वस्तु अन्य कलाओं की अपेक्षा सामाजिक घटनाओं से विशेष संबंद्ध रखता है। वह अपने समाज के इतिहास के विशिष्ट युग से संबंद्ध होता है। अतः उपन्यास अपने युग एवं समाज की उपज है। उपन्यास पहली कला है जो मानव को ऐतिहासिक व सामाजिक रूप में परिभाषित करती है। उपन्यास के साथ समाज इतिहास में और इतिहास समाज में प्रवेश करता है।"[41] उपन्यास जितना कलात्मक अभिव्यक्ति है उतना ही समाज इतिहास भी है। इस मार्फत उपन्यास वर्तमान समाज का यथार्थ चित्रण भी करता है। यह जीवन का रचनात्मक सहभागी है। आधुनिक साहित्य मानव जीवन को केंद्र में रखकर अधिक लिखा गया। यही कारण है कि उपन्यासों में जीवन का हर अनुभव एवं मनोभाव का चित्रण हुआ है। उपन्यास के केंद्र में आधुनिक जीवन बोध एवं मानवीय मूल्य व गरिमा को जिस रूप में निरूपित किया गया है वह किसी दूसरी विधा में नहीं हुआ है। पश्चिम में जन्मा उपन्यास अपनी सीमा तक ही महदूद नहीं रहा। भारत में उपन्यास ने जो लोकप्रियता हासिल की वह फिल्मों को छोड़कर किसी अन्य विधा को नहीं मिल सका।

[40]एलन स्विंगवुड, द *सोशियोंलॉजी ऑफ लिटरेचर* पृ- 25-26

[41]माइकेल जेराफ़ : द *नावेल एज़ लिटेरेरी फॉर्म एंड सोशल इंस्टीट्ट पृ*. 43

भारतीय समाजशास्त्री डी. पी. मुखर्जी ने अपने एक लेख 'कथा-साहित्य में सामाजिक समस्याएँ' में उपन्यास के समाजशास्त्र पर विचार किया है। वे लिखते हैं- "आधुनिक उपन्यास आधुनिक जीवन-पद्धति का सहभागी है। 'गोरा' और 'घर बाहारे' की लोकप्रियता का एक कारण लेखक की कुशल संवाद कला है। चरित्रों में आत्म मंथन की प्रवृत्ति अधिक है जो आधुनिक युग की विशेषता है। आज के युग में केवल क्रिया व्यापार न जीवन में पर्याप्त है, न उपन्यास में। इसलिए उपन्यास का महत्व घट रहा है। कथानक के लिए कथानक पर ज़ोर देना जैसा है। उपन्यासकार समस्याओं का समाधान नहीं करता, क्योंकि सुलझाई गयी समस्या तथ्य बन जाती है और वह पाठकों को विचलित नहीं करती।"[42] यह सच है कि उपन्यासकार समस्याओं का समाधान नहीं करता है, लेकिन अपने पात्रों के माध्यम से समस्याओं से लड़ने के लिए प्रेरित करता है। ऐसे समय में जब विचारों के अंत की घोषणा की जा चुकी हो यह कहा जाने लगा हो कि उपन्यास बीते दौर की रचनात्मक विधा है। उत्तर आधुनिक समय में किसी के पास इतना समाय नहीं है कि वह उपन्यास पढ़ेगा। ऐसे समय ये सारी घोषणा निर्मूल साबित हुई हैं। चरित्र एवं घटना प्रधान उपन्यास एवं समस्यामूलक उपन्यास अपने स्वाभाविक गति से ही गतिमान है। इस संदर्भ में डी.पी. मुखर्जी का मानना है कि- "आज के युग में समस्यामूलक उपन्यास ही सार्थक है। ऐसे उपन्यासों की अंतर्वस्तु सामाजिक होती है। उपन्यास में रूप और अंतर्वस्तु के स्तर पर सामाजिक प्रक्रिया की अभिव्यक्त होती है, समाज की नहीं, और सामाजिक प्रक्रिया द्वन्द्वात्मक होती है।[43]

आलोचकों एवं समाजशास्त्रियों के विचारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास समाज की उपज है। इसके इतर नहीं है। इसमें जीवन की व्याख्या निहित है और इसका सीधा जुड़ाव समाज से है, जिसका विकास मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुआ है। सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना साहित्यिक परंपरा एवं जीवन मूल्यों के साथ-साथ रचना के निर्माण में लेखक का व्यक्तित्व एवं विचार, पाठक की अभिरुचि एवं आलोचकों के दृष्टिकोण का भी महत्वपूर्ण स्थान है जो औपन्यासिक

[42]मुखर्जी, डी. पी. *डाइवेर्सिटीज़* पृ. 285
[43] मुखर्जी, डी. पी. *डाइवेर्सिटीज़* पृ. 297

संरचनाओं को निर्मिति करते हैं और उसे क्रमबद्ध तरीके से प्रस्तुत कर रचना को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करते हैं। उपन्यास का कलात्मक पक्ष भी मानवीय अभिवृत्तियों एवं सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से संबंध रखता है। किसी भी रचना में कला के सामाजिक-सांस्कृतिक पहलू मौजूद रहते हैं। ऐसा नहीं कि कथ्य में आंचलिकता का बोध हो और कलात्मकता विदेश का। दोनों में सामंजस्य का होना आवश्यक है। इससे स्पष्ट होता है कि उपन्यास एक सामाजिक संस्था के रूप में सामाजिक संरचना एवं समूहों, प्रकार्यात्मक भूमिका, सामाजिक सम्बन्धों एवं विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के सम्बन्धों तथा सामाजिक-सांस्कृतिक अंत:क्रियाओं से संबंद्ध है। आलोचकों एवं समाजशास्त्रियों ने उपन्यास को समाज से संबद्ध ऐसी साहित्यिक कृति माना है जिसमें मानव जीवन उद्घाटित हुआ है।

तृतीय अध्याय

अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में सामाजिक समस्या का चित्रण

अब्दुल बिस्मिलाह ने सामाजिक समस्याओं के चित्रण को बहुत गहराई से उठाया है। दूसरे शब्दों में कहें तो बिस्मिल्लाह सामाजिक यथार्थ के ऐसे चितेरे साहित्यकार हैं जिनकी कलम ग्रामीण एवं शहरी समाज के शोषित पीड़ित जनता की भावनाओं का ऐसा शब्दांकन करती है जो जीवन के यथार्थ को वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ अंकित करती है। भारत में अलगाववाद एवं साम्प्रदायिक ताकतों को उन्होंने प्रमाणिकता के साथ उठाया है जो भारतीय जन समुदाय को लंबे समय से पीछे की ओर धकेल रही हैं। धार्मिकता की आड़ में साम्प्रदायिक ताकतों को हमेशा से बढ़ावा मिलता रहा है। सत्ता लोलुप, राजनैतिक महत्वाकांक्षा रखने वाला व्यक्ति समाज को टुकड़ों में बांटकर राजनीति करता है और उसे जातिगत सपोर्ट भी खूब मिलता है। ऐसे तत्वों को चिह्नित कर उससे सावाधान रहने और अपने अधिकारों के लिए अंतिम दम तक लड़ने की प्रेरणा इनके पात्रों में निहित है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में स्त्री की दयनीय स्थिति एकदम स्पष्टता के साथ सामने आती है जो लोकतंत्र के कायम हो जाने और संविधान का राज स्थापित हो जाने के बाद भी बुरी तरह से दुर्दशा का झंझावत झेल रही है। कहीं वह संयुक्त परिवार में शोषण को सह रही है तो कहीं व्यक्तिगत रूप से उसकी आजादी को छीना जा रहा है। भारतीय जीवन मूल्य स्त्री को आजाद देखना पसंद नहीं करता। भारतीय समाज व्यवस्था भले ही मनु द्वारा निर्धारित आचार-संहिता से न चलती हो, लेकिन अंत:चेतना में इसके तत्व बहुत गहरे धसे हैं। आज के आधुनिकीकरण एवं उत्तर-आधुनिक युग में समाज का क्षरण बहुत व्यापक तरीके से हो रहा है, जिसे रोकना समय की मांग है। इस अध्याय के माध्यम से ग्रामीण जीवन परिवेश में बदलते जीवन मूल्य को व्यापक तरीके से दिखाया गया है।

मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने कथा साहित्य के माध्यम से प्रगतिशील दृष्टिकोण को अपनाते हैं। यही कारण है कि इनकी लेखनी में समकालीन समय के राष्ट्रीय एवं अन्तरर्राष्ट्रीय परिदृश्य यथार्थ रूप में प्रस्तुत हुए हैं। मोहभंग, भाई-भतीजवाद, परिवारवाद, साम्प्रदायिकता, धार्मिक आडंबर, गरीबी, बेकारी, भूख, शोषण, सामन्ती ठसक, पूँजीवादी लूट, भ्रष्टाचार

और श्रेष्ठताबोध आदि विषयों पर बिस्मिल्लाह ने व्यापक व गहरी दृष्टि डाली है। इनके सभी उपन्यासों में मानवीय गरिमा को स्थापित करने का पूरा प्रयास दिखता है। इसके साथ ही भारतीय लोकतंत्र में जो भयंकर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक असमानता है उसे भी उनके साहित्य का वर्ण्य विषय है।

'झीनी झीनी बीनी चदरिया' के माध्यम से इस असमानता को दिखाने में सफल रहे हैं। कथाकार ने इस उपन्यास में मुस्लिम समाज की तह तक पहुंचकर उनकी जाति व्यवस्था का यथार्थ प्रस्तुत किया है जहाँ विषमता और शोषण से भरा हुआ एक ऐसा समाज है जो धर्म के नाम बराबरी का समाज तो दिखता है, लेकिन वास्तव में ऐसा है नहीं। मुस्लिम धर्म के ही हाजी साहब बुनकरों का शोषण धर्म की आँड़ में करते हैं। कथाकार ने इस यथार्थ को बहुत गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है जो इस उदाहरण में द्रष्टव्य है- ''एक समाज दुनिया का है। एक समाज भारत का है। एक समाज हिन्दुओं का है। एक समाज मुसलमानों का है और एक समाज बनारस के जुलाहों का है। यह समाज कई अर्थो में दुनिया के हर समाज से अलग है। इस समाज के कई खण्ड हैं। पांचो हैं, बाइसी और बावनो है। अब एक नयीबाइसी भी बन गयी है। हर खण्ड का अपना सरदार है अपना महतो है।''[1] वर्णनात्मक शैली के साथ कथाकार ने पूरे बनारस के उन स्थानों को चुनकर उकेरा है जहाँ ये आज निवासरत हैं। यह कथाकार की शोध परक दृष्टि के कारण ही संभव हो पाया है। उपन्यास इसका यथार्थ रूप इस तरह प्रस्तुत करता है। आर्थिक तंगी और गरीबी इन बुनकर परिवारों पर हावी रहती है, इस कारण परिवार में कलह का माहौल निर्मित रहता है। वैसे इसे आर्थिक तंगी कहना बेमानी लगता है। जहाँ अर्थ हो ही नहीं वहाँ तंगी कैसी। तंगी का तो सवाल ही नहीं है। इस कारण से परिवार में परस्पर विरोधी भावनाएं घर कर जाती हैं। एक साधारण मुस्लिम परिवार में 'माँ' के जीवन संघर्ष को कथाकार ने रेखांकित किया है जो एक साधारण परिवार से संबंधित है। यहाँ की आर्थिक स्थिति अत्यन्त सोचनीय है वह जीविकोपार्जन के लिए दिन-रात संघर्ष करती है।

---

[1] बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2008). *झीनी-झीनी बीनी चदरिया*. पृ. 10

यहाँ माँ के चरित्र के प्रति कथाकार ने गहरी संवेदना व्यक्त की है, जिसके कारण पाठकों में भी उसके प्रति सहानुभूति और लगाव की भावनाएं आ जाती है।

कथाकार ने मुस्लिम स्त्री के जीवन संघर्ष को व्यापक आयाम में प्रस्तुत किया है। कई अर्थों में यह एक ऐसी स्त्री की छवि प्रस्तुत करता है जैसे संजीव के धार उपन्यास में कथा नायिका मैना संघर्ष करती दिखाई देती है। कई अर्थों में इसका संघर्ष सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की कविता 'वह तोड़ती पत्थर' के स्त्री पात्र जैसा संघर्षमयी व्यक्तित्व-सा लगता है। इसी तरह यह माँ भी पूरे समय घरेलू कार्यों को पूर्ण करके घर, परिवार को चलाती है। कथानायक 'मैं' के पिता चमड़े के व्यापारी हैं। छोटे मोटे अन्य कार्यों को भी देखते है। कभी-कभी बीड़ी का भी व्यापार कर लेते हैं। परन्तु व्यापार में हमेशा लाभ ही हो यह आवश्यक नहीं है, इसीलिए वे ज्यादा कमा नहीं पाते हैं। वे इतना भी आमदनी एकत्रित नहीं कर पाते कि अपने परिवार का भरण-पोषण कर सकें। यही कारण है कि भारतीय परिवारों में अर्थ को लेकर ज्यादातर कलह घर के अन्दर होती है।

यह उपन्यास अंसारी मुसलमानों के संघर्ष को बयाँ करता है। आज भी लाखों की संख्या में लोग इस व्यवसाय से जुड़े हैं और तमाम यातनाओं के बावजूद जीवन-यापन के लिए संघर्ष कर रहै हैं। बनारस की प्रसिद्ध रेशमी साड़ियों की खूबी से पूरी दुनिया वाकिफ है, लेकिन इस प्रसिद्धि के पीछे किनका हाथ है यह समाज नहीं देख पाता है। उपन्यासकार ने एक तरह से बनारस ही नहीं, बल्कि बनारस के बुनकरों के बहाने अन्य भारतीय बुनकरों के जीवन-संघर्ष को भी निरूपित किया है। समाज का एक बड़ा वर्ग आज भी है जो इस व्यवसाय से जुड़ा हुआ है। एक प्रकार से यह उपन्यास एक वर्ग की सच्चाई को यथार्थ में अंकित करता है। उपन्यास की प्रारम्भिक पंक्तियों में ही जीवन-संघर्ष कुछ इस रूप में दिखाया गया है- ''जाड़े की धूप इस छत से उस छत तक एक पीले कतान की तरह फैली हुई है। इस छत पर अलिमुन एक ओर बने हुए बावर्चीखाने में आग सुलगाने जा रही है और उस छत पर कमकनक तान फेरने की तैयारी

में व्यस्त है।''[2] उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट है कि बुनकरों की रोजमर्रा की जिन्दगी किस तरह प्रारम्भ होती है और वे किस तरह के यातनाओं के शिकार होते हैं। इसका पूरा संवेदनात्मक ब्यौरा यह उपन्यास प्रस्तुत करता है।

पूंजीवाद की गिरफ्त में आज पूरी दुनिया है जो अधिकाधिक श्रम कराकर अधिकांश लाभ कमा लेते हैं। श्रम की लूट पर टिकी है पूँजीवादी दुनिया। जिस दिन श्रमिक अपने श्रम की कीमत वसूल करने लगे उस दिन यह पूँजीवादी दुनिया भरभरा कर गिर जाएगी। एक तरफ जीवन जीने का संघर्ष चल रहा है तो दूसरी तरफ सामाजिक प्रतिष्ठानों पर भी ऐसे ही लोगों का कब्जा है। बस कुछ पैसे किसी तरह से प्राप्त हो जाएँ इसी खातिर बुनकर दर-ब-दर भटकते रहते हैं। उपन्यास से एक उदाहरण द्रष्टव्य है- ''जिसे बिनने में ग्यारह, बारह, पंद्रह दिन लग जाते है। मजुरी जरूर कुछ ज्यादा मिलती है पर ज्यादा ही क्या वहीं पंद्रह -बीस रूपये का फर्क रहता है।[3] इन पंक्तियों स्पष्ट होता है कि कथाकार ने श्रमिक मुस्लिम वर्ग के आर्थिक क्रिया-कलापों व आय-व्यय का पूरा लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है।

उपन्यास का नायक व उसका पूरा समाज जिससे लाखों बुनकर सम्मिलित है के शोषण को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करते है। एक तरफ परम्परावादी पेशा है जिससे आमदनी लगभग शून्य है, इससे पेट पालना भी मुश्किल से हो पाता है। वहीं दूसरी तरफ बेरोजगारी का भयावह आलम है जहाँ संघर्ष ही संघर्ष है। इस तरह लाखों साड़ी बुनकरों की समस्या को यह उपन्यास प्रमुखता के साथ उठाता है। डॉ. रोस सरूफ़्फुद्दीन फकरुद्दीन ने अपनी पुस्तक 'अब्दुल बिस्लिल्लाह के साहित्य में संघर्षरत आम आदमी' में संघर्ष की इस दास्तान को यथार्थ के धरातल पर मूल्यांकित करते हुए लिखा है कि- ''इस उपन्यास में बुनकरों के परिवादीबद्ध शोषण और दोहन से उपजी अमानवीय जीवन की परिस्थितियों का सजीव चित्रण करने वाला एक प्रामाणिक दस्तावेज माना जाता है।''[4] बिस्मिल्लाह ने 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' के

---

[2]बिस्मिल्लाह, अब्दुल. (2008). *झीनी-झीनी बीनी चदरिया.* पृ. 9

[3]बिस्मिल्लाह, अब्दुल. (2008). *झीनी-झीनी बीनी चदरिया*.पृ. 25

[4]फक्रोद्दीन, डॉ. शेख शरफोद्दीन, *अब्दुल बिस्मिल्लाह के साहित्य में संधर्षरत आम आदमी*, पृ. 100

माध्यम से बुनकरों के शोषण को जिस रूप में प्रस्तुत किया है अद्भुत है। यहाँ केवल बुनकरों की समस्याओं को ही नहीं दिखाया गया है बल्कि इस शोषण के पीछे कौन-कौन से कारण हैं उसका भी पड़ताल किया है। आर्थिक शोषण के लिए पूँजीपतियों ने किस तरह से धर्म का सहारा लिया है और इसके लिए वे सांप्रदायिक दंगे करवाने से भी पीछे नहीं हटते को भी विश्लेषित किया अगया है।

3.1 उपन्यास का अन्तर्वस्तु

'झीनी झीनी बीनी चदरिया' की अन्तर्वस्तु–

यह अब्दुल बिस्मिल्लाह का बहुचर्चित उपन्यास है। सन् 1986 में प्रकाशित यह उपन्यास बिस्मिल्लाह को प्रथम पंक्ति के रचनाकारों में लाकर खड़ा कर दिया। यह उपन्यास बनारस के साड़ी बुनकरों पर केन्द्रित है जो जिन्दगी भर जी तोड़ मेहनत करते हैं, लेकिन उन्हें न तो कोई सम्मान मिलता है और न ही सरकार की तरफ से कोई अनुदान ही। इस उपन्यास की सम्पूर्ण घटनाएं और उसके चरित्र, उनका जीवन-संघर्ष सभी कुछ आपस में जुड़ा हुआ दिखाई देता है। बनारसी लोक के केन्द्र में रखकर वहाँ की भाषा (खासकर बजरडीहा के बुनकरों की भाषा) एवं व्यापक परिवेश को कथाकार ने उपन्यास में तरजीह दी है। भाषा के उनके सूक्ष्म हाव-भाव तथा भंगिमाओं को यथार्थ रूप में उकेरा है। बनारस के इन मुहल्लों से जो वाकिफ होगा उसे लगता है कि उसके सामने कथा लिखित रूप में नहीं बल्कि वह सारी घटनाएँ व पात्रों को लाइव देख रहा है।

'झीनी झीनी बीनी चदरिया' के माध्यम से यह दिखाया गया है कि बुनकरों के श्रम से जो पैसा पूंजीपति वर्ग ने कमायी है उससे ये बड़ी-बड़ी हवेलियों का निर्माण कर लिया है। उनके पास वे सभी सुविधाएं है जो वैभव विलासिता पूर्ण जीवन जीने में सहायक होती है। हाजियों के घर स्टील और चीनी मिट्टी से भरे पड़े हैं, जबकि वहीं दूसरी तरफ बुनकरों के यहाँ खाली पतीली और गरबीली गरीबी छायी हुई है। प्रस्तुत उपन्यास तीन खण्डों में लिखा गया है, जिसे बिस्मिल्लाह जी ने ताना, बाना और छोतक

इन भागों में विभाजित करके मुस्लिम समुदाय व उनके आन्तरिक संघर्ष तथा श्रमिक जीवन के शोषण की भारत में एक लम्बी परम्परा को दिखाया है।

वास्तव में यह उपन्यास बनारस के अंसारी मुसलमान बुनकरों को केन्द्र में रखकर समूचे बनारस व अवध की लोक संस्कृति और शोषण को प्रस्तुत करता है। उपन्यास बुनकरों समाज के तौर तरीकों , पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य में लिखा गया है जहाँ आम आदमी, बुनकरों, स्त्रियों, गरीबों का शोषण ही शोषण है। पूँजीवादी वर्ग अधिकाधिक श्रम का दोहन कर सर्वहारा वर्ग का शोषण करता आया है। अधिक श्रम लेना और उसका कम मूल्य देना यही पूँजीवादी समाज या वर्ग का प्रधान चरित्र है। उपन्यास की पूरी कथा शोषकों और शोषितों के बीच एक खेल की तरह चलता है। एक तरफ बुनकरों का अभावग्रस्त जीवन है। जर्जर होती दुनिया में प्रतिनिधि पात्रों में मतीन, अलीमुन तथा इकबाल के सहारे कथावस्तु को कसावट के साथ बुना गया है। उपन्यास में जीवन संघर्ष को दिखाया गया हैं जहाँ जहालत की दुनिया में जर्जर जीवन जीते हुए भी गरीब बुनकर विषम परिस्थितियों में संघर्ष करते हैं। इस उपन्यास के माध्यम से कथाकार ने 'मैं' की दृढ़ निश्चय प्रतिज्ञा, अदम्य उत्साह व जिजीविषा को दिखाया है। 'मैं' का जीवन चरित बहुआयामी है जिसमें पाठक का खुद का चरित्र भी दिखाई देने लगता है। वास्तव में बिस्मिल्लाह जी ने मानव चरित्र के जीवन के सूक्ष्म क्षणों को पिरोकर रख दिया है। इस तरह यह उपन्यास एक आम आदमी के जीवन संघर्ष व दर्द के दास्तान को प्रस्तुत करता है। बनारस जो सदियों से सभ्यता-संस्कृति के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए है, वहाँ मानवीयता का ऐसा वीभत्स रूप कथाकार ने दिखाया है, जहाँ भूखमरी, गरीबी, जहालत, बेबसी, बीमारी एवं जीवन-संघर्ष ही जैसे नियति बन गयी हो। एक तरफ बुनकरों जीवन -संघर्ष तो वहीं दूसरी तरफ हिंदू - मुस्लिम का संघर्ष भी उपन्यास के केंद्र में है।

यह उपन्यास एक ऐसे परिवेश को हमारे सामने लाता है जिसके तरफ हमारा ध्यान कभी जाता ही नहीं? क्योंकि समाज का ढाँचा ही वैसा है जहाँ स्त्रियों को डाटना या उनसे लड़ाई करना आम बात

है। भारत में स्त्रियों को पुरूषों ने सदैव अपने अधीन रखने की चाहत रहती है। इस मानसिकता को भी उपन्यास में दिखाया गया है। उपन्यास में व्यक्तिगत संघर्ष के साथ ही वर्ग संघर्ष को दिखाया गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कई दशक बीत जाने के बाद भी जो बुनियादी बदलाव होना चाहिए था वह नहीं अभी तक नहीं हो पाया है। कथानायक 'मैं' उसी असुविधा से पीड़ित है। बचपन से लेकर युवावस्था तक वह विषम परिस्थितियों में ही जीवन जीने को अभिशप्त है। एक तरह से देखा जाए तो यह उपन्यास अब्दुल बिस्मिल्लाह के जीवन के कुछ अंशों में गहरी साम्यता रखता है। कथाकार का बचपन अत्यन्त कलह पूर्ण माहौल में बीता है, जहाँ छोटी से छोटी वस्तुओं के लिए मन को मारकर जीना पड़ता है। यह यथार्थ इस उपन्यास में बार-बार दिखाई देता है। उपन्यास का मुख्य पात्र पठान जिसका पिता निकम्मा है वह किसी भी तरह की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम नहीं है। अत: वह परिवार की सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा नहीं कर पाता है। उसका पिता हर वस्तु के लिए हमेशा लालयित रहता है पर उसकी इच्छाएं पूरी नहीं होती है। अब्दुल बिस्मिल्लाह के सभी उपन्यासों में आर्थिक क्रिया-कलाप का पूरा चित्रण मिलता है। अर्थव्यवस्था, समाज व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है। दोनों एक दूसरे के पूरक होते हैं। प्राय: उनके वे पात्र जो मध्यवर्गीय या निम्नमध्यवर्गीय समाज से हैं आर्थिक रूप से भी कमजोर हैं। इस तरह का उत्कृष्ट उदाहरण 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' में भी दिखाई देता है। जिन्हें विरासत के रूप में एक ऐसा रोजगार मिला है जहाँ आमदनी कम और आर्थिक शोषण ज्यादा है।

उपन्यास रजवाड़ों के समय से लेकर पूँजीवादी दुनिया तक के सच को दिखाता है। जहाँ शोषक और शोषित दो ही वर्ग दिखाई देते हैं। पूँजीपतियों के पास रहने के लिए उच्च कोटि के समस्त संसाधन उपलब्ध हैं, समस्त विज्ञान और तकनीकों पर उनका कब्जा है वहीं दूसरी तरफ शोषित वर्ग के पास रहने के लिए आवास तक उपलब्ध नहीं है और दो जून के लिए भोजन भी नसीब नहीं है। उपन्यास ऐसी शोषणकारी समाज का यथार्थ इस रूप में प्रस्तुत करता है- ''हाजी अमीरूल्ला साहब अलईपुर के अनेक बड़े गिरस्तों मे से एक हैं। कच्ची बाग में उनकी भव्य कोठी है। तिमंजली नीचे वाली मंजिल में पचीस करबे गड़े हैं। इमारत से घुसते ही एक पक्का आंगन है जिसके तीन ओर बड़े-बड़े कमरे हैं। सामने की ओर

सिर्फ गलियरा है प्रवेश के लिए और एक ओर फ्लश सिस्टम पाखाना, जिसमें वहीं पुराने जमाने का अलमुनियम वाला एक बंधना नल के नीचे रखा है और दूसरी ओर ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ हैं।''[5] इस तरह इनके घरों में रोशनी अपना प्रकाश चारो तरफ फैलाए हुए है। वहीं समाज का दूसरा वर्ग जिनमें बनारस के बुनकर शामिल हैं , निम्नस्तरीय जीवन प्रत्याशा और बदबूदार सड़ाँधयुक्त माहौल में जीने के लिए विवश हैं। उनके कमरे ऐसे हैं जहाँ न प्रकाश आने की कोई व्यवस्था है, न ही सड़कें अच्छी हैं। एकदम दुर्गन्ध युक्त वातावरण में जानवरों सा जीवन व्यतीत करने के लिए एक बहुत बड़ी आबादी विवश है। उसके पास रहने के लिए एक झोपड़ी भी नसीब में नहीं है।

दिन भर बर्तनों की आवाज, खटपिट अनायास ही शोर व घरों में कोलाहल की आवाज सुनाई देती है, जहाँ अंधविश्वास, रूढियां, कर्मकांड और सामाजिक कुप्रथाएँ हावी हैं। बिस्लिल्लाह जी ने इतनी बड़ी आबादी को अपने उपन्यास के केन्द्र में लाकर आलोचकों, पाठकों व बुद्धिजीवियों का ध्यान आकृष्ट किया है। यह हकीकत है कि बिस्मिल्लाह जी के पूर्व के साहित्यकार ने इन बुनकरों की दयनीय स्थितियों पर ध्यान नहीं दिया। हाँ, यह बात जरूर है कि मध्यकाल में कबीर जैसे क्रांतिकारी कवियों के यहाँ बुनकर समाज का जिक्र जरूर आता है। बनारस ही नहीं, बल्कि पूरे भारत के साहित्यकारों को इस बात पर नाज होना चाहिए कि बिस्मिल्लाह जी ने अपने परिश्रम, लगन व आत्मविश्वास से इस उपन्यास में एक नवीन विषय वस्तु को केंद्र में रखे जहाँ शोषण की अनेक तहें चढ़ी हुई हैं।

उपन्यास कई क्रमों में आगे बढ़ता हैं जिसमें पहला चरण केन्द्रीय पात्र मतीन के मऊ जाने की घटना के साथ ही समाप्त हो जाता है। मतीन का उस शहर में जाना ही कई इच्छाओं आकांक्षाओं को जन्म देता है। कथाकार ने इसका रोचक वर्णन किया है- ''मतीन अब तक की सारी घटनाओं को भूल जाना चाहता है। अपनी सोसायटी को भी और नजबुनिया को भी। लेकिन बार-बार उसकी आंखों के सामने बैंक मैनेजर का चेहरा और नजबुनियों से खिल-खिल करते हुए दाँत घूम जाते हैं।-----गाड़ी पांच

[5]बिस्मिल्लाह, अब्दुल. (2008). *झीनी-झीनी बीनी चदरिया*. पृ. 16

मिनट तक अलईपुर स्टेशन पर रूकती है, फिर चल देती है। मतीन अपनी गोद में झोला लिये, सिर झुकाये बैठा रहता है। जब सारनाथ स्टेशन आता है तो थोड़ी देर के लिए वह बाहर की दुनिया में खुद को ले जाता है और स्टेशन पर लिखी इबारत को अटक-अटक कर पढ़ने लगता है -

बुद्ध शरणम्‍ गच्छामि

धम्मशरणमगच्छामि

संघ शरणम्‍ गच्छामि।"[6]

मतीन इस तरह से फिर से अपने शहर बनारस चला जाता है। रेलवे स्टेशन पर उत्कीर्ण ये पंक्तियाँ जैसे उसकी कब्र पर लगे शीलालेख पर उत्कीर्ण की गयी हों। वह भाव विभोर हो उठता है। आगे के खण्ड में कथाकार ने मुस्लिम समाज में व्याप्त कुरीतियों को दिखाया है। जैसे-तलाक, दहेज उसके साथ ही उपन्यास में साहबजादों, अमीरों के रोमानी भाव आदि का चित्रण हुआ है। मऊ से वापस आने के बाद मतीन कुन्द हो जाता है। जैसे उसकी सारी इच्छाएं ख़त्म हो गई हों। उसको खुद से यह महसूस होता है कि जैसे वह एकदम ठंडा पड़ गया हो एकदम नीरिह कब्रिस्तान बन चुका हो। वास्तव में ऐसा नहीं है। मतीन का मऊ शहर से अपने शहर आना एक नई घटना को जन्म देता है। बुनकर समाज में फिर से आशा और उम्मीद की किरण आ जाती है। जैसे रोशनी की एक धीमी सी लौ अंधेरे को चीरकर वातावरण में उजाला भर देती है। ठीक ऐसे ही यहाँ भी होता है।

उपन्यास में मतीन निम्न मध्यवर्गीय जिजीविषा का प्रतीक है। उपन्यास के अन्य पत्र पात्र रऊफ चाचा, नजबुदिन, मतीबल, लतीफ, बशीर तथा आफताफ ऐसे ही जिद्दी चरित्र के रूप में सामने आते हैं। तमाम विषम परिस्थितियों में लड़ते हैं, लेकिन कहीं से समझौता नहीं करते हैं। उपन्यास में ये ऐसे पात्र हैं जो हालातों से लड़ते हैं, साथ ही लड़ने की प्रेरणा भी देते हैं। इसी कारण आने वाली पीढ़ी या अगली पीढ़ी का प्रमुख पात्र इकबाल को सभी यह संघर्ष सौंप देते हैं। लेखक ने इस उपन्यास को भिन्न-भिन्न

[6] बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2008). *झीनी-झीनी बीनी चदरिया*, पृ. 16

नजरिए से यह दिखाने का प्रयास किया है कि जीवन में आम आदमी कितनी विषमताओं को झेलता हुआ संघर्ष करता है। इसी कारण आलोचकों ने इस उपन्यास को सर्वोत्कृष्ट श्रेणी के उपन्यासों में रखा है। इस उपन्यास को कुछ लोगों ने इसे इस्लाम विरोधी कहकर उसकी आलोचना की है, लेकिन समग्रता में मूल्यांकन करने पर यह आरोप निराधार साबित होता है।

झीनी-झीनी बीनी चदरिया उपन्यास के माध्यम से बिस्मिल्लाह जी ने एक कम पढ़े-लिखे निम्नवर्गीय पात्र मतीन के माध्यम से ऊंचाई तक पहुंचने का जो जज्बा दिखाया है वह बहुत महत्वपूर्ण है। उपन्यास का मूल बिंदु को-ओपरेटिव सोसायटी हैं जहाँ से बुनकर लोन(कर्ज) लेते हैं। मतीन भी वहाँ जाता है ताकि उसे भी लोन मिल सके और वह अपने जीवन में तरक्की कर सके, लेकिन उसे निराशा ही हाथ लगती है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह वर्ग संघर्ष चेतना के कथाकार हैं। इस उपन्यास में दो प्रमुख वर्ग दिखाई देतें है। उपन्यास का नायक शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जिनका पूरा समाज कठिन से कठिन व विषम से विषम परिस्थितियों में रहकर संघर्ष कर रहा है। उपन्यास में इस यथार्थ का सूक्ष्म अंकन हुआ है। आज मशीनीकरण के दौर में पश्चिम के देशों ने खुद ही कालीनों का निर्माण शुरू कर दिया है। इस कारण से भारत से जाने वाले माल में बहुत कमी आई है। अब बुनकरों का महत्व घट गया है। मतीन की बीबी को टी.बी. रोग हो गया है इस कारण उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है। इधर मतीन के पास पैसे भी नहीं हैं कि ठीक से उसका इलाज करा सकें। उसके पास न तो पैसा है न ही कोई अन्य सुविधाएं। अंत: मतीन चारों तरफ से दुत्कार को झेलता है, उधर उसकी पत्नी गंभीर बीमारी को झेलती है। एक तरफ मतीन को हाजी अमीरूल्ला साहब कम पैसे देते हैं और उसकी कारीगरी पर या उसके बुनाई में कमी निकालते हैं। वहीं दूसरी तरफ जब मतीन अपनी बीवी अलीमुन को लेकर डॉक्टर के पास जाता है तो वहाँ डॉक्टर भी उसे खूब डाटता है। ‘‘अलीमून की तबीयत सुधर नहीं रही है। मतीन कमान रखकर फिर डॉक्टर अंसारी के यहाँ जाता है। डॉक्टर अंसारी उसे डाट देते हैं? गिजा-विजा खिलाते नहीं फरियाद करते हैं कि अच्छी

दवा लिखिए। दवा के साथ-साथ उसे मलाई-वलाई खिलाओ। अण्डा मुर्गा खिलाओ।''[7] कथा में मतीन शोषण का मात्र एक उदाहरण है। पूरा बुनकर समाज इसी तरह का जीवन जीने को अभिशप्त है।

इस उपन्यास में मतीन जैसे लाखों लोग आर्थिक तंगी के कारण यातनाओं की मार चारों तरफ से झेल रहे हैं। बनारस और पूरे अवध और भोजपुरी अंचल के परिदृश्य को कथाकार ने दिखाया है। जहाँ लोग भूख-प्यास से लथपथ हैं, लेकिन काम किए जा रहे हैं। इस काम के बदले उनका और उनके परिवार का पेट भी नहीं भरता। बीमारियों के लिए दवाइयाँ तो दूर की बात है। उपन्यासकार ने ऐसी विकट परिस्थितियों की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट किया है जो प्रेमचंद के कफन कहानी के घीसू, माधव की याद दिलाते हैं। मतीन जैसे ठीक-ठाक उम्र के व्यक्ति को मिठाई एक छोटे से डिब्बे को देकर संतुष्ट कर दिया जाता है, यह आज के समाज की बहुत बड़ी विडंबना है। वहीं दूसरी तरफ विलासिता के समस्त उपकरण पूँजीवादी के यहाँ मौजूद हैं। उपन्यास का केन्द्रीय पात्र मतीन पूँजीपतियों के शोषण के आगे थक गया है पूरी तरह से टूट गया है। अन्य बुनकरों में अलीमुन, बशीर, लतीफ आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। मतीन औद्योगिकीकरण यानी पूँजीवादी व्यवस्था में बुरी तरीके से फंसा है तो वहीं दूसरी तरफ वह ऊँची कोठी वाले पूँजीवादी का शिकार है।

बुनकरों की मुख्य समस्या श्रम का उचित मूल्य न मिलना है जिसके कारण मतीन में आक्रोश है। वह पूँजीपतियों के खिलाफ गोलबन्दी करता है। मजदूरों का एक संगठन तैयार करता है। मजदूरों के हितों के बारे में वह बहुत सोचता है। इसी कारण कि वह एक को-अपरेटिव सोसायटी का निर्माण करता है। फिर बैंक से पैसा लोन लेकर उन मजदूरों को आत्मनिर्भर बनाना चाहता है। वह कई तरह की समस्याओं को लेकर एक साथ ही जूझता व संघर्ष करता है। मतीन के माध्यम से कथाकार ने इस कृति में सारी समस्याओं को हमारे समक्ष रखा है। मतीन एक तरफ अपनी पत्नी को ले जाकर क्षय रोग यानी टी.बी. का इलाज करवाता है, तो दूसरी ओर मजदूरों की बेहतर जिंदगी के बारे में सोचता है कि 'मैं' इनके लिए कितना कुछ अच्छा कर सकूं, लेकिन चाहकर भी वह विवश है। क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था में अंतत:

[7] बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2008). *झीनी-झीनी बीनी चदरिया*, पृ. 16

वह श्रमिक ही है इससे ज्यादा उसकी हैसियत कुछ भी नहीं है। मतीन ही उस उपन्यास का प्रतिनिधि पात्र है। बचपन में जब से कार्य करने लायक हुआ है तभी से वह बुनकरी का कार्य करता चला आया है। समय व परिस्थितियों ने उसे यह बता दिया है कि बस यही तुम्हारा जीवन है।

समर शेष है की अन्तर्वस्तु–

कथाकार बिस्मिल्लाह जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से जीवन का यथार्थ प्रस्तुत किया है। 'समर शेष है' उपन्यास का कथानायक एक ऐसा पात्र है जिसे उपन्यासकार ने 'मैं' नाम से संबोधित किया है। वह दोहरे स्थान पर खड़ा, दोहरी व्यक्तित्व की छाप लिए हुए जीवन जीने को विवश है। उसका जीवन-संघर्ष बलापुर से शुरू होता है, फिर वहाँ से लालगंज, जबलपुर, इलाहाबाद आदि शहरों में उसका संघर्ष जारी रहता है, जहाँ वह जीवन के विविध अनुभवों से होकर गुजरता है। वह एक साथ दो संघर्षों से होकर गुजरता है एक मनोवैज्ञानिक संघर्ष और दूसरा आर्थिक संघर्ष से। वास्तव में ये दोनों संघर्ष अलग-अलग न होकर एक ही हैं, जो व्यक्ति को अन्दर से तोड़ देते हैं। यह घटना कथानायक के साथ भी होता हुआ दिखाई देता है। उसे हर जगह संघर्ष ही संघर्ष नजर आता है। कथाकार ने इसका मनोवैज्ञानिक निरूपण इन शब्दों में किया है – ''संसार ने मुझे अनावश्यक अंग की भांति काटकर फेंक दिया था और 'मैं' छिपकली की कटी हुई पूछ की भाँति छटपटा रहा था।''[8] कथाकार ने एक युवा मन:स्थिति के जीवन की हृदय विदारक परिस्थितियों का चित्रण किया है। कथानायक भावुक प्रेमी होने के कारण हर तरह से पीड़ित व प्रताड़ित है। उसे नाना प्रकार की यातनाएँ झेलनी पड़ती है। खातून के प्रेम ने उसे क्या से क्या करवा डाला। उपन्यासकार ने यहाँ एक प्रेमी हृदय को वाणी प्रदान की है। यह वह खातून को चाहने लगा था। ठीक उसी तरह जैसे 'मैं' छाया को चाहता था। लेकिन छाया के प्रति अपने प्यार को प्रकट करके 'मैं' बहुत कुछ भोग चुका था, अत: दूसरी बार वह स्थिति नहीं आने देना चाहता था। फिर यहाँ एक सामाजिक संकट भी आ खड़ा होता कि 'मैं' खातून का एक शिक्षक था और समाज में शिक्षक का स्थान बहुत ऊँचा

[8] बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2016).*समर शेष है*. पृ. 160

होता है वह स्थान का आदर्श माना जाता है और जो आदर्श होता है उसे प्यार करने का कोई अधिकार नहीं होता है, लेकिन 'मैं' मजबूर था। छाया के बिछोह ने उसे बुरी तरह तोड़ दिया था और खातून की उपस्थिति उस टूटन को जोड़ रही थी।

उपन्यास एक प्रेम की विशेष भावनात्मक मनःस्थिति को यथार्थता के साथ प्रस्तुत करता है –" 'मैं' उस लड़की को अपने मन में बसा लेना चाहता था।"[9] इसीलिए कथानायक 'मैं' मोहभंग, प्रेमभंग का जख्म खाकर भी फिर से उसी रास्ते को अपनाता है और फिर से उसे गहरा जज्बा मिलता है। यहाँ कथाकार ने यह भी दिखाया है कि आर्थिक विपन्नता प्रेम के मार्ग से कैसे इतनी बड़ी बाधा उत्पन्न कर देती है। कथाकार ने 'मैं' के समूचे जीवन संघर्ष की उद्घाटित किया है। वह कितनी विषम परिस्थितियों में रहकर भी संघर्ष करता है। उसे ट्यूशन का सहारा लेना पड़ता है, वह जहाँ रहता है वहाँ मलिन बस्ती है। अत: एक गन्दगीयुक्त वातावरण में जीवन जीने के लिए विवश होना पड़ता है। इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि वह जिस कोठरी में रहता है, उसी कोठरी में उसके साथ दो लोग और रहते हैं उनमें एक जानवर है। एक बकरी जबकि दूसरा एक अंधा बूढा व्यक्ति हैं। मगर किस्मत न जाने कैसी है कि जीवन अब संत्रास बन चुका है।

'जहरबाद' की अन्तर्वस्तु–

'ज़हरबाद' का प्रकाशन 1987 में हुआ। अब्दुल बिस्मिल्लाह के प्रकाशित उपन्यासों में यह तीसरे नम्बर पर आता है, लेकिन इसे कथाकार ने सबसे पहले लिखा है। यह उपन्यास मैं शैली में लिखा गया है जिसे आत्मकथात्मक शैली भी कहा जाता है। उपन्यास के केन्द्र में हँसने-खेलने, गली कूचों में उझलकूद करने वाले अत्यन्त चंचल स्वभाव का एक बच्चा है। समय और परिस्थितियों ने इसे इस रूप में गढ़ दिया था कि वह फूलझर और लोखरी के अवैध प्रेम संबंधों की भाषा को बहुत आसानी से समझ लेता है। मतलब अपने उम्र के बच्चों से पहले ही समझदार हो जाता है। इस उपन्यास को अब्दुल

[9] बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2016).*समर शेष है*. पृ. 162

बिस्मिल्लाह ने खुद अपनी प्रस्तुती के माध्यम से प्रारम्भ किया है, जहाँ गरीबी का बेतहाशा फैलाव दिखाई देता है। मुस्लिम समाज व परिवार की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर यह उपन्यास लिखा गया है। शिल्प कौशल के माध्यम से कथाकार ने सम्पूर्ण परिवेश को जीवंत बना दिया है। इससे संबंधित एक उदाहरण द्रष्टव्य है- ‘‘काम न धंधा बस दिन-रात बंसी के पीछे XXX खाली मछरी खाके पेट भरेगा न। लाज नहीं आती की मेहरिया कमाये और मरद बैठकर खाये। अम्मा की इस आखिरी बात को अब्बा नहीं सह सकें। वंसिया उन्होंने आँगन में फेंक दी और भीतर जाकर अम्मा को पीटने लगे।”[10] इस तरह इन कथनों से स्पष्ट है कि मुस्लिम परिवेश को कथाकार ने बखूबी परखा है। इस तरह स्त्री शोषण को भी इस उपन्यास के माध्यम से सामने लाया गया है कि किस तरह से घर-परिवार में छोटी- छोटी बातों पर कलह होता है जिसमें स्त्रियाँ सर्वाधिक घरेलू हिंसा की शिकार होती हैं।

उपन्यास में एक के बाद एक घटनाएं क्रमश: घटती हैं और फिर एक कथ्य का एक नया शुरू हो जाता है। हबीबुल्ला जब हज से लौटे तो अपने साथ एक नयी आफत लेकर लौटे। वे अपने साथ कई अवैध सामान भी ले आए। इस कारण कस्टम विभाग वालों ने उनके घर छापा मार दिया, लेकिन तमाम मुश्किलों के बावजूद घूस देकर वे सारा मामला समाप्त कर देते हैं। इसी तरह साम्प्रदायिकता के उस रंग को भी कथाकार ने दिखाया है, जब भारत-पाकिस्तान के क्रिकेट मैच में पाकिस्तान की जीत होती है तो वहीं इस खुशी में पान वालों ने मुफ्त में पान खिलाना शुरू कर दिया। यह एक विशेष मन: स्थिति या मानसिकता को कथाकार ने दिखाया है। ऐसे ही छोटे-छोटे कारणों से दंगे भी खूब भड़कते हैं। कथाकार ने चुनाव और साम्प्रदायिक हिंसा के उन दृश्यों को भी दिखाया है जिनके तार अन्दर ही अन्दर जुड़े हुए होते हैं। चुनावों के समय इस समाज में ठीक वैसा ही रंग आज भी दिखाई देता है। चुनाव की बारिकियों, अखबारों द्वारा एक धर्म विशेष को उत्तेजित करना, भड़काना, प्रशासनिक संयम के कारण दंगों का रूप भी दिखाई देता है। यह उपन्यास भारतीय सामाजिक संरचना व यहाँ की जाति व्यवस्था को दिखाता है।

[10] बिस्मिल्लाह, अब्दुल. (2016). जहरबाद, पृ.सं.7

जैसे बाहर से देखने पर हिंदू समाज एक बराबरी का समाज लगता है, लेकिन अंदर से कई जातियों में बंटा हुआ है ठीक उसी प्रकार मुस्लिम समाज भी है जो अनेक छोटी बड़ी जातियों में विभक्त हैं। इस तरह उपन्यास अपने कथानक से एक नए परिवेश का सृजन करता है जो हमारे ही आस-पास मौजूद है, लेकिन हमें दिखाई नहीं देता है।

'दन्तकथा' की अन्तर्वस्तु–

'दन्तकथा' उपन्यास हिंदी उपन्यास की परम्परा से सर्वथा भिन्न व नवीन है। इस उपन्यास की सम्पूर्ण कथा के केन्द्र में एक मुर्गा है जो अपनी जान बचाने के लिए एक नाबदान के में शरण लेता है और अपनी आपबीती को सुनाता है। कथाकार ने प्रतीकात्मक शैली में इसे सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि पात्र बनाया है। अपनी गहरी संवेदना के कारण उपन्यास जीवन्त हो उठता है। अपनी खुद की जान को बचाने में जब वह सफल हो जाता है तो अपनी संवेदना को व्यक्त करता है कथाकार ने उस पक्षी की संवेदना को मानवीय संवेदना के साथ जोड़कर देखा है- ''सुरंग के बाहर सड़क थी, और सड़क पर खदेड़ने वाले पकड़ धकड़ करने वाले, देखते ही दबोच लेने वाले और काटकर खा जाने वाले लोग थे। वे मनुष्य थे।''[11] उपन्यास में यह दिखाया गया है कि कैसे बड़े लोग अपनी सामंती सोच के कारण छोटे लोगों का दमन करते हैं, खूनी हिंसा करते करवाते हैं। इसलिए मुर्गा यह प्रार्थना करता है कि अच्छा हुआ 'मैं' इस जन्म में न हिंदू हूं न मुस्लिम हूँ इसलिए मेरा खून कोई नहीं कर पायेगा।

कथाकार ने साम्प्रदायिकता के उस यथार्थ को दिखाया है, जहाँ लोग एक धर्म के नाम पर एक दूसरे के खून के प्यासे रहते हैं। ''मुझे तो इस बात का बेहद संतोष रहा है कि 'मैं' हिंदू या मुसलमान न होकर मुर्गा हूँ। मैंने कई बार ईश्वर से प्रार्थना की है कि वह अगले जन्म में भी मुझे मुर्गा ही बनाए,मनुष्य नहीं वरना मजबूरन मुझे हिंदू या मुसलमान बनना पड़ेगा।''[12] इस कथन से स्पष्ट है कि इस देश में नफरत

[11]बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2019). *दन्तकथा.* पृ. 9

[12]बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2019). *दन्तकथा.* पृ. 8

की दीवारें कितनी मजबूत हैं, इन्हें तोड़ना आसान कार्य नहीं है। साम्प्रदायिकता के इस रूप को इतिहासकार प्रो. बिपिन चन्द्र भी दिखाते हैं- ''हिंदू ओं और मुसलमानों के हितों के पूर्व रक्षोपायों की आवश्यकता पर बल देने के स्थान पर उनके अस्तित्व को ही खतरे में माने जाने लगा और उन्हीं के पूर्वरक्षोपायों की आवश्यकता बताई जाने लगी। मुसलमान, मुसलमानी संस्कृति एवं इस्लाम, हिन्दू, हिन्दू संस्कृति एवं हिन्दुत्व के ही दमन किये जाने एवं उन्हें समाप्त कर दिये जाने के खतरे का शोर मचाने लगा।''[13] बिस्मिल्लाह ने मुर्गे के माध्यम से सांप्रदायिक हिंसा का जो डर दिखाया है वह आम इंसान का डर है।

भारत में साम्प्रदायिक ताकतों को पूंजीवादियों ने भी खूब बढ़ाया है। शासन, सत्ता और पूंजीवाद के गठजोड़ से आज साम्प्रदायिक ताकतों को आगे किया जा रहा है, जिसमें सर्वाधिक नुकसान हाशिए पर पड़े आम जन की हो रही है। आम आदमी ही महंगाई से लेकर दंगे तक में पिसता रहा है जिसे कथाकार ने मुर्गे के माध्यम से दिखाया है। मुर्गे की विवशता और परेशानी को दिखाकर शोषितों, दलितों एवं सर्वहरा वर्ग की स्थिति- परिस्थिति पर प्रकाश डाला है। सर्वहारा या शोषित वर्ग मुर्गे की भांति ही अपना जीवन बदबूदार परिवेश में व्यतीत करने के लिए विवश है। विवशता के तरीके को उपन्यासकार ने इस तरह व्यक्त किया है -''मगर ये मनुष्य लोग होते बहुत चालाक हैं। ये लोग जिसकी चोच बांधते है उसकी टांगे भी बांध देते हैं ताकि वह बोल तो नहीं सके, उछलकूद भी न सकें। किसी को पूरी तरह अशक्त और परतंत्र कर देने में ही इन्हें परम सुख प्राप्त होता है।''[14] प्रस्तुत कथन से स्पष्ट है कि मुर्गे का मानवीकरण किया गया है जो शोषित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में इस उपन्यास में दिखाई देता है। कथाकार ने गहरे संकेतों के माध्यम से यह दिखाया है कि जैसे लोग मुर्गे की आपस में लड़ाई कराते हैं और अपना मनोरंजन करते हैं ठीक उसी प्रकार इस देश में जाति, सम्प्रदायों में बंटे हुए समाज के निम्न मध्यवर्गीय लोगों को भी पूंजीपति वर्ग तथा सत्ता की मिलीभगत से इन्हें आपस में लड़ाया जाता है। एक सोची समझी रणनीति

---

[13]चन्द्र, बिपिन.(1991). *आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता* पृ. 259

[14]बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2019). *दन्तकथा*. पृ. 34

के तहत देश में साम्प्रदायिक दंगे व फसाद कराये जाते हैं। उपन्यास में इन तथ्यों को गहराई के साथ उठाया गया है। निम्न मध्यवर्गीय समाज के प्रति गहरी संवेदना इस प्रकार व्यक्त की गयी है- ''और थोड़े ही देर में देखा जाता है कि दोनों प्राणी लहू-लुहान हो गए हैं, उनके पर नुच गए है और वे बुरी तरह हाँफ रहै हैं । फिर तो जो भी उस स्थिति का लाभ उठाकर एक बार और हमला कर बैठता, वह जीत जाता,क्योंकि अगले ही पल देखा जाता कि दूसरा घूल में पड़ा फड़फडा रहा है या फिर दुम दबाकर भाग खड़ा हुआ।''[15]

इस तरह स्पष्ट है कि कैसे इस देश की आम आवाम के साथ धोखा किया जाता है। दंतकथा उपन्यास के माध्यम से बिस्मिल्लाह जी ने नये प्रतीक के माध्यम से इस देश की जनता की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डाला है। यहाँ कथाकार की दृष्टि बिल्कुल साफ है। मुर्गे के माध्यम से समाज में व्याप्त वर्ग-संघर्ष तथा तमाम उन साजिशों को दिखाया है जहाँ पूँजीवादी वर्ग सिर्फ और सिर्फ अपने लाभ के लिए तथा जीवन में आनन्द के लिए गरीबों का पूरा जीवन ही दांव पर लगा देता है। उपन्यास की अन्तर्वस्तु में एक बात जो सबसे महत्वपूर्ण है वह यह है कि मुर्गा दु:ख, पश्चाताप, निराशा में ही नहीं डूबा रहता, बल्कि उसके भीतर गहरा आक्रोश भी है। एक तरह से वह मध्यवर्गीय, निम्नवर्गीय समाज का बुद्धिजीवी है, इसलिए चिंतन के सभी पक्षों को जोड़ता है और खुद अपना मूल्यांकन भी करता है। उपन्यासकार ने बड़े ही रोचक ढंग से हिंसा, नफरत, स्वार्थ ,साम्प्रदायिकता, वर्ग, जाति, भूख, नफरत, कुंठा आदि को उपन्यास में बहुत मार्मिक व यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है।

'मुखड़ा क्या देखे' की अन्तर्वस्तु-

अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में 'मुखड़ा क्या देखे' का महत्वपूर्ण स्थान है। इस उपन्यास का प्रकाशन वर्ष 1996 है। इसकी कथावस्तु एक व्यापक पृष्ठभूमि में फैली हुई है जो आजादी से लेकर इमरजेंसी तक के यथार्थ को बहुत मार्मिकता के साथ प्रस्तुत करता है। इस पूरे दौर में जो भी घटनाएं घटती

[15]बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2019). *दन्तकथा*. पृ. 54

है उसको शहरी बुद्धिजीवी लोग किस नजर से देखते हैं तथा उसी घटना को ग्रामीण लोग किस नजरिए से देखते हैं और उसका क्या निष्कर्ष निकालते हैं इसका रोचक रूप यहाँ दिखाई देता है। हर व्यक्ति का किसी भी घटना को देखने का एक नजरिया या दृष्टिकोण होता है, जिसके आधार पर वह अपना निष्कर्ष निकालता है। उपन्यास के माध्यम से यह दिखाया गया है कि आजादी के पूर्व जो सामंती मानसिकता लोगों के दिमाग में थी वहीं मानसिकता आज भी कार्य कर रही है। वह सामंती सामती मानसिकता यहाँ के लोगों के अवचेतन में घर कर गयी है। इस समाज में व्यापक बदलाव नहीं आ पाया है।

उपन्यास इसको इस क्रम में प्रस्तुत करता है। पात्र रामवृक्षपाण्डे आजादी को लेकर खींझ व्यक्त करता है कि अगर नेहरू की जगह पटेल प्रधानमंत्री होते तो देश कितना आगे गया होता। वह कहता है- ‘‘अरे नेहरू के स्थान पर गांधी अगर पटेल को प्रधानमंत्री बना देता तो वहीं कांग्रेस अच्छी लगती की नहीं।’’[16] इन कथनों से स्पष्ट है कि कथाकार ने आम जन में खासकर रेडिकल हिन्दू वर्ग में व्याप्त अवधारणा को यहाँ चित्रित किया है। यदि पटेल प्रधानमंत्री बनते तो देश और भी बेहतर और सुरक्षित रहता, लेकिन वास्तव में ऐसा कुछ नहीं होता यह सब केवल एक दृष्टिकोण या विचारधारा का मामला है, जो अभी भी आम लोगों से लेकर खास लोगों तक एक बहस का मुद्दा है। पंडित नेहरू हकीकत में एक वैश्विक छवि रखने वाले दूरदर्शी नेता थे, उन्होंने समाज को अपने तरीके से नई ऊँचाइयों तक पहुँचाने का कार्य किया है।

उपन्यास के माध्यम से जातिवाद, सम्प्रदाय एवं धार्मिक आडंम्बरों के जीर्ण-क्षीर्ण विचारों का पूर्णतया खण्डन किया है, जिसका वर्तमान समय में या किसी भी समय में समाज को गर्त में ले जाने वाले के लिए यही शक्तियां काम करती हैं। उपन्यास लोक जीवन पर आधारित है, अत: इसमें लोकगीतों का व्यापक रूप दिखाई देता है जो देश काल एवं वातावरण के लिहाज से एकदम संगत बैठता है। भारत में आजादी मिलने के बाद लम्बे समय तक जातिवाद, सम्प्रदायवाद हावी रहा है, जिसका कुछ अंश आज

[16]बिस्मिल्लाह अब्दुल.(2003). *मुखडा क्या देखे.* पृ. 20

भी समाज में दिखाई देता है। उपन्यास में यह संकेत दिया गया है कि शोषण करने वाले लोग हमेशा एक समूह में होते हैं, जबकि शोषित होने वाले लोगों का कोई संगठन नहीं होता है। सबसे ज्यादा शोषण की शिकार स्त्रियाँ ही होती है। यह केवल भारतीय समाज के संदर्भ में ही नहीं, बल्कि वैश्विक नजरिये से भी यह बात खास मायने रखती है। इस उपन्यास में यह समस्या प्रमुख रूप से उभर कर सामने आती है। बालक 'मैं' द्वारा इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है- ''हरामजादी मुँह चलाती है जिन्दगी भर कमाकर खिलाता रहा कीमती कपड़े और गहने से लादे रहा तब मरद की मर्दानगी नहीं देखी गयी।''[17]

उपन्यास में मनोविज्ञान भी साथ-साथ चलता हुआ दिखाई देता है जिसका वास्तविक रूप 'मैं' के चरित्र में दिखाई देता है। बालक 'मैं' घर में इस तरह के वातावरण व आर्थिक परिस्थितियों से तंग आकर पैसा कमाने के बारे में सोचता है। यह सोच जो इस उम्र के बालकों में अक्सर नहीं आती है, उनके खेलने-खाने के दिन होते हैं है। परिस्थितियाँ प्रेमचंद की कहानी ईदगाह के नायक हामिद की तरह 'मैं' को भी जिम्मेदार बना देती हैं। यही मध्यवर्गीय व निम्न मध्यवर्गीय समाज का यथार्थ है। इसी तरह मुस्लिम समुदाय के भीतर व्याप्त स्त्री शोषण, बाल शोषण, गरीबी, अत्याचार, थोथी नैतिकता के खोखले आवरण को कथाकार ने उतारकर फेंक दिया है।

समकालीन दौर के उपन्यासकारों में अब्दुल बिस्मिल्लाह का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। वे अपने समय के ऐसे रचनाकार हैं जो तमाम अवरोधों को झेलते हैं, लेकिन फिर भी अपने लेखन की धार को कम होने नहीं देते। उनके उपन्यासों में इस पक्ष की ज्यादा आलोचना होती है कि वे सम्प्रदाय या जातिगत व्यवस्था को नग्न यथार्थ के रूप में प्रस्तुत करते हैं। अपने उपन्यासों की अन्तर्वस्तु को वे बहुत व्यापक रूप में फैलाए हुए दिखाई देते हैं जहाँ समाज एवं संस्कृति के हर पक्ष को आंतरिक रूप से वे उजागर करते हैं। इस उपन्यास के माध्यम से बिस्मिल्लाह जी ने परिवार, प्रेम, शिक्षा, मित्रता का बहुत ही

[17]बिस्मिल्लाह अब्दुल .(2016). *जहरबाद*, पृ. 7

सजीव चित्रण किया है। उपन्यास का कथानायक मैं तमाम विकट परिस्थितियों का सामना करता है, लेकिन वह हार नहीं मानता है, बल्कि वह समस्याओं का हल विभिन्न तरीकों से निकाल लेता है।

अपवित्र आख्यान की अन्तर्वस्तु-

'अपवित्र आख्यान' मुस्लिम समाज के बाहरी और भीतरी अंतर्विरोध को प्रस्तुत करता है । ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधारित यह उपन्यास आधुनिक कहलाने वाले मनुष्य के मुखौटे को नंगा करता है। भारत बहु-भाषी और विविध संस्कृति का देश है। यहाँ न केवल विभिन्नताओं में एकता का अंतर्विरोध देखने को मिलता, बल्कि एक ही भाषा, धर्म संस्कृति में भी अंतर्विरोध देखने को मिलता है। धर्म को लेकर राजनीति सदियों से चल रहा है। यह प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से समाज में प्रभाव रखता है एवं मनुष्य के जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित करता है। धर्म के कारण ही देश विभाजन हुआ। सांप्रदायिक दंगे भी हुए। अलग-अलग समय में रचनाकारों ने इसका वर्णन किया है, पर कथ्य एवं शैली की दृष्टि से यह उपन्यास श्रेष्ठ है। भूमंडलीकरण के दौर में धर्म तथा भाषा के साथ जीवन एवं जीविका का संबंध, बेरोजगारी, मुस्लिम समाज में स्त्री की स्थिति आदि को उपन्यास में चित्रित किया गया है।

उपन्यास का कथा नायक जमील एक निम्न मध्यवर्गीय चरित्र है। साहित्य के प्रति रुचि के कारण ज़िवागो,मार्क्स, गांधी एवं सोशलिज़्म को पढ़ता है। कहानी लेखन में रुचि रखता है। उसकी कहानी के प्रति सहपाठी यासमीन व्यंग्य करती है। ''हिन्दी में बहुत से मुसलमान कहानी-उपन्यास लिख रहे हैं, क्या कोई तुम नया तीर मारने वाले हो ?[18] एक मुसलमान नवयुवक जमील अक्सर ऐसे समाज और परिवेश से टकराता है जहाँ उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का मूल्यांकन सिर्फ इंसान के रूप में नहीं किया जाता है। बीच में धर्म आड़े आता है। एक मुसलमान युवक का हिन्दी साहित्य में अध्ययन करना पण्डित एवं मौलवी साहब को खटकता है। ''हाँ, तो जमील मियां, आपका क्या एम.ए. है ? किधर जाना चाहते

[18] बिस्मिल्लाह,अब्दुल. (2016). *अपवित्र आख्यान.* पृ-13

हैं आप? क्यों पढ़ रहे हैं हिन्दी? हिंदूओं को चूतिया बनाने के लिए ?"[19] जमील सोचता है क्या धर्मों की भी खास भाषाएँ होती हैं। वह स्कूल की कक्षा में वाध्यतामूलक पाठ्यक्रम के रूप में संस्कृत का अध्ययन करता है। गाँव में पण्डित जी के कहने पर रामायण पाठ करता है - "पाठ अच्छा कर लेते हो !" पण्डित जी ने प्रशंसा की निगाहों से जमील के चेहरे को देखते हुए कहा और पूछा, "क्या नाम है बेटे ?"

'जमील अहमद!' बस फिर क्या था। पण्डित जी चुप हो गए। पाठ बंद हो गया। पण्डित जी का चेहरा भट्टी की तरह दहकने लगा। आँख लाल रंग की गेंदो की तरह बाहर निकल आई। होंठ अध कटे मुर्गे की तरह फड़फड़ाने लगे, और फिर तड़ाक। जमील की कनपटी पर ऐसा झापड़ पड़ा कि उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। नेकर पिशाब से भीग गया ।"[20] उपन्यास में फ़्लैशबैक शैली का प्रयोग किया गया है। बचपन की स्कूल शिक्षा से लेकर नौकरी के क्षेत्र में उसे समस्या झेलनी पड़ती है। एक मुसलमान होने के कारण हिन्दी में एम.ए. करना उसके लिए चुनौती बन कर खड़ी हो जाती है, जबकि उसकी सहपाठी यासमीन सफलता के लिए शॉर्टकट रास्ता अपनाती है। हिन्दी साहित्य से जुड़े किसी हस्ती के साथ हमबिस्तरी हो जाने से उसकी नौकरी पक्की हो जाती है और अंत में विभागाध्यक्षा बनने के बाद भी जमील का मज़ाक उड़ाना नहीं भूलती है। जमील भी मुस्लिम होने के कारण एक मुस्लिम महाविद्यालय में ही नौकरी प्राप्त करता है। वर्तमान समय में केवल प्रतिभा ही नहीं, बल्कि नौकरी के लिए हस्तियों का अथवा गॉडफादर का आशीर्वाद प्राप्त करना जरूरी है। बिस्मिल्लाह जी की कथादृष्टि में शिक्षा-जगत के भ्रष्टाचार का नग्न-यथार्थ देखने को मिलता है।

रावी लिखता है की अन्तर्वस्तु-

'रावी लिखता है' उपन्यास लेखक के व्यापक अनुभव क्षेत्र को उद्घाटित करता है। यह अनुभव समय की अवधि है, जो अपने पूर्वजों के इतिहास के साथ वर्तमान पीढ़ी की सोच का व्यक्त करता है। अनुभव का

---

[19]बिस्मिल्लाह,अब्दुल. (2016). *अपवित्र आख्यान. पृ-* 19
[20]बिस्मिल्लाह,अब्दुल.(2016).*अपवित्र आख्यान. पृ, 46*

क्षेत्र भौगोलिक सीमा, गाँव से शहर एवं स्वदेश से विदेश में विविध रीति-रिवाजों, भाषा-संवाद आदि विचारधाराओं में टकराव के साथ कथा आगे बढ़ती है। “डैडी जब संस्कृत का कोई कथन बोलते थे तो हम हँसते थे। संस्कृत क्या, हिन्दी का ही कोई मुश्किल-सा शब्द सुनकर हँसी आ जाती थी।”[21] यह वह आधुनिक पीढ़ी है जो पुराने रीति-रिवाज भाषा, संस्कृति, खानपान, रहन-सहन के आदि बारे में सुनकर कभी नाक सिकुड़ाती है तो कभी अचंभित हो कर सुनती है। तकनीक के भरोसे बैठी इस पीढ़ी को अपने पुरखों का अतीत अचंभित करता है।

उपन्यास के शीर्षक पर लेखक की यह राय थी कि अरबी में स्त्री वाचक के लिए ‘लिखता’ है सही है। अतः उपन्यास का शीर्षक ‘रावी लिखता है’ हिन्दी पाठकों के समक्ष भले ही अटपटा लगे, वह व्याकरणिक दृष्टि में ठीक है। कथा वाचक के रूप में जो चरित्र है वह रावी है। उपन्यास की अंतर्वस्तु को कई भागों में विभाजित किया गया है। जैसे- रावी लिखता है, रावी ने कथा कही एक जन्म की, रावी, दादी की कहानी: रावी की जबानी, यह ख्वाब की ता’बीर नहीं है, अन्तःसलिला, कहानी, अक्तूबर 2003, गुल्लू का ख्वाब जिसे मैंने देखा, जैसा कि रावी ने बताया, बूझ-अबूझ।

आधुनिकता का लबादा ओढ़े यह पीढ़ी सब कुछ एक ही चश्मे से देखती है। उसे आधुनिकता का ऐसा चस्का लगा है कि सब कुछ तकनीक में तब्दील हो जाए। आधुनिकता से परे डैडी के जीवन को उनके बच्चे इस रूप में देखते हैं। ‘डैडी पूरी तरह आधुनिक नहीं थे’, ‘जमीन पर बैठकर हम खा लेते थे, मगर अच्छा नहीं लगता था’, ‘चने की घुघनी भी कोई खाने की चीज है?’, ‘डैडी एकदम गँवारों जैसी बात करते हैं’, ‘डैडी के लोकगीत कैसेट से हम झल्लाकर टेपरिकॉर्डर को बन्द कर देते’, ‘डैडी का गाँव से इतना लगाव क्यों है?’ बिस्मिल्लाह जी ने नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी में अंतर को विचार के स्तर पर दिखाने का प्रयास किया है। उपन्यास की बुनावट इस प्रकार है कि परत-दर परत कथा खुलती है। अतीत की गहराई में गोता लगाते हुए वर्तमान की ओर उन्मुख होती है।

[21]बिस्मिल्लाह अब्दुल, रावी लिखता है, पृष्ठ संख्या 9

‘अन्तःसलिला’ नामक भाग में लेखक ने प्रेम प्रसंग को अप्रत्यक्ष रूप से पत्र-शैली में प्रस्तुत किया। यह प्रसंग लेखक के बनारस से संबंधित मालूम होता है। डैडी के क्रांतिकारी व्यक्तित्व के आगे प्रेम-प्रसंग फीका लगता है। उपन्यास का सारांश के रूप में यह कथन महत्वपूर्ण है- “नहीं बेटा, मैं यहीं ठीक हूँ। जो जहाँ, वहीं ठीक है। ज़िंदगी में कुछ लोग दो-चार सीढ़ियाँ ही चढ़ पाते हैं, कुछ आठ-दस चढ़ जाते हैं। चंद लोग और कुछ ऊपर तक जाते है, जहाँ से वे दूसरी दुनिया भी देख लेते हैं। तुम लोग जहाँ खड़े हो वहाँ से एक बड़ा आलम दिख रहा होगा । मगर कुछ ऐसे भी लोग होंगे जो और ऊपर तक जाएँगे...।”[22]

अब्दुल बिस्मिल्लाह के इस उपन्यास में अन्य उपन्यासों की भाँति इसमें शोषण, पीड़ा, ग्रामीण चेतना, जीवन-संघर्ष का अभाव दिखाता है। इस उपन्यास में डैडी का गाँव के प्रति मोह दिखाया गया है। एक तरह से यह एक नास्टेल्जिक उपन्यास है जो जड़ों की तरफ लौटने का इशारा करता है।

‘कुठाँव’ की अन्तर्वस्तु-

बिस्मिल्लाह जी के उपन्यासों की एक विशेषता है नामकरण। ‘झीनी झीनी बीनी चदरिया’, ‘मुखड़ा क्या देखे’ शीर्षक कबीर की पँक्ति की याद दिलाती है, तो ‘कुठाँव’ उपन्यास में लेखक ने ‘मारेसि मोहीं कुठाँव’ पँक्ति को उद्धृत किया है। यह पंक्ति जायसी के काव्य में भी और तुलसी के ‘मानस’ में प्रयुक्त हुए हैं। उपन्यास के नामकरण की सार्थकता इसमें है कि भाईचारा का डंका बजाने वाला इस्लाम धर्म, समाज में जाति व्यवस्था किस कदर व्याप्त है का नग्न यथार्थ को प्रस्तुत किया है। लेखक पाठकों को भूमिका में ही सावधान कर देते हैं। वे लिखते हैं कि- “पाठकों को दो आपत्तिजनक बातें दिखेंगी: कुछ-कुछ अश्लीलता और जातिसूचक शब्दों का प्रयोग। मगर यह मेरी मजबूरी थी। उपन्यास की कथावस्तु के

[22]बिस्मिल्लाह अब्दुल, रावी लिखता है, पृष्ठ 142

हिसाब से इनसे बच पाना मेरे लिए लगभग असंभव-सा था। फिर भी मैं इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।"[23] जाहिर है ऐसी वे व्यवस्था पर चोट करते हैं और संभावित विवाद से बचने के लिए स्पष्टीकरण देते हैं।

इस उपन्यास के केन्द्र में स्त्री चरित्र है, जो कथा को गति देती है। इस उपन्यास में स्त्री पात्र केंद्रीय भूमिका में है। सितारा और हुमा जैसी चरित्र प्रतिरोध के चरित्र के रूप में सामने आती हैं। सितारा अनपढ़, गँवार शोषित स्त्री के रूप में है, तो हुमा पढ़ी-लिखी स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है और पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विरोध भी करती है। मुस्लिम समाज में भी जातिगत पदानुक्रम (हैरार्की) कायम है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है- "हिंदूस्तानी समाज में जितनी जातियाँ हिन्दू समाज में हैं लगभग उतनी ही जातियाँ मुस्लिम समाज में भी हैं। हिंदूस्तान में जब मुसलमान आए तो यहाँ की हर उस जाति के लोगों ने इस्लाम धर्म अपनाया जो हिन्दू समाज में उपेक्षित थे। क्योंकि इस्लाम के हाथ में मसावत का झुनझुना जो था। मगर यह झुनझुना सिर्फ बजाने में अच्छा लगता था।"[24]

इस तरह अब्दुल बिस्मिल्लाह जी के उपन्यासों की अंतर्वस्तु काफी विस्तृत है। संपूर्णता में कहा जाए तो उन्होंने यथार्थवादी धरातल के कथानकों को बहुत सलीके से उभारा है। ये आजादी के बाद की सामाजिक व्यवस्था का वह रूप दिखाते हैं जहाँ कम कथाकारों की दृष्टि जा सकी है यही कारण है कि बिस्मिल्लाह जी के कथानक समय के साथ और भी प्रासंगिक होते जा रहे हैं।

3.2 आर्थिक समस्याएं-

समाज सही रूप में संचालित हो इसके लिए अर्थ की जरूरत पड़ती है। वर्तमान समय में जीवन के आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अर्थ की जरूरत पड़ती है। अर्थ के बिना मानव समाज

---

[23]बिस्मिल्लाह, अब्दुल, (2019). *कुठाँव*. पृ. 23

[24]बिस्मिल्लाह, अब्दुल, (2019). *कुठाँव*. पृष्ठ 22-23

का विकास आज के युग में संभव नहीं है। उसके बिना न तो समाज पूरा है और न ही परिवार। मनुष्य को पूर्णत्व तक पहुंचाने में आर्थिक शक्तियों की महती भूमिका है। अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में आम आदमी खेती, मजदूरी, बिनकारी तथा औद्योगिकीकरण जैसी प्रक्रियाओं के तहत मजदूर की तरह खटता हुआ दिखाई देता है। आम आदमी को अर्थ के अभाव में समाज में भी कोई सम्मान नहीं मिलता है और उसे हेय दृष्टि से अथवा कमतर समझा जाता है। आज के पूँजीवादी व उत्तर-आधुनिक दौर में सभी का स्थान पूंजी ही लेती जा रही है। बिना अर्थ के जीवन संभव जान नहीं पड़ता। सभी व्यवस्था के केंद्र में अर्थ निहित है। अर्थ ही न्याय है, व्यवस्था है, समाज है, प्रतिष्ठा है। शायद यही कारण है कि आज का मनुष्य घर-परिवार रिश्तो–नातों को छोड़कर संम्पत्ति के पीछे भाग रहा है।

बिस्मिल्लाह ने अपने सभी उपन्यासों में इसके यथार्थ स्वरूप को चित्रित किया है। यह यथार्थ दिखाई देता है कि पारम्परिक खेती में न तो फसलों की अच्छी पैदावार है और ही ज्यादा आर्थिक लाभ। इस कारण किसान खेती का पेशा छोड़कर शहरों की तरफ तीव्र गति से पलायन कर रहे है। औपनिवेशिक काल से आजादी के बाद तक के परिवर्तन को अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में देखा जा सकता है। 'झीनी झीनी बिनी चदरिया' उपन्यास में आर्थिक तंगहाली को कथाकार ने मतीन नामक एक पात्र के माध्यम से दिखाया जाता है। ''मतीन को भी एक किलो का डिब्बा मिला और इस बार उसकी बिनी साड़ी में ऐब भी नहीं निकाला गया, जबकि दूसरे सभी कारीगरों की साडियों में ऐब निकाले गए। लेकिन मिठाई देने में कोई कोताही नहीं बरती गयी, बल्कि देहात से आने वाले हिन्दू कारीगरों को तो आधा-आधा किलो के डिब्बे अतिरिक्त दिये गये।''[25] मतीन जैसे मजदूर बुनकरों के माध्यम से कथाकार ने लाखों बुनकरों की आर्थिक समस्या पर प्रकाश डाला है। मतीन की पत्नी अलीमुन जब पैसे के बारे मतीन से पूछती है वह उसे और डांटता है। यहाँ एक मनोवैज्ञानिक संयोजन भी देखने को मिलता है कि कैसे गरीबी में आकर लोग मानसिक रूप से भी क्रोधित स्वभाव के हो जाते हैं। उपन्यास इसका मार्मिक पक्ष

[25]बिस्मिल्लह अब्दुल, झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृ.सं. 27

हमारे समक्ष रखता है - ''दिन-रात ओका धियान पइसने में रहेते तोरा कागज क का भोवा।'' ''तै का करने जान केर होई न ! अभई अउर रूपिया चइए अलीमुन चुप हो जाती है।''[26] मजदूरी इतनी कम मिलती है कि उससे न घर का खर्चा चल पाता है और न ही अलीमुन के लिए दवा ही आ पाती है। इतनी कम आमदनी के कारण हफ्ते भर का खर्च तो चल नहीं पाता। गिरहस्त से कर्ज लेना पड़ता है। कर्ज लेने के बाद खुद ही बंधक बन जाने की नौबत आ जाती है और कर्ज चुकता भी नहीं। इस तरह आर्थिक समस्याओं की तरफ कथाकार ने सूक्ष्मता से ध्यान आकृष्ट किया है।

घर परिवार की आर्थिक समस्याएं कैसे छोटे-छोटे बच्चों का बचपना निगल जाती है। उन्हें कम उम्र में ही काम करना पड़ता है, जबकि यह पढ़ने-लिखने और खेलने-कूदने की उम्र होती है। अगर इस उम्र के बच्चों की परवरिश न की गयी तो आगे भविष्य में बच्चों का ही नहीं देश का भी नुकसान होगा। उपन्यास में एक पात्र लतीफ की दयनीय स्थिति को इसी तरह से दिखाया गया है। आर्थिक गरीबी किस तरह से बचपन को निगल जा रही है इसका बहुत मार्मिक अक्स कथाकार ने उपन्यास के पात्र लतीफ के माध्यम से खींचा है। ''लतीफ अपने बड़े बेटे शरीफ को बिनकारी सिखा रहा है। शरीफ की उम्र लगभग दस साल है। उससे एक छोटा लड़का है जो अभी नंगा रहता है। शरिफवा लुंगी पहनता है, मुहल्ले में ऐसे चार-चार साल के लड़के भी लुंगी पहनते हैं। इनकी नाप की नन्हीं–नन्हीं लुंगिया यहाँ दालमण्डी की दूकानों में मिल जाती है।''[27]

उपरोक्त कथनों से यह स्पष्ट है कि कथाकार ने बुनकरों का शोषण करने वाली शक्तियों का पर्दाफाश किया है। बनारस के बुनकरों के आर्थिक संकट लगातार गहराते चले जाते हैं। इन संकटों ने घर-परिवार के भीतर कलह, ईर्ष्या और नफरत को जन्म देकर अमन चैन छीन लिया है। इन कामगारों से अधिक मात्रा में कपड़े उधार ले लिये जाते हैं। फिर उन्हें छोटी रकम देकर पूँजीवादी वर्ग अधिकाधिक

---

[26] बिस्मिल्लह अब्दुल, झीनी-झीनी बीनी चदरिया,पृ.सं.30

[27]बिस्मिल्लह अब्दुल, झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृ. 32

लाभ कमाता है। उन्हें कामों के बदले बहुत कम मजदूरी दी जाती है। दूसरे लम्बे समय तक उनका भुगतान भी नहीं किया जाता ताकि बुनकर कर्ज लें और कर्ज के बदले सूद भी देते रहें। इसी कारण उन बुनकरों की अगली पीढ़ी संगठन बनाकर संघर्ष करती है। दो पीढ़ियों के बीच में कैसे संघर्ष या नेतृत्व का अन्तर आ जाता है, इसे उपन्यास में बखूबी दिखाया गया है। उपन्यास के प्रतिनिधि पात्र मतीन का बेटा निम्न मध्यवर्गीय पात्रों के माध्यम से संघर्ष को आगे ले जाता है। इस संगठन के लोग अपने अधिकारों के लिए आगे आते हैं और अपनी आवाज बुलंद करते हैं।

आर्थिक जहालत झेलने वाले बुनकरों का चित्रण कतर हुए बिस्मिल्लाह जी लिखते हैं- ''मतीन जिस आदमी के घर में रहता है उसकी बीवी भी सुबह सवेरे करघे पर बैठ जाती है और खटा-खुट खटा-खुट शुरू हो जाता है। उसका शौहर चेयरमैन के यहाँ कोई और काम करता है। लेकिन तनख्वाह उसे शायद ही मिलती हो, इसलिए घर में पैसों की तंगी अक्सर ही बनी रहती है। लगता है चेयरमैन साहब की झूठी खुशनूदी हासिल करने के लिए ही यह आदमी उनकी पूछ के पीछे लगा रहता है।''[28] आर्थिक तंगी से ग्रस्त यहाँ के बुनकरों का रहन-सहन इतना निम्न स्तर का है कि वे स्वयं कपड़ा बुनकर पूरे देश का तन ढकते हैं, लेकिन खुद अपने बच्चों को कपड़ा पहनाने में असमर्थ हैं। यही इस देश की संरचना और विडंबना है। घर के नाम पर इन्हें कच्चे सीलन युक्त अथवा टीनशेड के मकानों में रहना पड़ता है। मामूली सी बारिश होने मात्र से इनका घर कीचड़ युक्त हो जाता है, फिर भी वे इस नरकीय जीवन को बिताने के लिए मजबूर है।''[29]

उपन्यासकार ने इस तरह के यथार्थ को प्रस्तुत कर मानवीय संवेदना का वह रूप दिखाया है जहाँ पैसे के आगे संवेदना मर जाती है। पैसा और पूंजी एक तरफ और मानवीय मूल्य दूसरी तरफ है। दोनों एक दूसरे के विरोधी ध्रुवों पर खड़े दिखाई देते हैं। झीनी झीनी बीनी चदरिया उपन्यास के माध्यम से यह तथ्य

[28]बिस्मिल्लह अब्दुल, झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृ. 141

[29]बिस्मिल्लाह,अब्दुल, झीनी-झीनी बीनी चदरिया,पृ.सं.143

सामने आता है कि उच्चवर्गीय समाज के लोग अपने से छोटी जातियों या कहें कि आर्थिक रूप से कमजोर तबके पर बेहद क्रूरतापूर्वक व्यवह करते हैं। उच्चवर्गीय समाज साधन सम्पन्न होता है। अर्थव्यवस्था व वैज्ञानिक तंत्रों पर उनका पूरा अधिकार होता है। वे अपने समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए ही जिन्दा होते हैं इसके लिए वे कुछ भी करने को तैयार होते हैं। वहीं दूसरी तरफ ऐसे लोग हैं जिन्हें परम्परागत रूप से नीची जाति का माना गया है। उनके यहाँ न रोटी का सम्बन्ध हो सकता है न बेटी का सम्बन्ध हो सकता है। इस संदर्भ में समाजशास्त्रियों का यह कथन समझना जरूरी हो जाता है जो उन्होंने मानव समाज के बारे में कहा है – ''समाज मनुष्य के एक समूह के अन्त:सम्बन्धों की एक जटिल व्यवस्था है।''[30] इस उपन्यास में इसका यथार्थ दिखाई देता है, जहाँ का समाज अत्यन्त उलझा हुआ है वे किसी भी समस्या को आपस में सुलझाना नहीं चाहते हैं, बल्कि कुछ लोग मिलकर समाज को और ज्यादा टुकड़ों में बांटना चाहते हैं। यहाँ निम्न वर्ग यानि श्रमिकों को बड़े लोग अपने कब्जे में रखना चाहते हैं उन्हें बार-बार मानसिक रूप से आतंकित करते हैं। एक भय का माहौल उनके दिमाग में बनाते है ताकि बिना प्रतिरोध के ही इन बुनकरों का आर्थिक शोषण किया जा सके और बुनकरों के तरफ से कोई प्रतिरोध न हो और यदि हो भी तो उसे दबा दिया जाय।

उपन्यास में सामंतवाद और पूंजीवाद का गठजोड़ दिखाई देता है। आम आदमी का हर तरह से शोषण किया जाता ही है। इन उपन्यास में बुनकरों ने एक सोसायटी के बैनर तले अपने शोषकों के विरूद्ध आवाज उठाना शुरू करते हैं। परंपरवादी व जड़वादी मानसिकता के लोग इसे स्वीकार नहीं करते हैं वे आज के समय में भी पुरानी व्यवस्था को कायम रखना चाहते हैं।

आत्मकथात्मक शैली में लिखे गए उपन्यास 'समर शेष है' में लेखक नें अपने जीवन के आर्थिक बदहाली को व्यक्त किया है। उपन्यास में एक बालक को केन्द्र में रखकर समूचे उपन्यास का ताना-बाना

---

[30]स्वर्णलता (1975) स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि (प्रथम सं.) जयपुर : विवेक पब्लिशिंग हाउस,पृ.सं.3

बुना गया है। कथाकार ने उस बालक के लिए मैं शैली का प्रयोग किया है। ‘मैं’ अपने सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक और बचपन से लेकर युवावस्था तक की संघर्ष दास्ता को क्रमश: बताता है। उसके बताने से ही सारी बातें स्पष्ट होने लगती हैं जिसे कथाकार ने क्रमशः दिखाया है। सात-आठ वर्ष की उम्र में उसके पिता का साया उठ जाता है, घर में आर्थिक स्थितियां इस तरह से बनी हुई हैं कि उससे निकल पाना बहुत मुश्किल है, लेकिन कथा नायक मैं ने अपने अथक संकल्प से विषम से विषम परिस्थितियों को मात देकर जीवन की संभावनाओं के मायने और मूल अस्तित्व की तलाश करता है।

पिता का साया उठने के बाद ‘मैं’ अपनी बहन के यहाँ इस उम्मीद से जाता है कि वहाँ उसे कोई दिक्कत नहीं होगी, लेकिन परिस्थितियां वहाँ भी वैसी ही रहीं। तिरस्कार और अपमान के अलावा यहाँ और कुछ भी हासिल न हो सका। इस तरह जीवन में ठहराव आने की बजाय भटकाव लगातार बना रहता है। उपन्यास ऐसे कारुणिक यथार्थ को प्रस्तुत करता है- ‘‘मेरा विचार था कि कुछ भी हो रात को मुझे खाने के लिए कहा जायेगा लेकिन ऐसा नहीं हुआ। सीढियों पर जब कोई आहट होती तो मैं यही सोचता कि कोई न कोई मुझे बुलाने आता होगा, पर मेरी कल्पना के टुकड़े-टुकड़े हो गये। देर रात तक अँधेरे में टकटकी बांधे रहने के बाद में धीरे-धीरे सो गया।’’[31] ऐसी तमाम विकट परिस्थितियों से कथानायक ‘मैं’ के जीवन-संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है। पिता के रहते उसने जो सपने देखे थे वे सभी अचानक ढह गये। किशोरावस्था में ही एक लड़की से प्रेम हो जाता है, इस तरह विषम परिस्थितियों में उपन्यास का केन्द्रीय पात्र ‘मैं’ अपने आप को संभालता है। अभिभावक के न रहने पर बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका यथार्थ रूप इस उपन्यास में दिखाई देता है।

समाज की संरचना भी कुछ इस तरीके से हुई है कि पूँजीवादी व्यवस्था में आम आदमी की कोई हैसियत नहीं है, क्योंकि यहाँ सिर्फ पैसे वाले का ही सम्मान है बाकि का तो शोषण और अपमान है। जिन्दगी का यथार्थवादी विश्लेषण करते हुए बिस्मिल्लाह जी ने यह दिखाया है कि कथा नायक दोहरे

[31]बिस्मिल्लाह अब्दुल, समर शेष है, पृ.सं.55

स्थान पर खड़ा है। एक तरफ उसके पिता की अचानक हुई मृत्यु उसे तोड़ देती है वहीं दूसरी तरफ आर्थिक संकट से वह बाहर नहीं आ पाता है। वास्तव में ये जीवन के महत्वपूर्ण बिन्दु हैं जहाँ से व्यक्ति की वास्तविक जिंदगी शुरू होती है। कथानायक मैं अपनी जिंदगी गुजारने के लिए लोहे की तरह मजबूत बनता है, लेकिन दूसरी तरफ उसका मन कहीं और खोया हुआ रहता है। वह छाया, बेगम, शीला, भाभी आदि की स्मृतियों में खोकर मन को अत्यन्त कोमल व सहज बनाने की कोशिश करता है।

कथानायक 'मैं' का यह जीवन संघर्ष इलाहाबाद से शुरू होकर बलापुर. लालगंज आदि से गुजरता हुआ जबलपुर तक जाता है। हर जगह व्यक्ति को अपनी लड़ाई खुद ही लड़नी पड़ती है चाहे वह सामाजिक लड़ाई हो या सांस्कृतिक या आर्थिक, यही उपन्यास का केन्द्रीय स्वर है। उपन्यास में आर्थिक व मनोवैज्ञानिक संघर्ष को भी दिखाया गया है। बचपन में जिस भी बालक को माता-पिता का प्रेम नहीं मिलता है अक्सर वे थोड़े से प्रेम या सहानुभूति को पाकर बहुत खुश हो जाते है। कथानायक 'मैं' के साथ भी लगभग ऐसी ही घटना घटित होती है। इसलिए प्रेम व सम्मान की भूख उसे आजीवन बनी रहती है। प्रेम के अभाव को महसूस करता हुआ वह निरर्थक बोध से पीड़ित एक आधुनिक पीढ़ी का युवा है। यहाँ कथाकार ने एक मनोवैज्ञानिक संरचना को दिखाया है कि प्रेम की भूख भी मनुष्य के जीवन में महसूस होती है। यही कारण है कि जैसे ही एक लड़की के द्वारा उसे थोड़ा सा प्रेम मिलता है वह तुरन्त ही उसकी तरफ आकर्षित हो उठता है। छाया के प्रति उसका प्रेम यद्यपि भावुकता से भरा है, लेकिन दोनों में स्वार्थ की भावनाएं नहीं है दोनों दिल से जुड़े हुए है। ''मैं तुम्हें हमेशा के लिए चाहता हूँ चलों हम तुम भाग चले कहीं....। तुम हाँ तो कहों छाया, मैं कहीं भी ले जाकर रखूँगा। भीख मांगकर खिलाऊंगा पर तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होने दूंगा।''[32] इस भावुक प्रेम और अर्थाभाव के कारण 'मैं' को काफी मुश्किलों से होकर गुजरना पड़ता है।

[32]बिस्मिल्लाह अब्दुल, समर शेष है, पृ.सं.107

इस संदर्भ को आलोचकों ने अपने तरीके से देखने की कोशिश की है। इस संदर्भ में प्रो. ब्रहमदेव मिश्र का मानना है कि – ''समर शेष है शीर्षक के अर्थ के अनुसार मैं को तो अभी संघर्ष करना है। अभी उसका अन्त होने वाला नहीं है। इसीलिए एक समस्या के हल होते ही दूसरी समस्या खड़ी हो जाती है। भाभी का कठोर और क्रूर स्वार्थी मन वैधव्य की आंच में तपकर पिघलता है तो अफवाहों के प्रभाव से उसके भतीजे उसके जान के दुश्मन बन जाते है xxxx इसीलिए इस लड़ाई का अन्त तब तक नहीं होता जब तक कि सामाजिक विभेदजन्य शोषण और मानवीयता समान नहीं हो जाते।''[33] उपन्यास के माध्यम से कथाकार ने वह यथार्थ प्रस्तुत किया है कि आर्थिक अथवा अन्य संसाधनों के प्रभाव में भी जीवट व्यक्ति संघर्ष करके अपना रास्ता खुद बना ही लेते है। यह उपन्यास जहाँ भारतीय आम जनमानस के यथार्थ को प्रस्तुत करता है वहीं दूसरी तरफ एक आदर्श भी बताता है। इस तरह 'समर शेष है' उपन्यास जीवन का उत्स है जहाँ आम आदमी का जीवन यथार्थ प्रस्तुत है। तमाम अभावों व बदहाली में रहकर भी जीवन जीने की उत्कट अभिलाषा उपन्यास का केंद्रीय तत्व है।

'दंतकथा' उपन्यास में आर्थिक अभावों को यथार्थपरक ढंग से दिखाया गया है। यह उपन्यास मुख्यत: अपने अनूठे शैलीपन और लेखनी के कारण चर्चा के केन्द्र में रहा है। उपन्यास के माध्यम से मुख्यत: साम्प्रदायिकता, स्त्री शोषण, अनैतिक कर्मो को दिखाया गया है। आर्थिक समस्या की दृष्टि से इस उपन्यास का खास महत्व नहीं है। उपन्यास की विषय वस्तु के केन्द्र में समाज में नफरत फैलाने वाले वे लोग हैं जो समाज को बाँटकर उसका राजनीतिक या अन्य लाभ लेते हैं। प्रतीकात्मक शैली में लिखे गये इस उपन्यास का नायक एक मुर्गा पक्षी है, जो न तो हिन्दू बनना चाहता है और न ही मुसलमान, बल्कि वह एक बेहतर इंसान बनना चाहता है। इसके बावजूद उसने जो यातनाएं झेली है वास्तव में वही यातनाएँ आज के मजदूर वर्ग झेल रहे हैं। उन तमाम मजदूरों की जिंदगी को उपन्यास के माध्यम से रेखांकित किया गया है जो आर्थिक अभाव के चलते झोपड़पट्टियों और नालों के किनारे अपनी जिंदगी

---

[33]यादव,चन्द्रदेव, समकालीन कथा साहित्य का रूक्त, पृ.सं.110

व्यतीत करते हैं। वास्तव में इन्हीं मजदूरों की बदौलत ही आज शहरों में पूँजीपतियों के बंगले में रोशनी आयी है।

मानव सभ्यता के इतिहास को यदि गौर से देखा जाये तो हमेशा से कुलीन वर्ग के लोगों ने निम्न वर्ग का आर्थिक शोषण किया है। क्योंकि कुलीन वर्ग ऐसा वर्ग हैं जो सब प्रकार के संसाधनों से समृद्ध है। वहीं निम्नवर्ग का व्यक्ति आर्थिक अभाव के चलते स्वार्थो या विवशता के वशीभूत होकर कार्य करता है। मुर्गे के माध्यम से कथाकार ने आम नागरिक के दृष्टिकोण व असुविधाओं का यथार्थ अंकन किया है। मुर्गे का अन्तर्मन ही आम मनुष्य का अन्तर्मन है जो इस उपन्यास में प्रकट हुआ है। कथाकार ने मानवीय सामाजिक विषमता का यथार्थ प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया है –‘‘जो मुर्गी अंडे देना बंद कर देती थी, उसे वे लोग अपनी बांझ स्त्रियों की भांति उपेक्षा की दृष्टि से देखा करते थे और घर-घर में उसका सम्मान गिर जाता था। चाहे उनकी अपनी औरत हो चाहे मुर्गी- संतान के मामले में वे दोनों के साथ एक जैसा बर्ताव करते थे। जो स्त्री संतानवती होती उसकी खूब देखभाल की जाती परिवार में उसकी बड़ी इज्जत होती। उसी प्रकार अण्डे देने वाली मुर्गी की भी खूब कद्र की जाती।’’[34]

इस तरह के सूक्ष्म यथार्थ को प्रस्तुत कर रचनाकार ने विषम परिस्थितियों में झेलते हुए आम आदमी के यथार्थ को प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास के सन्दर्भ में ब्रहमदेव मिश्र ने मार्के की बात कही है जो इस प्रकार है- ‘‘बिस्मिल्लाह का मुर्गा पोई की रोमानी स्मृतियों से वह मानसिक शक्ति पाता है जिसके सहारे वह अपने त्रासद अनुभवों को झेलने में समर्थ होता है और अगले संघर्ष के लिए तत्पर। प्रकृति जीवन की स्वीकृति के साथ संघर्ष की ओर अग्रसर होना बिस्मिल्लाह के कथा साहित्य का वैशिष्टय है जो दंतकथा में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।’’[35] वास्तव में बिस्मिल्लाह जी सभी उपन्यासों में नये प्रतीकों का सहारा लिया है। मानव- मानव के बीच संवेदना की तलाश किसी प्रतीक के माध्यम से करते

[34]बिस्मिल्लाह अब्दुल, दन्तकथा, पृ.सं 21

[35]यादव,चन्द्रदेव, (सं.) अब्दुल बिस्मिल्लाह का कथा साहित्य, पृ.सं. 123

हैं। यहाँ भी मुर्गा प्रतीकात्मक रूप से प्रस्तुत हुआ है, जबकि उसकी पूरी संवेदना मानवीय धरातल पर उपस्थित हुई है। मुर्गे के माध्यम से उन्होंने आम आदमी के दु:ख, करूणा व संवेदना को उकेरने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। जैसे मुर्गे के भीतर समाज को लेकर आक्रोश आता है वह हर तरीके से बदलाव चाहता है ठीक उसी प्रकार आम आदमी भी जब व्यवस्थाओं के तले रौंदा जाता है तो उसे भी गहरा आक्रोश आता है और आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण आक्रोश का यह स्वर और भी सघन हो उठता है।

जहाँ तक दंतकथा का सवाल है तो भारत में इसकी प्राचीन परम्परा रही है। लेकिन धीरे-धीरे ऐसे कथानकों का लोप हो गया। आधुनिक काल में तो दंतकथा की पूरी परम्परा ही समाप्त हो गयी। बिस्मिल्लाह जी ने इस मृतप्राय विधा को फिर से सहेज कर रखने की कोशिश की है। उन्होंने इस विधा का प्रयोग यहाँ बहुआयामी रूप में प्रस्तुत किया है। वहीं गहरे सामाजिक- सांस्कृतिक और आर्थिक समस्याओं के तले दबे मुर्गे के माध्यम से लेखक ने समाज के जिस रूप को प्रस्तुत किया है, उससे आम आदमी के जीवन संकट को समझने में मदद मिलती है। भारतीय समाज में करोड़ों लोग इस मुर्गे की भाँति ही तमाम यातनाओं का शिकार हुये हैं। वे नयी पीढ़ी के सामने अपनी पुरानी पीढ़ी का दु:खड़ा लेकर बैठे हैं, लेकिन उनको सुनने वाला कोई नहीं है। हर जगह उन्हें असुरक्षा, भय, आर्थिक, सांस्कृतिक संकटों के दौर से गुजरना पड़ रहा है। यही जीवन की विडंबना है। यही जीवन का संघर्ष है। आजादी के बाद देश की आर्थिक, सामाजिक स्थितियों में जो सुधार होना चाहिए था वह नहीं हो पाया, इसी कारण आजादी के बाद के कथाकारों में आर्थिक स्थितियों को लेकर एक खीझ दिखाई देती है।

बिस्मिल्लाह जी का उपन्यास ‘मुखड़ा क्या देखे’ वर्ष 1996 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास का कथानक आजादी के बाद से लेकर 1975 तक की इमरजेंसी तक भयानक रूप से सामाजिक, आर्थिक विकटता को उकेरता है। इस पूरे समय चक्र में देश के भीतर घटी हुयी घटनाओं को यह उपन्यास प्रस्तुत करता है। कथाकार ने उपन्यास में इस बात पर जोर दिया है कि देश-दुनिया में घटने वाली बड़ी-बड़ी

घटनाओं को बुद्धिजीवी वर्ग तथा इतिहासकार किस रूप में देखते हैं। उनके नजरिये का भी मूल्यांकन उपन्यास में दिखाई देता है। भारत की स्वतंत्रता के बाद से लेकर आपातकालीन दौर तक किस तरीके से आम जनता आर्थिक रूप से पिस गयी, इसका यथार्थ यह उपन्यास प्रस्तुत करता है। पहले अंग्रेजों की सरकार थी इस कारण देश के लोग बर्बाद हो रहे थे, क्योंकि खेतों में वही फसल उगाई जाती थी जो अंग्रेज शासक चाहते थे, लेकिन आजादी के दौरान जो स्वप्न दिखाया गया जो और आजादी के उपरांत उसमें ऐसा कुछ भी नहीं था कि जनता को कुछ राहत मिल सके। बस कागजों का ही हस्तांतरण हुआ। शासन का स्वरूप तो बदल गया लेकिन उसका मूल चरित्र नहीं बदला। बस शासन करने वाले लोग बदल गये थे। आम जनता को बाकि कोई अन्तर नहीं दिखाई देता है।

'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में ऐसे नाममात्र के राजनीतिक हस्तांतरण को एक छल के रूप में दिखाया गया है। यहाँ पीड़ित व्यक्ति आजादी के बाद भी पीड़ित ही रहा, उसके जीवन में कोई खास बदलाव नहीं आ पाया। उपन्यास इस कारुणिक यथार्थ को इस रूप में प्रस्तुत करता है –''इस गाँव में आज तक अली अहमद की स्थिति ने भर मुँह बात तक नहीं कही फिर कोई बात हो तो आदमी सबुर कर ले। यह तो सरासर जुल्म है क्या आजादी का यही मतलब है? पहले तो कहा जाता था कि अंग्रेज सरकार बहुत जालिम है, अपना राज आ जाने पर सारा जोर जुल्मखत्म हो जायेगा। यही पण्डित जी बताया करते थे सबको तो क्या यह सब झूठ था।''[36]

'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास एक तरह हिंदू-मुस्लिम संघर्ष को दिखाता है तो दूसरी तरफ अर्थव्यवस्था निम्न होने के कारण व्यक्ति का जीवन निम्नमध्यवर्गीय हो गया है। हिन्दू -मुस्लिम परिवार की आर्थिक दुर्दशा को उपन्यासकार ने दिखाने का पूरा प्रयास किया है। उपन्यास का पात्र अली चुड़ीहार, पं. रामवृक्ष की शिकायत करने पं. जवाहरलाल नेहरू के यहाँ इलाहाबाद जाता है और अन्ततः विवश होकर वह विस्थापित होकर अन्य जगह चला जाता है ताकि सुकून से जी सके। यह उपन्यास मुस्लिम

[36]बिस्मिल्लाह अब्दुल, मुखडा क्या देखे, पृ.सं. 31

परिवार की विशेषकर निम्नमध्यवर्गीय मुस्लिम समाज के यथार्थ से परिचित कराता है। अपनी जातीय व आर्थिक वर्ग की सच्चाई से जूझते हुए चूड़ीहार का परिवार इलाहाबाद से मध्यप्रदेश के पूर्वी इलाके में जाने को विवश हो जाता है। वहाँ वह इसाईयों द्वारा बनाई गयी बस्ती में जा पहुंचता है। लेकिन समय सबको अवसर देता है। कालान्तर में वहीं परिवार पुन: वापस इलाहाबाद आ जाता है। कथाकार ने इस पूरे आर्थिक-सामाजिक परिवेश का ताना-बाना अली अहमद चूड़िहार के संवेदनशील चरित्र के रूप में गढ़ा है। वह परिस्थितियों के कारण मार खाकर भी गाँव में चुप बना बैठा रहता है, जबकि उसका बेटा प्रगतिशील चेतना से सम्पन्न है। इसलिए वह प्रतिरोधी चेतना के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है। और अपने परिवार के ऊपर होने वाले हर अन्याय का प्रतिरोध करता है।

कथाकार ने यहाँ यह दिखाया है कि आर्थिक क्रियाओं के न होने पर कैसे परिवार टूट जाता है। व्यक्ति धर्म परिवर्तन के लिए बाध्य हो उठता है। जब आर्थिक रूप से व्यक्ति टूट जाता है या आर्थिक रूप से बहुत संमृद्ध हो जाता है तो उसके लिए मध्यवर्गीय मूल्य कोई स्थान नहीं रखते हैं, बल्कि वह ऐसे मूल्यों को तोड़ने के लिए विवश हो उठता है। यही कारण है की अली अहमद का बेटा एक हिन्दू अछूत लड़की से शादी करता है। उपन्यास ऐसे कई महत्वपूर्ण प्रश्नों को केंद्र में लाता है जिनसे सामना होने के डर से आम आदमी बहुत घबराता है। बिस्मिल्लाह के उपन्यासों के पात्र ऐसी सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ते हैं। आर्थिक क्रियाओं का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा किन-किन रूपों में पड़ता है कथाकार ने इसको बहुत गहराई से उठाया है।

'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास यह दिखाता है कि जब सृष्टि नारायण इस संदर्भ में मौलवी जब्बार अली से मिलते हैं तब मुस्लिम जातिवाद का एक नया रूप भी दिखाई देता है। उपन्यास का पात्र सृष्टि नारायण, मौलवी जब्बार अली से यह निवेदन करता है कि वह अपनी जाति बिरादरी के लोगों को सब समझा दें ताकि हिन्दू-मुस्लिम के बीच कोई विवाद न पैदा हो, मौलवी साहब को यह बात नागवार गुजरती है। कथाकार ने इसे इस रूप में प्रस्तुत किया है- ''देखिए पंडित जी अब ऐसी गाली तो न दीजिए। अली

चुड़िहार है और हम तुरक। एक जात बिरादरी के कैसे हुए।''[37] आर्थिक क्रियाएँ समाज से तथा समाज जाति व्यवस्था से और जाति व्यवस्था भारतीय सामाजिक संरचना में किस कदर घुली मिली है, इस उपन्यास में आसानी से देखा जा सकता है। 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास कई अर्थो में 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' और 'दंतकथा' की तुलना में काफी व्यापक है। उपन्यास की कथा संरचना, पात्र परिवेश भाषा आदि को यहाँ काफी विस्तार मिला है। उपन्यास का गठन बहुत योजनाबद्ध तरीके से किया गया है। यह उपन्यास आजादी के बाद के लगभग तीन दशकों के दरम्यान गाँव के टूटने की दास्तान को बयाँ करता है।

उपन्यास के केन्द्र में स्वाधीनता प्राप्ति के समय विभाजन की त्रासदी, मोहभंग तथा आपातकाल की वे घटनाएं शामिल हैं, जहाँ आम आदमी विवश होकर सब कुछ देखता रहा मगर कुछ बदलाव नहीं ला पाया। उपन्यास का महत्व इस बात में हैं कि उपन्यासकार ने अपने कथानक को जिस निम्नमध्यवर्ग को केन्द्र में रखकर लिखा है वह स्थूल और सूक्ष्म दोनों रूपों में हमारे सामने आता है। उपन्यास के समस्त किरदार अपनी- अपनी भूमिका का निर्वहन करते हैं। कथाकार ने साधारण पात्रों के सहारे असाधारण संवेदना को प्रस्तुत किया है। यहाँ एक गहरी अर्न्तदृष्टि की नजर से छुआ-छूत, जातिगत भेदभाव, साम्प्रदायिकता के जिस रूप और रंग को दिखाया गया है वहीं भारतीयता का वास्तविक रंग है जो आज भी कमोवेश उसी रूप में विद्यमान है।

'समर शेष है' उपन्यास जीवन के विविध पात्रों व रंग संस्कृतियों को हमारे सामने प्रस्तुत करता है। जीवन क्या है और किसे कहते हैं उसके न जाने कितने आयामों को यहाँ दिखाया गया है। जीवन कभी नकारात्मक दौर से गुजरता है तो कभी सकारात्मक दौर से गुजरता है। यह उपन्यास परम्परा व आधुनिकता के मुहाने पर खड़ा दिखाई देता है। आर्थिक स्थिति कमजोर होने पर व्यक्ति के रहन-सहन व खान-पान पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह उपन्यास बहुत सूक्ष्म दृष्टि के साथ दिखाता है। बलापुर गाँव का एक दृश्य इस

[37]बिस्मिल्लाह अब्दुल, मुखडा क्या देखे, पृ.सं. 29-30

उपन्यास में इसी रूप में चित्रित किया गया है- ''उस घर में मेहमानों का आगमन बहुत होता था और परंपरा के अनुसार उनके सामने घर की सही स्थिति को छिपाना पड़ता था। इसी नियम के अनुसार एक रोज जन बैठक में कुछ मेहमान बैठे थे तो मुझसे कहा गया कि मैं अन्ना का खाना पिछवाड़े की ओर से ले जाऊँ।''[38] कथाकार ने बहुत सूक्ष्मता के साथ यहाँ दिखाया है कि यदि आर्थिक स्थितियाँ अच्छी नहीं होती है तो घर के मेहमानों के सामने कैसे दिखावटीपन का अहसास कराया जाता है। उसे यहाँ दिखाया गया है। कथानायक 'मैं' का आर्थिक संघर्ष सतत चलता रहता है। कभी वह किसी रिश्तेदार के यहाँ यहाँ शरण लेता है तो कभी बहन के पास। इस तरह जीवन का ज्यादातर समय इन आर्थिक संघर्षो में ही गुजरता चला गया।

बिस्मिल्लाह जी ने अपने उपन्यासों में परिवेशगत वैविध्य को दिखाने में सर्वाधिक सफलता प्राप्त की है। यह उनकी लेखनी का कौशल है कि वे परिवेश में जान डाल देते हैं और सारी की सारी सामाजिक, आर्थिक स्थितियां स्वयं ही स्पष्ट दिखाई देने लगती हैं। उपन्यास में एक ऐसे ही परिवेश को इस तरह प्रस्तुत किया गया है। ''हमारा इक्का अभी पच्छुम टोलेवाली कच्ची सड़क तक ही पहुंचा था कि मैने देखा, भैया की जीर्ण-शीर्ण साईकिल टुनटुनाती चली आ रही है। साईकिल पर वे इस प्रकार बैठे हुए थे जैसे कोई पुराना टीला आगे की ओर झुका हो। उस रूप में अत्यन्त हताश और दुखी प्रतीत हो रहे थे वे।''[39] उपरोक्त कथन से कथानायक 'मैं' के आर्थिक जीवन को समझने में सहायता मिलती है। यह एक हकीकत है कि आजादी के बाद भारत में मोहभंग तथा बेतहासा गरीबी का जो रूप यहाँ प्रस्तुत है वह गलत नहीं है। प्रसिद्ध इतिहासकार बिपिन चंद्र ने अपनी पुस्तक आजादी के बाद का भारत में आर्थिक क्रियाकलापों की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट किया है जहाँ आर्थिक कमजोरी का ढांचा समूचे देश में मौजूद था। वे लिखते हैं-''साठ के दशक के बाद भुगतान संतुलन की स्थिति सुधारने, अनाज की समस्या

[38]बिस्मिल्लाह अब्दुल, समर शेष है, पृ.सं. 15

[39]बिस्मिल्लाह अब्दुल, समर शेष है, पृ.सं.18

हल करने गरीबी खत्म करने संबंधी कदम उठाने और तेल-सरीखी जरूरी वस्तुओं के आयात पर निर्भरता कम करने की कोशिशे की गई।''[40]

आज लोकतंत्र में पूँजीवादी व्यवस्था एक तरह हावी है कि सब कुछ निगलने को तैयार है। वहीं दूसरी तरफ गरीब वर्ग का व्यक्ति और गरीब होता जा रहा है। इसके पीछे के कारणों की तलाश करने पर यह तथ्य सामने आता है कि आज बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और सत्ताधारियों की मिलीजुली गठजोड़ वाली सरकार है। पाश्चात्य संस्कृति यानी पूँजीवादी संस्कृतिविश्व की अन्य संस्कृतियों को निगलने के लिए तैयार है। पाश्चात्य संस्कृति का भारतीय संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ा है, इसलिए सब कुछ बदला-बदला सा नजर आने लगा है। एक साहित्यिक की डायरी में ऐसा ही एक प्रसंग आया है जहाँ मुक्तिबोध ने लिखा है कि –''जो परिवार के मूल्य होंगे, वे जीवन में होंगे और वे साहित्य में भी उतरेंगे। यहाँ यह सही है कि साहित्य में आकर इनकी रूपरेखा बदल जायेगी किन्तु जिंदगी के जो रूप हैं , जो-जो रवैये हैं, जो एटीट्यूडज हैं वे साहित्य में अवश्य प्रकट होंगे।''[41] 'समर शेष है' में पारिवारिक सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों का क्षरण स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। कथानायक 'मैं' तमाम रिश्तों के बावजूद एक भटकाव का शिकार हो जाता है, क्योंकि वर्तमान पारिवारिक एवं सामाजिक संवेदना शून्य हो चुकी है। भारतीय संस्कृति की परम्पराएं टूट रही है। संयुक्त परिवार अब एकल परिवार में बदलने जा रहे हैं, अतिथि सेवा, भाईचारे और अपनेपन की भावनाएं बिखरती जा रही हैं। जीवन का हर क्षेत्र यांत्रिकता से भर उठा है। बिस्मिल्लाह के इस उपन्यास में मूल्य संक्रमण को दिखाया गया है। यहा 'मैं' के साथ सभी मूल्यों का महत्व शून्य हो गया है। वह चाहकर भी कहीं भी ठहर नहीं पाता है। कथानायक 'मैं' राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक मूल्यों से जूझता हुआ आम आदमी है जिसकी कोई कद्र नहीं है, क्योंकि उसकी

---

[40]चंद्र बिपिन, आजादी के बाद का भारत, पृ.सं 468

[41]मुक्तिबोध, एक साहित्यिक की डायरी, पृ.सं. 87

उसकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। इसलिए वह सामाजिक उपेक्षा का शिकार होता है। मूल्य संक्रमण और परिवारों का विघटन कैसे होता है इस उपन्यास में दिखाई देता है।

भ्रष्टाचार तानाशाही व अराजकता के मूल में मूल्य विघटन ही है। उपन्यास इसका मार्मिक चित्रण करता है –''अक्सर ऐसा हुआ है आस-पड़ोस के लोग सामने से गुजरे और मैंने सोचा कि मुझे कराहते देखकर शायद कोई इधर देखे, लेकिन इस शहर के अपने निजी चरित्र की वजह से ही शायद ऐसा मुमकिन नहीं हो सका। लोग बदस्तूर बाहर निकलते रहे सड़क पर चलते हुए बांग्ला देश के संबंध में बाते करते रहे कब्रिस्तान में बैठकर लड़कियों को छेड़ते रहे, पर उस कमरे के भीतर गूंजती कराह पर ध्यान देने की जरूरत किसी को महसूस नहीं हुई। लिहाजा मैं कराहता रहा और शहर अपनी पुरानी रफ्तार से टहलता रहा।''[42] उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि आज पूँजीवादी समाज में मूल्यों का विघटन हो चुका है। एक तरह से बिस्मिल्लाह जी का प्रारम्भिक जीवन बहुत कठिनाइयों से होकर गुजरा है कहीं न कहीं वह दर्द और यातना इस उपन्यास में दिखाई देता है। कथाकार ने अपने जीवन में घटित तमाम घटनाओं को यहाँ उकेरकर रख दिया है जो इस उपन्यास को और जीवन्तता प्रदान करता है। कथानायक मैं के माध्यम से बिस्मिल्लाह जी ने अपने स्वजनों और सामाजिक सरोकार को इस तरह प्रस्तुत किया है जहाँ का सामाजिक तानाबाना साफ- साफ दिखाई देता है –''जीवन एक रहस्य के रूप में मेरे सामने फैला हुआ था और उसे मैं जान लेने का जितना ही प्रयत्न करता उतना ही असफल होता। मुझे लगता है कि नियति के साथ मेरे सम्बन्ध कहीं न कहीं अवश्य उलझे हुए हैं।''[43]कथानायक के बालपन से लेकर युवावस्था की विषम परिस्थितियों का यथार्थ 'समर शेष है' उपन्यास में दिखाई देता है। वह किस तरह से ऐसे जर्जर आर्थिक हालात से खुद को निकालता है इसका गम्भीरता पूर्वक चिंतन किया गया है –''भैया ने चलते-चलते मुझे दो आने दिए एक सिक्का दस पैसे का और एक दो पैसे का। मैंने उसे हिफाजत से कमीज की बगलवाली जेब में डाल लिया और चल पड़ा।'' ''या परवरदिगार ! किसी को यतीन न बना।''किसी

[42]बिस्मिल्लाह अब्दुल, समर शेष है, पृ.सं. 156
[43]बिस्मिल्लाह अब्दुल, समर शेष है, पृ.सं. 25

स्त्री के मुख से निकले हुए ये शब्द अचानक मेरे कानों में पड़े और तालाब तक पहुँचते -पहुँचते मैं रो पड़ा।''[44] उपन्यास में इसे प्रमुख रूप से केन्द्रीय वाक्य माना जा सकता है। वास्तव में कथानायक 'मैं' को अपनी माता के स्नेह से जन्म के कुछ समय बाद ही वंचित होना पड़ता है। पिता के साथ रहकर वह अपने ख़्वाबों की दुनिया बसाने का स्वप्न देखता है और गरबीली गरीबी से मुक्ति चाहता है लेकिन वह एक अधूरा ख्वाब बनकर रह जाता है।

समकालीन कथाकारों में बिस्मिल्लाह जी का महत्वपूर्ण स्थान है। बिस्मिल्लाह जी अपने समय के एक ऐसे लेखक हैं जो यथार्थ लेखन के कारण चर्चा में रहे हैं। इसी कारण उनके उपन्यासों में शोध की दृष्टि नजर आती है। उपन्यास स्थिति कि उस हकीकत तक पहुँचते हैं जहाँ तक सामान्य नजरें नहीं पहुंच पाती हैं बिस्मिल्लाह जी अपने समय के सर्वश्रेष्ठ कथाकारों में स्थान रखते हैं। उनके द्वारा लिखित उपन्यास आजादी के बाद के भारत को दिखाने में सक्षम है उन्होंने उसे यथार्थ को दिखाया है जहाँ आम आदमी है और उसका जीवन है आम आदमी का जीवन कितनी विषम परिस्थितियों में और कितने संघर्ष में ही है इसका यथार्थ प्रस्तुत करते हैं। बिस्मिल्लाह जी जिस समय कथा-क्षेत्र में आए, हिंदी का कथा-साहित्य नगरीय जीवन बोध के केंद्र में रखकर अधिक सक्रिय था। ऐसे में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने ग्रामीण पृष्ठभूमि को केंद्र में रखकर जीवन अनुभूति को कथा में उपस्थित किए। इनकी रचनाधर्मिता ने इन्हें हिंदी कथा साहित्य की अगली पंक्ति के रचनाकारों के बीच प्रतिष्ठित कर दिया। यह सच है कि उस कृति में ऐसा बहुत कुछ था जो कथा साहित्य के तत्कालीन संदर्भों में हिंदी पाठक के लिए नया और अछूता था। बिस्मिल्लाह जी के उपन्यासों के माध्यम से पाठकों ने भारतीय समाज के जीवन-यथार्थ को उसके वास्तविक रूप में देखा और अनुभव किया।

समाज का यथार्थ आम जनों के आचार -विचार, बोली-भाषा, मान्यताएँ, विश्वास, गीत-संगीत, पर्व -त्योहार, सुख-दु;ख इतने सहज रूप में हमारे सामने आते हैं कि सचमुच हमारे समाज का जीवन

[44]बिस्मिल्लाह अब्दुल, समर शेष है, पृ.सं.40

यथार्थ बहुत कुछ ऐसा है जो अब तक उपेक्षित और त्याज्य रहा है। बिस्मिल्लाह जी ने बड़ी सूक्ष्मता एवं आत्मीयता के साथ इस उपेक्षित और त्याज्य समाज को साहित्य के केंद्र में लाया है। ऐसा लगता है कि अब्दुल बिस्मिल्लाह ने भारतीय समाज को पूरी तरह जांचा-परखा है। समस्त सुधार संभावनाओं से प्रेरित होकर उसे प्रस्तुत किया है। इनके उपन्यासों के अधिकांश पात्र समाज के यथार्थ से रू-ब-रू कराते हैं। तमाम पात्र ऐसे भी हैं जो विडंबनाओं, शोषण, दमन के खिलाफ जमकर संघर्ष भी करते हैं। इन पात्रों के माध्यम से ही समाज-यथार्थ को उद्घाटित किया है और उस व्यवस्था का दिग्दर्शन भी कराया है जिसमें आर्थिक संकट हर जगह मौजूद है। ग्रामीण जीवन की समस्या इनके उपन्यासों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। दयनीय आर्थिक स्थिति, बढ़ती हुई जनसंख्या एवं धीमी प्रगति का खामियाजा आम जनता को सबसे अधिक भुगतनी पड़ती है। आजादी के बाद गाँवों का पतन अधिक हुआ है। यहाँ भी पैसे का प्रभाव दिखने लगा है। आत्मीयता ख़त्म हो रही है। सामूहिक मानवीय जीवन मूल्य के बदले व्यक्तिगत जीवन मूल्य का प्रभाव बढ़ रहा है।

3.3 धार्मिक एवं सांप्रदायिक समस्याएं

भारत बहुधार्मिक, बहुसम्प्रदायों एवं बहुसंस्कृतियों का देश है। यही इसकी विशिष्टता और पहचान है। यहाँ सामाजिक सामंजस्य का अनोखा रूप दिखाई देता है, लेकिन पूँजीपतियों और सत्तालोलुप लोगों ने मिलकर इसे लगातार तोड़ने की कोशिश की है। यही कारण है अंग्रेजों के समय से लेकर आजादी के बाद तक यानी वर्तमान समय तक साम्प्रदायिकता, कट्टरता व नफरत की भावना ने समाज को तोड़कर रख दिया है। आज साम्प्रदायिकता हमारे समाज की प्रमुख एवं ज्वलन्त समस्या का रूप धारण कर चुकी है। इसका यथार्थ रूप अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में प्रमुखता से दिखाया गया है। जहाँ एक सम्प्रदाय के लोग खुद को श्रेष्ठ व दूसरे को नीचा दिखाने की लगातार कोशिश कर रहे हैं। तरह-तरह के हथकंडे अपनाकर, साम्प्रदायिक ताकतों का सहारा लेकर पूँजीपतियों ने अपना व्यक्तिगत लाभ व यश कमाया है। लेकिन अन्दर ही अन्दर वे समाज को खोखला बना दिए हैं। वास्तव में साम्प्रदायिकता हमारे

देश-समाज के लिए खतरा बन गई है। भारत ही नहीं, बल्कि आज यह वैश्विक समस्या के रूप में उभर कर आई है। साम्प्रदायिकता का यही रूप विचारकों की नजर में भी है। इस संदर्भ में श्री गोपीनाथ कालभोर का मानना है कि –''साम्प्रदायिकता एक ऐसा भाव है जो एकाधिक पंथों अथवा साम्प्रदायों के मन में अपने सम्प्रदायों के हितों, व्यक्तिगत स्वार्थों धार्मिक प्रतिष्ठाओं एवं राजनैतिक सत्ता संघर्षों को लेकर दंगे के रूप में बदल जाता है।''[45] वास्तव में साम्प्रदायिकता का अवलोकन करने पर यह तथ्य सामने आता है कि इसका जन्म ब्रिटीश औपनिवेशिक काल से प्रारम्भ हुआ। जब अंग्रेजों को भारत में अपने साम्राज्य को मजबूती प्रदान करने में रूकावट आने लगी तो उन्होंने हिंदू व मुस्लिम दो प्रमुख धर्मो के बीच नफरत फैलाने का कार्य प्रारम्भ किया और इसमें वे कामयाब भी रहे।

अब्दुल बिस्मिलाह के यहाँ इसका सूक्ष्म रूप इस तरह प्रस्तुत हुआ है -''हमने खुद अपनी आंख से देखा है। दूसरा कोई कहता तो फिर भी एक बार विश्वास करते। ऊ जो तोते है न अरे नहीं भगत राम पासी उसकी बिटिया के संग सेत नार में ससुर रासलीला कर रहे हैं आजकल। कहना कि अब भी टेम है, बाज आ जाय अपनी हरकत से नहीं तो भई हिंदू-मुसलमान का मामला बन जाएगा तो हम फिर नहीं जानते।''[46] उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि जातीय एवं धार्मिक रूढ़िवादी लोग कैसे साधारण से साधारण बात में भी साम्प्रदायिकता का रंग चढ़ा देते हैं। जीवन जगत के तमाम ऐसे क्षेत्रों से कथाकार बिस्मिल्लाह जी ने एक खोजी एवं ज़िज्ञासु वैज्ञानिक की भाँति समाज में विषमता बोने वाले लोगों का पर्दाफाश किया है। कथाकार ने राजनैतिक पार्टियों को भी केन्द्र में लाया है जिन्होंने हमेशा से समाज को बांटने का कार्य किया है। उपन्यास का पात्र बुद्धु उर्फ डॉ. रफीक अहमद सिद्धीकी समाज में क्रान्ति लाने का प्रयास करता है। वह पं.सृष्टीनारायण पांडे, दयाशंकर पांडे का बार-बार विरोध करते हुए अपना पक्ष रखता है। लेकिन बुद्धु समाज को प्रगति के पथ पर जाते हुए देखना चाहता है। बुद्धु से इसी कारण गाँव का एक लड़का सामाजिक क्रान्ति के साथ- साथ राजनीतिक क्रान्ति में भाग लेने की बात कहता है कि तोते की बिटिया

---

[45]कालभोर गोपीनाथ: धर्मनिर्पेक्षता और राष्ट्रीय एकता, जयुपर सं. 2000, पृ.सं. 170

[46]बिस्मिल्लाह अब्दुल, मुखडा क्या देखे, पृ.सं. 141

से ब्याह करके तुमने सामाजिक क्रान्ति की है। मैं चाहता हूँ कि देश में आने वाली राजनीतिक क्रांति में भी तुम मदद करो। इस तरह 'मुखड़ा क्या देखे' अपनी कथावस्तु की सुगठता को अप्रतीम बनाए हुए है। साम्प्रदायिकता, नफरत और विद्वेष के संदर्भ में डॉ. राधाकृष्णन का विचार प्रासंगिक लगता है। ''मनुष्यों में आपसी झगड़ों का अंकुर उस पद्धति से पैदा होता हैं जिसके अनुसार विभिन्न समूहों के व्यक्ति दूसरों के संबंध में अपनी धारणा बना लेते हैं। कर्तव्य और न्याय के अपने आदर्शों को दूसरों से श्रेष्ठ समझते हैं।''[47]

इसी तरह 'जहरबाद' और 'समर शेष है' उपन्यास में मुस्लिम संस्कृति, साम्प्रदायिकता व परस्पर आपसी संघर्ष को दिखाया गया है। 'जहरबाद' में आपसी संघर्ष का स्वरूप कम दिखाई देता है। यह लेखक का आत्मकथात्मक उपन्यास है। ज़हरबाद उपन्यास में साम्प्रदायिकता की समस्या ज्यादा महत्व की नहीं है, लेकिन उपन्यास की महत्ता उससे कम नहीं हो जाती। मुस्लिम संस्कृति का यथार्थ निरूपण इस उपन्यास में हुआ है जो अभी भी गरीबी की रेखा के नीचे जीवन जी रहे हैं। कथाकार ने मुस्लिमों के आपसी टकराहट, द्वन्द्व व विसंगतियों को सामने लाया है जहाँ के अधिसंख्य लोग आर्थिक रूप से जूझ रहे हैं। इस उपन्यास के माध्यम से बिस्मिल्लाह जी ने कथानयक 'मैं' तथा 'मैं' के माता-पिता की दर्द भरे जीवन व यातनाओं को प्रस्तुत किया है। साम्प्रदायिकता दो मनुष्यों के बीच नहीं, बल्कि दो समुदायों के बीच में फैलती है। इस तरह अखण्ड भारत इन ताकतों के सामने खण्ड -खण्ड होता दिखाई देता है। साम्प्रदायिक दंगों के दौरान हाशिए पर जीवन व्यतीत कर रहा हर गरीब पीसता है वह भी बिना किसी गुनाह के।

समाज में सत्ता लोलुप लोग अपनी व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए गरीब बुनकरों की जिंदगी को दांव पर लगा देते हैं। किसी के भीतर इन गरीबों के बारे में सोचने की चिंता नहीं है। कथाकार ने कामता नेता शरफुद्दीन, अल्लफु रहेमान एडीटर और दादा पंडित बनर्जी के सद्प्रयासों से स्थिति को काबू में करने

[47]राधाकृष्णन, डॉ. सर्वपल्ली, हमारी विरासत (अनु. विजय मल्होत्रा) पृ.सं. 100

वाले लोगों के रूप में दिखाया है जिसे अगले दिन समाचार पत्रों में मोटे-मोटे अक्षरों में छापा जाता है। बार-बार बताया जा रहा है कि दंगो के दौरान स्थिति नियंत्रण में आ गयी है, लेकिन यह कभी नहीं बताया जाता कि इन दंगो से गरीबों के परिवार वालों या समाज या देश पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है। न जाने कितने व्यक्ति इन साम्प्रदायिक दंगो के दौरान मारे गये, घर बार लूट लिया गया, बेरोजगार हो गये इसे प्रमुखता से कभी नहीं दिखाया जाता है। उपन्यास इसका यथार्थ रूप इस तरह से प्रस्तुत करता है-''नगर की स्थिति अब सामान्य होती जा रही है और प्रशासन ने दंगों को पूरी तरह नियंत्रित कर लिया है...

xxxx लेकिन अखबारों ने यह समाचार नहीं छापा कि कर्फ्यू के दौरान न वशीर मियां के घर पानी मिला और न मतीन के घर को आटा।''[48] इस तरह साम्प्रदायिक के विविध रूप अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में दिखाई पड़ते हैं। वास्तव में बिस्मिल्लाह जी राही मासूम रजा की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले कथाकारों में इस दृष्टिकोण से सर्वाधिक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट है कि धर्म का विकास मानवता के लिए हुआ था, लेकिन आज उसका केवल निजी स्वार्थ के चलते दुरूपयोग किया जा रहा है। आज धर्म पर कुछ लोगों का कब्जा है और उन्हीं के अनुसार उसे चलाया जा रहा है। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में इन सभी तथ्यों को कथाकार ने निर्भीकता पूर्वक सामने लाया है। वे लिखते हैं- ''शोर मचाती भीड़। एक ऐसा शोर जिसका अध्यात्म से कोई सरोकार नहीं। ठीक उसी प्रकार का शोर उस वक्त भी होता है जब ताजियाँ का जुलूस निकलता है। धर्म दोनों ही अवसरों पर सड़क छाप हो जाता है वह सरेआम सिर के बल खड़ा हो जाता है। लेकिन फिर भी लोग कहते हैं यह सत्य है और सिर्फ यही सत्य है। इस सत्य के लिए लोग कट मरते हैं।''[49] इस तरह कथाकार ने हिंदू या मुसलमान किसी की तरफ कोई तरफदारी न करके वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से दोनों धर्मो को देखा हैं।

[48]वही, पृ.सं.194

[49]बिस्मिल्लाह अब्दुल, झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृ.सं. 191

वास्तव में इस देश में अब नियोजित तरीको से दंगों को करवाया जाता है। उत्तर प्रदेश, बिहार, जैसे हिंदू -मुस्लिम बाहुल्य प्रदेशों में साम्प्रदायिक दंगों का कड़वा सच समय-समय पर दिखाई देता रहता है। कथाकार ने बनारस के कुछ स्थानों का जिक्र करके कथा में ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत किया है। इसका उदाहरण उपन्यास में इस रूप में प्रस्तुत है– ''यहाँ मदनपुरा में दो गलियां ऐसी हैं जिनको लेकर बड़ा विवाद हैं। एक गली ऐसी है जिसमें मुसलमानों की आबादी बहुत ज्यादा है और हिंदू चाहते हैं कि दुर्गा की प्रतिमा इसी गली से होकर गुजरे जबकि मुसलमान नहीं चाहते हैं कि ऐसा हो वरना उनका इमान शायद ख़तरे में पड़ जाएगा। दूसरी गली ऐसी है जहाँ हिंदू आबादी ज्यादा है और उस गली में मुसलमानों ने एक इमाम चौक बना रखा है। वे वहाँ ताजिया बैठाते हैं और हिंदू नहीं चाहते हैं कि ऐसा हो, वरना उनकी आस्था पर शायद चोट पहुँचे।''[50]

सांप्रदायिकता को साहित्यकारों के साथ -साथ इतिहासकारों ने भी अपने तरीके से समझने का प्रयास किया है। आधुनिक भारत के सबसे महत्वपूर्ण इतिहासकारों में से एक प्रो. विपिन चन्द्र इसे उपनिवेशवाद का दुष्परिणाम मानते हैं। इस संदर्भ में उनका यह कथन बहुत समीचीन लगता है– ''साम्प्रदायिकता मूलत: उपनिवेशवाद के दुष्परिणामों में से एक है। यह भारतीय अर्थव्यवस्था के फलस्वरूप अवरूद्ध विकास का परिणाम है इसके साथ ही साम्प्रदायिकता हाल के वर्षो के दौरान अर्थव्यवस्था और समाज को विकसित कर पाने में पूंजीवाद की अक्षमता और असफलता का भी प्रतिफल है। उपनिवेशवाद ने एक सामाजिक संरचना प्रदान की जिसने साम्प्रदायिकता को उत्पन्न किया और जिसके भीतर साम्प्रदायिकता की विचारधारा पनप सकी।''[51] इन कथनों से साम्प्रदायिकता का एक नया स्वरूप सामने आता है। आजादी के बाद के कथाकारों में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने उन चुने हुए कथाकारों की श्रेणी में अपना स्थान बनाया है,जिन्होंने हिंदू -मुस्लिम के वास्तविक रूप को सामने लाया है। उनके उपन्यासों 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया', 'जहरबाद', 'दंतकथा', 'मुखड़ा क्या देखे', 'रावी

[50]बिस्मिल्लाह अब्दुल, झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृ.सं.161

[51]बिपिन चन्द्र : आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता, दिल्ली, 1996, पृ.सं.24

लिखता है' तथा 'समर शेष है' में मुस्लिम परिवारों का समूचा संसार दिखाई देता है। एक तरह से मुस्लिम संस्कृति के विविध पक्षों से उपन्यास हमारा साक्षात्कार कराता है तो दूसरी तरफ सांप्रदायिकता के आंतरिक ताने-बाने को भी यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है।

प्रसिद्ध उपन्यास रावी लिखता है कि ये पंक्तियां एक परिदृश्य को समझने के लिए महत्वपूर्ण हैं– ''दीन मुहम्मद को दफ्न करने के लिए खूब गहरी कब्र खोदनी पड़ी क्योंकि उनका जिस्म बुरी तरह अकड़ गया था और वह सीधा नहीं हो सका। यानी अपनी कब्र में भी वे सिजदे में रहे।''[52] 'जहरबाद' उपन्यास के अधिकांश चरित्र भूखमरी के शिकार हैं। आर्थिक अभावों में व्यक्ति कैसे जीवन यापन करता है और खासकर तब जब परिवार काफी बड़ा हो। ऐसी अनेक समस्याओं को उपन्यास के माध्यम से दिखाया गया है। कथानायक 'मैं' के पिता की जमींदारी चली जाती है। अम्मा के गहने बेचकर वह चमड़े का व्यवसाय शुरू करता है लेकिन वह ठीक से चल नहीं पाता है पूंजी के अभाव में अब्बा का सारा श्रम बेकार हो जाता है। घर की माली हालत अत्यन्त दयनीय हो जाती है। कथाकार ने इसका मार्मिक रूप इस तरह से प्रस्तुत किया है –''अम्मा थोड़े से भुट्टे कहीं से मांग लायी थी, जिन्हें उबाल-उबालकर कुछ दिनों तक काम चलाया गया।''[53] वास्तव में 'जहरबाद' उपन्यास धर्म, त्योहार, पर्व संस्कृति एवं निम्न मध्यमवर्गीय मुस्लिमों के परिवेश को यथार्थ में दिखाता है। इस तरह बिस्मिल्लाह के कथा साहित्य में प्रतिबद्धता है जो उन्हें अपने समाज के कटु यथार्थ से विचलित नहीं होने देती है। 'जहरबाद' तथा 'समर शेष है' ये दोनों उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखे गये हैं, इन दोनों में तारतम्यता दिखाई देती है, क्योंकि इनमें कथानायक खुद ही वाचक है जो अपनी और अपने समाज की कहानी को बताता है।

धार्मिक दंगे किस तरह करवाये जाते है यह उपन्यास में साफ साफ दिखाई देता है। इस संदर्भ में यशपाल का यह कथन विचारणीय है – ''साम्प्रदायिकता समाज और राजनीति में जहर घोलने का काम

---

[52]बिस्मिल्लाह अब्दुल : समर शेष है, पृ. सं. 52

[53]त्रिपाठी चंद्रकला (लेख-अनदेखे अंधेरो की कथा) पृ.सं. 70

करती है। देश में जो भी दंगे फसाद हुए जातियों में विद्वेष का विष फैला, देश के दो टुकड़े हुए, ये सब इसी के परिणाम हैं। साम्प्रदायिकता के कारण मनुष्य-मनुष्य न रहकर पशु बन जाता है।''[54]साम्प्रदायिकता समाज के लिए विष की तरह है, लेकिन जिनके हाथों में सत्ता होती है वो भी लोग इसमें शामिल होते हैं, क्योंकि उनके लिए मनुष्य का महत्व उतना नहीं है जितना की सत्ता का होता है। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में यह यथार्थ सामने आता है जहाँ चंद अराजक लोगों की वजह से सम्पूर्ण समाज का पूरा कार्य-व्यवसाय सब कुछ बंद हो जाता है और लोगों में भयानक दहशत का माहौल घर कर जाता है। मऊ से लेकर बनारस तक जैसे दंगो की कोई श्रृंखला चल पड़ी हो ऐसा इस उपन्यास में दिखाई देता है। कथाकार ने स्पष्ट संकेत किया है कि दंगा भले ही किसी एक स्थान पर हो मगर उसकी लौ समूचे देश में दिखाई देती है जो अत्यंत चिंता का विषय है। उपन्यास ऐसे वीभत्स दृश्यों को सामने लाता है-''इस दंगे और इस कर्फ्यू से मऊ ही नहीं आसपास का सारा धंधा ठप हो गया। आजमगढ जिले के कोयागंज, अदरी, पूराघाट, घोसी, सिपाह, मधुबन तथा गाजीपुर जिले के कोयागंज, अदरी, चूराघाट, घोसी, सिपाह, जहूराबाद, मरहद, जंगीपुर आदि स्थानों के बुनकर मऊ से ही सूत मजदूरी प्राप्त करते हैं। कर्फ्यू काल में तैयार माल लोगों के घर में ही पड़ा रहा और उन्हें सूत भी नहीं मिल सका, जिससे साड़ी तैयार नहीं हो सकी। [55] मुस्लिम परिवेश, आर्थिक अभाव, अज्ञानता और बाल एवं किशोर मनोविज्ञान को उपन्यास के माध्यम से दिखाया गया है।

'जहरबाद' उपन्यास में कथानायक मैं परिवार और समाज के बीच पीसता रहता है उसके लिए वही ज़हरबाद है। लेकिन जिंदगी केवल इतने से नहीं कटती अंधेरे में भी कभी-कभी रोशनी की लौ आती ही है। तीज, त्योहार, विवाह आदि सांस्कृतिक रूपों को भी दिखाया गया है। कथाकार ने ग्रामीण प्रेम-प्रसंग को बहुत सूक्ष्मता से दिखाकर ग्रामीण ताने बाने, टकराव व संघर्ष को दिखाया है। गांवों में लुके छिपे प्रेम प्रसंग चलते हैं। कथानायक 'मैं' को भी इसमें दिलचस्पी बढ़ती है। उसका लोहरी के प्रति

---

[54]यशपाल, झूठा सच, पृ.सं. 471

[55]बिस्मिल्लाह अब्दुल, झीनी-झीनी बीनी चदरिया,पृ.सं.142

विकर्षण और फुलझरि के प्रति गहरा आकर्षण है। एक तरह स्त्री के प्रति आकर्षण का भाव और समाज के प्रति विकर्षण का भाव कथानायक 'मैं' में दिखाई पड़ता है जो उम्र के हिसाब से सहज व स्वाभाविक भी लगता है।

'दन्तकथा' उपन्यास को कुछ आलोचकों ने उपन्यास की श्रेणी में नहीं मानते हैं, लेकिन साम्प्रदायिकता के यथार्थ को व्यक्त करने में उपन्यास की महती भूमिका है। इसका कथानायक एक मुर्गा है जो साम्प्रदायिक ताकतों के खिलाफ शुरू से अन्त तक खड़ा रहता है। वास्तव में मुर्गा आम आदमी का प्रतीक है जो आर्थिक, सामाजिक व साम्प्रदायिक ताकतों से लड़ता है। साम्प्रदायिक ताकतें कैसी होती हैं इसे मुर्गे के माध्यम से दिखाया गया है मुर्गा स्वयं कहता कि –''दरअसल चोंच बांधने की कला में इस मनुष्य जाति का कोई जवाब नहीं। जिस भी प्राणी से इसे अपने खिलाफ बोले जाने का खतरा महसूस होता है। यह उसकी चोंच को पहले ही बांध देता है।''[56] आज आम आदमी की पूँजीवादी व्यवस्था में ठीक उतनी ही हैसियत है जितनी कि इस मुर्गे की है। संकेतों के माध्यम से कथाकार ने बहुत करारा व्यंग्य किया है कि पूँजीवादी वर्ग के लोग केवल आवश्यकता के हिसाब से लोगों को रखते हैं जैसे ही स्वार्थ पूरा हो जाता है आम आदमी को उठाकर फेंक देता है। इस तरह पिछले कई महीनों से यहाँ के बुनकर तबाही के शिकार होते आ रहे हैं। सांप्रदायिकता का आर्थिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से कैसे नकारात्मक प्रभाव पड़ता है इसकी तरफ कथाकार ने गहरा संकेत किया है।

आज का मनुष्य अपने स्वार्थी स्वरूप के कारण कुछ भी करने को तैयार है यहाँ तक की वह अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी अपने स्वार्थ को सिद्ध करना चाहता है। यह मनुष्य का स्वभाव बन चुका है। अब वह हर वस्तु को लाभ के नजरिये से देखता है जहाँ लाभ है वहीं वह जुड़ता है। आजादी के बाद के राजनेताओं ने साम्प्रदायिकता को एक हथियार की तरह प्रयोग किया। आम जनता को कुछ लालच देकर उनका शोषण करते हैं और चुनाव के वक्त ऐसे ही लोगों की वैशाखी से विविध वर्ग

---

[56]बिस्मिल्लाह अब्दुल : दंतकथा, पृ.सं. 33

सम्प्रदायों के बीच दंगे करवाये जाते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण है कि आजादी के बाद शिक्षा व्यवस्था पर जितना ध्यान देना चाहिए था उतना ध्यान दिया नहीं गया और अधिकांश जनता अतार्किक और घोर धार्मिक ही बनी रही। इस संदर्भ में राजकिशोर शर्मा लिखते हैं – ''एक तो यह कि सभी धर्म तर्क -वितर्क और बुद्धि विवेक का विषय न होकर अंधविश्वास और अंधश्रद्धा का विषय बन गए हैं। जिसके फलस्वरूप मामूली सी बात पर भी हमारी भावनाएं भड़क उठती हैं। दूसरा कारण यह है कि सभी धर्म सत्तापीठ के रूप में कार्य करते हैं और उनके बीच सत्ता का द्वन्द्व चलता है। सत्ता की प्रतिस्पर्धी जब दंगों के रूप में प्रकट होती है तो धर्म की असली विसंगति सामने आती है। धर्म आदमी को बेहतर बनाने की बजाए उसे राक्षस बनाने लगता है।''[57] समाज वैज्ञानिक अभय कुमार दुबे ने भी साम्प्रदायिकता के कारणों की तलाश करने की कोशिश की है। यहाँ उनके विचार एकदम स्पष्ट है- ''भारतीय संदर्भ में साम्प्रदायिकता के चार मुख्य रूप हैं हिंदू मुसलमान, सिख और इसाई साम्प्रदायिकता। चूँकि धर्मों का बुनियादी आधार अन्यीकरण के बजाय परस्पर सहिष्णुता के मूल्यों से सम्पन्न होता है, इसलिए साम्प्रदायिक राजनीति धार्मिकता के स्वरूप और अभिव्यक्तियों को बदलने का प्रयास करती है, ताकि धर्म का बेजा इस्तेमाल किया जा सके।''[58]

अब्दुल बिस्मिल्लाह सांप्रदायिकता के हर एक पहलू का उद्घाटन अपने उपन्यासों में किया है। 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में साम्प्रदायिक समस्या को उठाया गया है। उपन्यास में दलित जातियों को हिंदू अराजकतावादी ताकतें किस तरह से अपने लाभ के लिए हिन्दू-हिन्दू कहकर अपनी तरफ मिला लेती हैं इसका यथार्थ अंकन किया गया है। उपन्यास का पात्र पं. सृष्टीनारायण तथा पं. दयाशंकर पांडे को जब यह बात पता चली की एक मुसलमान अली चुड़िहार का लड़का और एक दलित समाज की लड़की जो कि जाति से पासी है का आपस में प्रेम हो गया है तो इन अभिजाव्य वर्गीय लोगों को बहुत नागवार गुजरता है। आज के संवैधानिक युग में कोई भी व्यक्ति किसी भी जाति या धर्म की लड़की से प्रेम सम्बन्ध

[57]राजकिशोर (सं.)-भारतीय मुसलमान : मिथक और यथार्थ, पृ. सं. 71
[58]दुबे कुमार अभय (सं.) – बीच बहस में सेकुलरवाद, पृ.सं. 485

बनाने के लिए स्वतंत्र है। यहाँ परिस्थितियाँ एकदम विपरीत हैं। अत: उन दोनों पण्डितों पर हिन्दुत्व का नशा सवार हो जाता है जिसका परिणाम यह हुआ कि आज तक यह भारत की यह सबसे बड़ी समस्या के रूप में उपस्थित है। आजादी के बाद जब इस पर व्यापक रूप से नियंत्रण स्थापित होना चाहिए था तो इस पर कोई अंकुश न लग सका, यही कारण है कि आजादी के समय भारत-पाकिस्तान बंटवारे के समय हिन्दु-मुस्लिम दो धर्मों के बीच में विश्व का सबसे बड़ा साम्प्रदायिक दंगा हुआ जिसमें लाखों स्त्री -पुरूष व निरीह बच्चों को अपनी जानें गवानी पड़ी।

आज साम्प्रदायिकता शिक्षा, इतिहास, धर्म, भाषा, सभी का इस्तेमाल करती है। उसकी सत्ता की अपना राजनीति एजेंडा है जिसके बदौलत वे सभी लोग सत्ता में पहुँचते हैं। साम्प्रदायिकता देश की एकता, अखण्डता के लिए सबसे बड़ी चुनौती बन गयी है। इसने देश के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। समस्त मानवीय, सामाजिक, पारिवारिक मूल्यों का विघटन शुरू हो गया है। साम्प्रदायिकता बाहर से देखने पर जैसी दिखती है, अन्दर से उससे कहीं और ज्यादा खतरनाक है। मनुष्य–मनुष्य के बीच दूरियां बढ़ती चली जा रही हैं। हर दूसरे व्यक्ति‍ि‍ा को संदेह की नजर से देखा जा रहा है। साम्प्रदायिकता को लेखकों, आलोचकों तथा दलित स्त्री विमर्शकारों ने अलग-अलग नजरिये से देखा है। इस संदर्भ में श्री गीतेश शर्मा का मानना है कि–''साम्प्रदायिकता राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के लिए ही चुनौती नहीं है, बल्कि यह मानवीय मूल्यों एवं संवेदनशीलता के लिए भी एक चुनौती है। साम्प्रदायिक आवेश में इंसान अपनी इंसानी पहचान खो बैठता है। दंगों के दौरान यह बात हमेशा सामने आती हैं।''[59] इसी तरह सांप्रदायिकता के संदर्भ में उन्होंने अन्यत्र लिखा है कि -''शहर में अंग्रेज नस्ल वाले मुर्गे खुशकिस्मत हैं। वे युद्ध की इस परंपरागत कला से प्राय: अनभिज्ञ है, क्योंकि वे लड़ भिड़कर या धूल-मिट्टी में लोट-पोटकर बड़े नहीं होते उनका विकास बिजली की गर्मी से होता है। जीवन यहाँ मनुष्यों द्वारा ईजाद किए गये बौद्धिक विज्ञान में बंद है, प्रकृति की उन्मुक्तता में नहीं ।''[60] आज यह वास्तविक हकीकत है कि

[59]शर्मा गीतेश : साम्प्रदायिकता एवं साम्प्रदायिक दंगे, कलकत्ता, 1985, पृ.सं. 53
[60]वही, 54

साम्प्रदायिकता का स्वरूप भारत के किसी एक धर्म ने नहीं, बल्कि सभी धर्मों में देखने को मिलता है। यह एक तरह का पागलपन और नासमझी की भावना है जिससे समाज कमजोर होता है। इस संदर्भ में श्रीगीतेश शर्मा का विचार भी कुछ इसी तरह से मिलता जुलता है- ''साम्प्रदायिकता अपने आप में कोई रोग नहीं यह उस रोग का लक्षण है जो घोर आर्थिक विषमता और सामाजिक अन्याय पर आधारित व्यवस्था से उत्पन्न होता है। जब आदर्शों एवं सिद्धान्तों को व्यवहार में लागू नहीं किया जाता तब वे खोखले हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में उत्पन्न रिक्तता को जो विकृतियां भरती हैं, उनमें साम्प्रदायिकता प्रमुख हैं।''[61]

'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में कथाकार बिस्मिल्लाह जी ने जीवन का ऐसा कोई कोना नहीं छोड़ा है जहाँ उनकी दृष्टि न गयी हो वो हर नजरिये से इसे यथार्थ स्वरूप में अंकित करते है। भारत जैसे देश में जहाँ विविधता सम्पूर्ण विश्व में सर्वाधिक हो वहाँ साम्प्रदायिकता के मानकों का निर्धारण करना अत्यन्त दुरूह कार्य हैं। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में धर्मान्धता के सभी तथ्यों की गहरी पड़ताल की गयी है। इसका मार्मिक यथार्थ उपन्यास के इस अंश में देखा जा सकता है –''बशीर के घर में नल नहीं है। उनके बच्चे बाहर से पानी लाते हैं पर कर्फ्यू में इसका सवाल ही नहीं उठता। बाहर नगरपालिका का जो नल लगा हुआ है उसकी टोटी टूट गयी है और हमेशा उससे पानी टपकता है। जब से कर्फ्यू लगा है काफी पानी सड़क पर फैलता है। लेकिन उसे कोई भर नहीं सकता। बशीर की बीवी अपनी मकान मालकिन से आटे के साथ-साथ खाना एक भगोना पानी भी मांग लाती है और बच्चों के लिए खाना पकाती है। सारे मजदूर बुनकर बेकार हो गये हैं। जो लोग मजूरी पर बिनते हैं, वे अपने गृहस्थों के यहाँ साड़ी नहीं पहुँचा पा रहे हैं। यही हाल बिक्री पर बिननेवालों का है। रेजा पूरा हो चुका है पर बाहर जाने का सवाल ही नहीं उठता। मतीन की साड़ी जिस दिन पूरी हुई उसी दिन दंगा हो गया। वह भी हाथ पर

[61]शर्मा गितेश : साम्प्रदायिकता एवं सांप्रदयिक दंगे, कलकत्ता 1985 पृ.सं. 18

हाथ धरे बैठा है सभी बुनकर परेशान हैं। अधिकांश घरों में नल नहीं हैं, आटा खत्म हो चुका है भूखो मरने की नौबत आ गयी है लेकिन कर्फ्यू में कोई छूट नहीं हैं।''[62]

इस तरह साम्प्रदायिकता के एक- एक पक्ष को बिस्मिल्लाह जी ने बहुत सूक्ष्मता से अंकन किया है तथा सरकारों को कठघरे में खड़ा किया है कि कैसे संसाधनों का उच्चवर्गीय लोग दुरूपयोग करते हैं, जबकि निम्नवर्गीय गरीब बुनकर समाज का व्यक्ति का सारा कार्य व्यापार ठप पड़ जाते हैं। बशीर, मतीन आदि पात्रों के माध्यम से बेतहाशा गरीबी, निराशा और बेरोजगारी को कथाकार ने स्पष्ट रूप से दिखाया है। 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास के केन्द्र में धर्म और सम्प्रदाय के अलावा जो तीसरा प्रभावी तत्व है अफवाह। उपन्यास में अफवाहों का बाजार गर्म रहता है। उपन्यास का पात्र पं. सृष्टिनारायण पाण्डे की जब मृत्यु हो जाती है तो इसे राजनीतिक रंग का पैजामा पहना दिया जाता है। पूरे गाँव व इलाके में शोर मच जाता है, थाने में रिपोर्ट दर्ज करायी जाती है।

कथाकार ने यहाँ नेताओं के साथ प्रशासनिक तंत्र पर भी गहरा प्रहार किया है। इसी तरह अन्य साम्प्रदायिक दंगो का जिक्र उपन्यास में दिखाई देता है। कथाकार ने व्यापक अर्थ में बनारस के बाहर यानी देश भर की साम्प्रदायिकता और उसके स्वरूप को दिखाया है। इसी तरह जबलपुर में हुए दंगो को 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास के माध्यम से उठाया गया है। जहाँ हिंदुओं और मुस्लिमों के बीच लड़ाई हो गयी है और देश के प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने सामाजिक सद्भाव व भाईचारा को बढ़ाने के लिए कहा कि 'मुसलमान तो अपने ही भाई लोग हैं इसलिए आपसी लड़ाई ठीक नहीं है।' इन दंगो के मूल में एक मुस्लिम लड़के अनवर का एक हिंदू की लड़की उषा से प्रेम हो जाता है। कुछ लोग इसी में लड़ने- झगड़ने लगते हैं। इसी मौके का लाभ उठाकर साम्प्रदायिकता को फैलाने वाले धर्मान्ध लोगों ने इसे साम्प्रदायिकता का रंग दे दिया और प्यार नफरत में और नफरत दंगो के रूप में परिवर्तित हो गया।

[62]अब्दुल बिस्मिल्लाह,झीनी झीनी बीनी चदरिया,पृ.सं. 194

'झीनी-झीनी बिनी चदरिया' में सांप्रदायिक दंगों के जड़ में हिंदू एवं मुसलमानों का अहम अधिक जिम्मेदार है। मुसलमानों ने इमाम चौक बना रखा है, वे वहाँ मोहर्रम में ताजियां बिठाते हैं और हिंदू नहीं चाहते कि ऐसा हो वरना उनकी आस्था पर शायद चोट पहुंचेगी। इस तरह हर साल दशहरे और मोहर्रम के अक्सर पर उस शहर के प्रशासन की परीक्षा भी होती रहती है। उपन्यास के माध्यम से यह तथ्य सामने आता है कि धर्म का जो मूल्य था वो आज बिखर गया है, जो कार्य सामाजिक सद्भाव व सामंजस्य से होने चाहिए उसके लिए अब पुलिस प्रशासन की अनुमति लेनी पड़ रही है। दोनों धर्मों के लोग अभी तक अपने अपने पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं हो पाये हैं। कथाकार ने यहाँ यह साफ साफ संकेत किया है कि यदि दूसरे सम्प्रदाय के व्यक्ति कोई उत्सव मनाते हैं तो यह बहुत खुशी की बात होनी चाहिए हमें उनका सहयोग करना चाहिए ताकि बिखरा हुआ समाज बेहतर सांमजस्य बना सकें, लेकिन यहाँ की स्थितियां ठीक उल्टी है। यहाँ अपनी गली से यदि दूसरे सम्प्रदाय के लोग जूलूस निकालते हैं या अपनी संस्कृति का वे कोई पर्व मनाते हैं तो कार्यक्रम के दौरान ही नफरत व दंगे फैलाये जाते है। कथाकार ने इस उपन्यास के माध्यम से एक गहरा संदेश दिया है।

वास्तव में साम्प्रदायिक दंगो में आम आदमी ही मारा जाता है। एक गरीब बुनकर की परिस्थितियां और परिवेश भी ऐसी नहीं होती जिससे वह कोई उपाय करके ऐसे दंगे-फसाद से बच सके। इन कथनों के माध्यम से कथाकार ने मुस्लिम परिवेश की एक रूप रेखा तैयार की है ताकि पाठक वर्ग एक विशेष परिवेश से जुड़ सके। यह एक यथार्थ है कि अब्दुल बिस्मिल्लाह मुस्लिम परिवार से थे उनके घर की माली हालत ठीक नहीं थी, इस कारण उन्हें तमाम तरह के अभावों का सामना करना पड़ा है जो उपन्यास में जगह-जगह प्रकट भी हुआ है। यही कारण है कि उन्होंने खुद मुस्लिम जीवन को या कहें कि निम्नमध्यवर्गीय मुस्लिम समुदाय की व्यापक समस्या को सामने लाया है। भारतीय समाज का समीकरण इस तरह से निर्मित हुआ है कि कहीं -न-कहीं ये दोनों समाज आपस में टकराते भी हैं। कथाकार ने साम्प्रदायिकदंगो की तह में जाने की कोशिश की है जहाँ पूंजीवाद सत्तावाद व स्वार्थलालुपता हावी है। यही कारण है भारत में जब भी हिन्दु-मुस्लिम दंगे हुए हैं उसमें बहुसंख्यक अनपढ़ मजदूर व निरीह लोग

ही सर्वाधिक मारे गये हैं। कभी भी बड़े वर्ग का व्यक्ति इन दंगो में प्रत्यक्ष रूप से सामने नहीं आता है बल्कि वह पर्दे के पीछे से ही मुख्य भूमिका निभाता रहा है। ऐसे हजारों तथ्यों को कथाकार ने पाठक वर्ग के बीच लाकर एक बौद्धिक चेतना का प्रकाश फैलाया है।

3.4 स्त्री जीवन की समस्याएं

समाज सही रूप में तभी चलता है जब स्त्री व पुरूष दोनों को हर क्षेत्र में समान अवसर दिया जाये और आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया जाये। एक के अभाव में दूसरे का जीवन सार्थक नहीं है और न ही उसकी अर्थवत्ता का कोई मूल्य है। भारतीय समाज की एक सच्चाई यह भी है कि स्त्रियां-पुरूषों के अधीन रही हैं। सदियों से उनके श्रम को नजरअंदाज किया जाता है उनके श्रम को श्रम नहीं माना जाता है, जबकि पूरी दुनिया के श्रम का 60 प्रतिशत महिलाएं करती हैं। सामन्ती पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में सबसे दयनीय स्थिति स्त्रियों की है। सबसे कम भोजन और दवाइयों के आभाव में बहुत कम उम्र में बुढ़ापा आने और मरने को अभिशप्त हैं। साथ ही धर्म का हवाला देकर उनकी पराधीनता को सुरक्षा कवच के रूप में व्याख्यायित किया जाता है। आज समाज में व्यापक बदलाव हो रहे हैं, लेकिन जब बात स्त्री की आती है तो उसे प्राचीन धर्म ग्रन्थों की कसौटी पर रखकर परखा जाता है।

भारतीय समाज व्यवस्था में पुरूषों के अधीन रहकर कार्य करने वाली स्त्री को ही आदर्श स्त्री का नाम दिया गया। भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्री को हमेशा द्वितीयक के रूप में रखा गया। स्त्री जीवन को तटस्थ रहकर कभी मूल्यांकन नहीं किया गया, बल्कि उसे हमेशा किसी न किसी रिश्ते में बांधकर ही देखा गया। इस कारण स्त्री को हमेशा से एक माँ, बहन,पत्नी, बेटी जैसे आदर्शवादी खांचों में रहकर देखा गया। यही कारण है कि भारतीय स्त्री का कभी भी तटस्थ होकर मूल्यांकन नहीं किया जा सका। वैदिक, पौराणिक काल में जिन स्त्रियों का उदाहरण देकर यह तथ्य निकाला जाता है कि वहाँ पर उनकी स्थिति बहुत बेहतर थी, जबकि ऐसा बिल्कुल भी नहीं हैं। उस समय के समाज से बहुसंख्यक स्त्रियों का अशिक्षित

होना यह साबित करता है कि केवल कुछ पढ़ी लिखी उच्च कुलीन खासकर ऋषि एवं राज कन्याओं को दिखाकर प्राचीन भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्रियों की वास्तविक स्थिति पर पर्दा डाल दिया जाता है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में स्त्री जीवन का मार्मिक यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है। तमाम जातियों सम्प्रदायों में बटे हुए समाज में स्त्रियां भी बटी हुई है अत: उनके मुद्दे अलग-अलग रूपों में दिखाई पड़ते हैं। स्त्री जीवन भारतीय समाज में सबसे कष्टकारी रहा है। वे दोहरे शोषण का अभिशाप झेल रही हैं। स्त्री जीवन का दु:ख-दर्द भारतीय लोक मानस में हर जगह विद्यमान है, इसलिए अब्दुल बिस्मिल्लाह ने स्त्री जीवन की पीड़ा को बहुत गहरे रूप में उठाया है। यहाँ प्रेमचंद का यह कथन अत्यन्त सार्थक प्रतीत होता है कि- ‘‘जीवन की धारा में कथानक बहते रहते हैं यह लेखक है विवेक पर निर्भर है कि वह उस धारा में से क्या लेगा और क्या छोड़ देगा उसमें इतना और जोड़ देना जरूरी है कि जीवन की धारा से कथानक छानने के लिए उसमें धंसना पड़ता है। यह छानना पानी में जाल फेंक कर या बंसी डालकर मछली छानने या फसाने जैसा नहीं है, जीवन के प्रवाह से इस प्रकार कथानक का चयन करना सृजन कर्म या रचनात्मक कला का प्रारंभ है।’’[63] बिस्मिल्लाह जी ने ऐसे स्त्री कथानकों को बड़ी सतर्कता एवं प्रामाणिकता के साथ उठाया है। उनके चरित्र व्यक्तिगत न होकर पूरी तरह से समाज से जुड़े हुए हैं। ‘झीनी-झीनी बीनी चदरिया’ में विश्वसनीयता के साथ स्त्री चरित्रों को उभारा गया है जहाँ स्त्रियां संघर्षरत है, लेकिन वे न आर्थिक रूप से, न सामाजिक रूप से और न ही राजनैतिक रूप से स्वतंत्र हैं। उपन्यासकार ने एक प्रतिनिधि स्त्री पात्र अलीमुन के माध्यम से यह दिखाया है कि मुस्लिम स्त्रियां कितने बंधनों में बंधकर जीवन जीने के लिए विवश हैं। इसी कारण उन्हें हर तरह की यातना को सहना पड़ता है। उन्हें बिमारी या किसी भी प्रकार का कोई गंभीर रोग हो जाये तब पर भी उन्हें कोई मोहलत नहीं मिलती है। एक स्त्री का इससे बड़ा जघन्य शोषण और अपराध कोई और नहीं हो सकता। मुस्लिम परिवेश में स्त्री की मार्मिक रुदन को यहाँ अभिव्यक्त किया गया है- ‘‘अलीमुन को टी.वी. हो गयी है,मतीन को मालूम

[63]यादव चंद्रदेव, अब्दुल बिस्मिल्लाह का कथा साहित्य, (लेख-खगेन्द्र ठाकुर) पृ. सं. 2

है लेकिन वह कुछ नहीं कर सकता। घर का जो काम हैं वह बीवी को करना ही होगा। फेटाई-भराई,नरी-ढोटा, हांडी चूली सभी कुछ करना होगा। बिन किये काम चलेगा नहीं और रहना भी होगा पर्दे में। खुली हवा में घूमने का सवाल नहीं। समाज के नियम सत्य हैं उन्हें तोड़ना गुनाह है।''[64] उपरोक्त कथन से यह बात स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री को अपने पांरपरिक कार्यों से कभी भी छुटकारा नहीं मिल पाता है। चाहे उसका जीवन अत्यन्त विषम व दयनीय स्थितियों से ही क्यों न गुजर रहा हो।

भारतीय स्त्री को हर तरह के बंधनों में जकड़ कर रखा गया है। इस कारण वह जब भी कोई सर्जनात्मक कार्य करती है तो परम्परावादी मानसिकता रखने वालों लोगों को नागवार गुजरती है। अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में स्त्री प्रधान चरित्रों की कमी दिखाई है, लेकिन बीच –बीच में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति जरूर दिखाई गयी है। उतनी ही स्त्री चरित्र इस समाज की संरचना को समझने के लिए पर्याप्त हैं। वास्तव में बिस्मिल्लाह जी मुख्यत: मुस्लिम विमर्श के लिए जाने जाते हैं। मुस्लिम समाज की स्त्रियां धर्म के खोखले नैतिकता व दमघोटू माहौल में जीवन गुजर-बसर करती हैं। यह तथ्य भी इनके उपन्यासों में उभर कर आता है। धर्म ने स्त्रियों को अपने अधीन व मर्यादा में रखकर कार्य करने को कहता है, जबकि वही कार्य पुरूषों के लिए कई अवसरों को पैदा करता है। मुस्लिम धर्म पुरूषों को कई शादियां करने की छूट देता है। साथ ही तलाक देने की भी छूट देता है, जबकि धर्म स्त्रियों के लिए यह विकल्प नहीं देता है। अत: जिसके साथ वे ब्याह दी जाती हैं पूरा जीवन उसे उसी के साथ ही गुजारना पड़ता है उनके पास और कोई विकल्प ही नहीं है। यहाँ धर्म की अमानवीय संकीर्ण मानसिकता का यथार्थ दिखाई देता है।

बिस्मिल्लाह ने स्त्री शोषण के विभिन्न रूपों को दिखाया है। नि:संदेह यह बात स्पष्ट है कि स्त्री पितृसत्तात्मक व्यवस्था में जिस तरह से है ठीक उसी तरह से घर-परिवार में शोषित है। पूँजीवादी व्यवस्था में भी उसका शोषण लगातार बना हुआ है। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में ऐसे तमाम दृश्यों को दिखाया

[64]बिस्मिल्लाह अब्दुल, झीनी-झीनी बीनी चंदरिया, राजकमल, पृ. सं. 9

गया है जहाँ पूँजीवादी व्यवस्था व आर्थिक बदहाली में परिवार का जीवन चलाना अत्यन्त कठिन हो जाता है। उपन्यास में जीवन अनुभव को प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। मतीन का बेटा इकबाल पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति लोगों को जागरूक करता है, उन्हें उनके श्रम की कीमतों से अवगत कराता है। आज जिन मजदूरों के श्रम से लाखों- करोड़ों रूपये की कमाई होती है उन्हीं के घरों में अधेरा है। उनकी स्त्रियों का भी हर तरह से शोषण होता है। इसीलिए वर्गीय चेतना से संपन्न उपन्यास का पात्र इकबाल बुनकरों से सवाल करता है- ''सिर्फ करघों की मदद से तकरीबन पच्चीस –तीस करोड़ रूपयों की रेशमी साड़ियाँ हर साल आप लोगों की मेहनत से यहाँ तैयार होती हैं पर आपको क्या मिलता है, बदले में सिर्फ एक लुंगी। भैंस का गोश्त ! और नंग-धडंग जाहिल बच्चे! टी.बी. की बीमारी से छटपटाती हुई औरते। इससे ज्यादा और क्या मिलता।''[65] उपरोक्त उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट है कि टी.बी. जैसी न जाने कितनी बिमारियों से मुस्लिम स्त्रियां त्रस्त हैं, लेकिन न सरकार द्वारा उन्हें कोई स्वास्थगत सेवाएं उपलब्ध हो पाती है और न ही पूँजीवादी शोषणवादी व्यवस्था में उनके श्रम का वास्वविक मूल्य ही मिल पाता है कि वे किसी डॉक्टर को दिखा सकें।

कथाकार ने अपने उपन्यासों के माध्यम से स्त्री शोषण के उस स्वरूप को दिखाया है जो सदियों से समाज में विद्यमान है। यह शोषण हिन्दु -मुस्लिम दोनों समाज की स्त्रियों ने सहा है। यह बात अलग है कि अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों की पृष्ठभूमि में मुस्लिम समुदाय को केन्द्र में रखा है। जहाँ पर्दा प्रथा, बुर्का पहनने जैसे नियमों को पुरूष समाज ज्यादती के साथ लागू करता है। ऐसा न करने पर वह अपना समाज में तौहीनी समझता है। स्त्री की रूप सुन्दरता और देह ही पुरुषों के आकर्षण का केन्द्र रही है। मनुस्मृति, रामचरित मानस, कुरान जैसे धर्मग्रन्थों का प्रभाव समाज में अधिक दिखता है न कि संविधान का। धार्मिक ग्रन्थों में स्त्री का आदर्श रूप नहीं, बल्कि नकारात्मक रूप दिखाई देता है। स्त्रियों को सभी पापों की खान कहकर उनका मजाक बनाया गया है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने ऐसे सभी मिथकों

---

[65]बिस्मिल्लाह अब्दुल, झीनी-झीनी बीनी चंदरिया, राजकमल, पृ. सं. 228

से ऊपर उठकर स्त्री संघर्ष को रेखांकित किया है। भले ही वे स्त्रियां परिस्थिति वश मजबूर नजर आती हैं, लेकिन वे लगातार आजीविका व सामाजिक सुरक्षा के लिए संघर्षरत हैं। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में काशी के कुछ मोहल्लों की कथा है। जहाँ कथाकार ने व्यापक परिवेश को कथानक का आधार बनाया है। बदलते हुए परिवेश में पूँजीवादी व्यवस्था ने कैसे घर तक शोषण को एक हथियार की तरह इस्तेमाल किया है यह इस उपन्यास में दिखाई देता है वहीं दूसरी तरफ वैवाहिक जीवन में स्त्रियों को न जाने कितना संघर्ष करना पड़ता है। न तो परिवार के साथ अपना सामंजस्य बैठा पाती हैं और न ही गहरी आत्मीयता से जुड़ पाती हैं। अत: उनके भीतर ईर्ष्या, द्वेष, कलह आदि की भावनाएं आ जाती हैं। अधिकांश स्त्रियां शोषण को सहते सहते मानसिक रूप से नकारात्मक विचार में जीने लगती हैं।

कथाकार ने झीनी-झीनी बीनी चदरिया के माध्यम से मुस्लिम धर्म व समाज में प्रचलित रूढ़िगत परम्पराओं को एक सिरे से खारिज किया है। धार्मिक कर्मकांडों की आड़ में जो ताना-बाना बुना जाता है उसे कथाकार ने गहरी वैज्ञानिक दृष्टि से खारिज कर दिया है। बिस्मिल्लाह जी खुद एक मुस्लिम समाज से ताल्लुक रखते हैं, लेकिन जहाँ -जहाँ उन्हें रूढिवादिता दिखाई देती है बिना किसी संकोच के वे उस पर निर्मम प्रहार करते हैं। अपने समाज की तो उन्होंने पोल ही खोल दी है, जहाँ कम उम्र में ही बच्चे अपने मामा- मौसी बुआ की लड़की से शारीरिक संबंध बना लेते हैं जबकि इसकी जानकारी होने पर कुछ लोग तो नाराज है जाते हैं, जबकि कुछ परिवार के लोग रजामंदी से शादी विवाह कर देते हैं। कई अर्थों में अब्दुल बिस्मिल्लाह जी राही मासूम रजा की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले कथाकार दिखते हैं। जैसे साम्प्रदायिकता को लेकर उनका स्पष्टमत है कि यह पूंजीवाद की देन है ताकि समाज हमेशा बंटा रहे। आज यह समाज की हकीकत भी है कि इन सब के मूल में राजनीति और पूंजीवाद ही मुख्य कारण हैं।

अब्दुल बिस्मिल्लाह जहाँ मनोवैज्ञानिक चित्रण करते हैं वहाँ वे प्रेमचन्द की परम्परा के कथाकार लगते हैं। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में ऐसे अनेक नारी पात्र हैं जो नियति, अंधश्रद्धा व रूढियों की शिकार हैं। इनमें महत्वपूर्ण चरित्र मतीन की पत्नी अनिबुन का है जो पति के कार्य में तो सहायता देती है। 'केराई-

भराई', 'नरी-ढोटा', 'हाँडी-चूलीं', सभी काम करती है, क्योंकि किये बिना चलेगा नहीं और सब के ऊपर तलाक जो बिरादरी में आम बात है। 'औरत जात की आखिर हैसियत ही क्या है? जब चाहे चूतड़ पर लात मारकर निकाल दो। औरत का और इस्तेमाल ही क्या है ? कतान फेरे, हाँडी-चूली करे, साथ में सोये, बच्चे जने और पाँव दबाए। इनमें से किसी काम में हीला-हवाली करें तो कानून इस्मला का पालन करो और बोल दो कि मैं तुम्हें तलाक देता हूँ। तलाक ! तलाक !! तलाक !!! और पति-पत्नी पुन: साथ साथ रहना चाहे तो 'हलाला' किये बगैर एक साथ नहीं रह सकते।"[66] इन सारे पारिवारिक, सामाजिक दृश्य में जो स्त्री सामने आती है वह रोगग्रस्त, निरीह, अशक्त और लाचार होने के साथ-साथ अपनी भावनाओं और इच्छाओं को दबाए सदियों से शोषित नारी है। अलीमुन, कमरून, नजबुनिया, रेहाना सभी इसकी गवाह हैं जिन्हें रहना भी होगा पर्दे में। खुलीं हवा में घूमने का सवाल नहीं। समाज ने जो नियम इनके ऊपर लाद दिए हैं उससे बाहर नहीं जाया जा सकता है। बिस्मिल्लाह जी ने स्त्री जीवन को पूरी विश्वसनीयता के साथ रेखांकित किया है। लतीफ और कमरून का पुनर्विवाह प्रसंग चित्रित है जहाँ वे सामाजिक धार्मिक नियमों का विरोध करते हैं। ऐसे छोटे-छोटे महत्वपूर्ण बदलाव के उपन्यास में कई जगह दिखाते हैं। मतीन की बीबी अलीमुन टी.बी. से ग्रस्त है, खून की उल्टी कर रही है और मतीन ठीक से इजाल भी नहीं करा पाता। दवा के लिए पैसे नहीं है इसके लिए वह अपना करघा बेच देता है। करघा बेचकर भी मतीन अपनी बीबी को बचा नहीं पाता और आखिरकार अलिमुन दम तोड़ देती है। यही स्त्री जीवन है, खाने के लिए ठीक से खाना नहीं और दवा भी तब की जाती है जब बीमारी अपने चरम पर पहुँच जाय।

उपन्यास की और एक प्रमुख स्त्री पात्र नजबुनिया है। नजबुनिया की हालत तो प्रेमचन्द के हमीदा ईदगाह कहानी के पात्र हामिद से भी बदतर और करूण है। नजबुदिया गाजी मियाँ के मेले में पुराना नकाब पहनकर जाती है। चूड़ी और चोटी भी उसके लिए फैशन की चीज बन गयी है। उस भीड़ में उसका

[66] बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2008). झीनी झीनी बिनी चदरिया, पृष्ठ 132

अकेलापन देखने लायक है। वह तो मेले में शामिल होने गयी है। बुनकरों के जीवन की विडम्बना है कि जो उँगलियाँ अनन्त रेशम-सौन्दर्य को सिरजती हैं, उन्हीं के घर की औरतों एक सस्ती बनारसी साड़ी पहनने को तरसती रहती है और जीवन भर इस लालसा में गुजार देती हैं कि कभी कुछ पैसा हो जाएगा तो उसे खरीद लेंगी। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने गहरी संवेदना के साथ अभावग्रस्त जीवन और स्त्री की एक मामूली सी अदद चाह को जिस रूप में चित्रित किया है वैसा चित्रण अन्यत्र नहीं हुआ है। जीवन की ये छोटी-छोटी इच्छाएँ कभी पूरी नहीं होती। इस उपन्यास में बिस्मिल्लाह जी ने बुनकर परिवार की स्त्रियों के जीवन को जिस गहन संवेदना से अभिव्यक्त किया है ऐसा लगता है कि यह सारी घटना या तो लेखक के घर-परिवार की है या लेखक इस जीवन-संघर्ष का गवाह रहा है।

स्त्रियों को उनकी आजादी से दूर करना अमानवीय घटना है। किसी की देह पर उसका खुद का अधिकार न हो, इससे ज्यादा और विसंगति क्या हो सकती है। लेकिन दुर्भाग्य से भारत में ऐसा सदियों से होता आ रहा है। 'झीनी- झीनी बीनी चदरिया' में एक तरफ लोक का चित्रण है तो वहीं दूसरी तरफ स्त्री पराधीनता के दृष्टान्त दिखाई पड़ते हैं "आज हाजी मियां का खास मेला है। झुण्ड की झुण्ड स्त्रियां नकाब डाले मेले की तरफ चली जा रही हैं। बहुत पुराने जमाने की स्त्रियों ने ममी टाइप की गोल टोपीवाले चारों ओर से बंद बुर्के पहन रखे हैं। टोपी के सामने सिर्फ चन्द छोटे-छोटे सूराख नजर आ रहे हैं जिनके जरिये ये स्त्रियां किसी तरह बाहर की दुनिया को देख सकती हैं। जो स्त्रियां उनसे कम पुराने जमाने की हैं उन्होंने सिर्फ चादरें ओढ़ रक्खी हैं और नये जमाने की स्त्रियों ने नये ढंग के नकाब पहन रखे हैं। लड़कियों ने मैंक्सी टाइप के नये काटवाले नकाब धारण किये है।''[67] मेला ग्रामीण स्त्रियों के लिए बहुत खुशी का पल होता है। आर्थिक तंगी के कारण वे यहाँ जाकर भले ही कुछ न खरीदें, लेकिन जीवन में एक उल्लास भर आता है। बिस्मिल्लाह ने मेले का चित्रण रेणु की तरह किया है। स्त्री शोषण के संदर्भ में डॉ. भीमराव अम्बेडकर का विचार है कि "ये विचार भारत की स्त्रियों के लिए अपमान जनक और उन्हें चोट पहुंचाने वाले है।

[67]बिस्मिल्लाह अब्दुल, झीनी झीनी बीनी चदरिया, पृ. सं. 53

चोट करने वाला इसलिए कि ज्ञान प्राप्त के स्त्री के अधिकार को यहाँ रोका गया है जो कि अन्याय है।''[68]

इसी तरह साहित्यिक दुनिया की बात की जाए स्त्री पराधीनता के संदर्भ में महादेवी वर्मा भी कड़ा रूख अख्तियार करती हैं वे स्त्रियों की स्वतंत्रता में बाधक हर बंदिशों को एक सिरे से खारिज कर देती हैं। वे भारतीय स्त्रियों की तुलना में यूरोप की स्त्रियों को ज्यादा महत्वपूर्ण मानती हैं इसलिए उनका यह कथन यहाँ महत्वपूर्ण प्रतीत होता है –''यूरोप की स्त्रियां चाहे हमारी तरह देवत्व का भार लेकर न घूम रही हो, मानवी अवश्य समझी जाने लगी हैं।''[69] इन कथनों के आलोक में यदि अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों का विश्लेषण करें तो यह तथ्य प्रमुखता से उभरकर सामने आता है कि पुरूषों ने स्त्रियों के उन सभी संसाधनों व अधिकारों का हनन किया है जो मूल रूप से उन्हें मिलना चाहिए था। इनके उपन्यासों में अत्यन्त दयनीय सोचनीय शोषित स्त्रियां आती हैं जो विरोध तो करती हैं मगर हालात के सामने घुटने टेक देती हैं। वास्तव में आज स्त्रियों के प्रति सहानुभूति दिखाने का दौर खत्म हो चुका है। अब वह समय आया है जब स्त्रियों को अपने अधिकारों को छीन लेना होगा तभी वे एक अच्छे और सभ्य समाज का निर्माण कर सकेंगी।

आज स्त्री सशक्त होने की राह पर है, लेकिन कथाकार ने इन दबी कुचली मुस्लिम स्त्रियों का जिक्र यथार्थ रूप में किया है जो यह प्रदर्शित करता है कि अभी भी भारतीय समाज में कहीं न कही, निम्न वर्गीय समाज और इसके साथ ही साथ उच्चवर्गीय समाज में स्त्रियों का शोषण लगातार किया जा रहा है। स्त्री को दबाकर रखने की प्रवृत्ति पुरूषों में सदैव से रही है। पुरूष कभी भी स्त्री के अधिकारों को स्वीकार नहीं कर पाता है। इस संदर्भ में अरविंद जैन का यह कथन समीचित प्रतीत होता है जब वे कहते हैं कि –''दुनिया के 98 प्रतिशत पूंजी पर पुरूषों का कब्जा है। पुरूषों के बराबर आर्थिक राजनीतिक

[68]मालती, डॉ. के.एम.स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य, पृ.सं. 50

[69]वर्मा, महादेवी, श्रृंखला की कड़ियाँ, पृ.सं. 83

सत्ता पाने में औरतों को अभी हजार वर्ष लगेंगे।''[70] स्त्री-पुरूष में जैविक भिन्नता रही है, लेकिन दोनों प्रकृति की सन्ताने हैं फिर इतना भेदभाव रखना कहां का न्याय है।

'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में लड़की की शादी को बोझ की तरह दिखाया गया है। भारतीय समाज में लड़की की शादी बिना दहेज के संभव नहीं हैं, कम आर्थिक हैसियत हो तो कम पढ़ा-लिखा लड़का ही मिलेगा। यदि दहेज ज्यादा दिये तो लड़का सरकारी जॉब या अच्छे खानदान का मिलेगा जिसके पास धन दौलत की कोई कमी न हो। उपन्यासकार ने यहाँ कोई क्रान्तिकारी बात न कहकर उस सामाजिक यथार्थ को दिखाया है जो भारतीय समाज में मौजूद है- ''पं. रामवृक्ष पाण्डे अपनी अमराई में लेटे हुए थे और विचारमग्न थे। अपनी आखिरी कन्या का विवाह करके वे एक भारी कर्त्तव्य भार से मुक्त हो गए थे। वर भी अच्छा मिल गया था। बी.ए. पास और सरकारी नौकरी से लगा हुआ था।''[71] इस कथन से स्पष्ट है कि पितृसत्तात्मक समाज में लड़की का पिता होना बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने उपन्यासों के माध्यम से स्त्री संघर्ष के विभिन्न रूप को प्रस्तुत किया है।

नारी शोषण का अत्यंत भयानक रूप उपन्यास 'जहरबाद' में मिलता है। 'जहरबाद' के प्रमुख पात्र 'मैं' की माँ पर पिता द्वारा लगातार अत्याचार किया जाता है जिसे बालक मैं एक मर्मांतक पीड़ा से होकर गुजरता है। उसके माता-पिता का तलाक हो। तोहमत उस संघर्षशील माँ पर यह लगाई जाती है कि वह चरित्रहीन है। अपनी माँ का वर्णन 'मैं' जिस तरह से उपन्यास में बयाँ करता है उससे यह स्पष्ट होता है कि चरित्रहीनता का आरोप लगाकर एक स्त्री को समाज द्वारा कैसे बहिष्कृत किया जाता है। कथानायक 'मैं' के अब्बा अम्मा के ऊपर चरित्रहीनता का आरोप लगाते हुए कहते हैं-"जा वहीं अपने यार के साथ रह। इस घर में तेरे लिए कोई जगह नहीं। कमीनी। लुच्ची। कुतिया।"[72] चूड़ी बेचकर घर चलाने वाली माँ को पिता पीटते हैं और टोपरा उठाकर लगड़ाते हुए बाहर चली जाती हैं। कोई स्त्री किसी गैर-मर्द से बात

---

[70]मालती, डॉ. के. एम. स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य, पृ.सं. 61

[71]बिस्मिल्लाह, अब्दुल, मुखड़ा क्या देखे, पृ.सं. 27

[72] बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2016).जहरबाद. पृष्ठ 86

कर ले जो यह मर्दों को नागवार गुजरती है और इसके लिए पुरुषों के पास एक हथियार है कि वह स्त्री चरित्रहीन बताए और यदि स्त्री इसका विरोध करे तो उसकी पिटाई करे। इस उपन्यास में स्त्री जीवन की पीड़ा को बहुत ही मर्मांतक रूप में चित्रित किया गया है।

'कुठाँव' उपन्यास में बिस्मिल्लाह जी ने इद्दन और सितारा को केंद्रीय पात्र बनाया है। मेहतर जाति से संबंध रखने वाली ये स्त्रियाँ मुखर हैं, लेकिन पितृसत्ता के आगे लाचार हैं। उन्मुक्त जीवन की आकांक्षा लिए सितरा नईम को पसंद करती है, लेकिन नईम के लिए जाति बाधक है। वह सितारा को चाहता है उससे विवाह भी करना चाहता है, लेकिन अपने पिता के मर्जी के खिलाफ नहीं का सकता। स्त्री की स्थिति समाज में इतनी दयनीय क्यों हैं? इसके पीछे क्या कारण हैं? आज भी स्त्री अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत है जैसे सवालों का जवाब बिस्मिल्लाह जी ने इस उपन्यास में देने का प्रयास किया है। स्त्री के साथ सबसे बड़ी चीज यह समाज जोड़ता है इज्जत। और इज्जत की बागडोर पुरुष के हाथ में है। जब तक इस बागडोर से स्त्री का छुटकारा नहीं होता तब उसका शोषण इज्जत के नाम पर होता रहेगा। कभी घर के अंदर तो कभी के बाहर भी।

इस उपन्यास में उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग की स्त्री पात्रों का चित्रण हुआ है। उच्च वर्ग की स्त्री के पास सब कुछ है बढ़िया घर है, शिक्षित है, धन-संपत्ति है, खाने-पीने की कोई कमी नहीं है। वही दूसरी तरफ मेहतर जाति की इद्दन और उसकी बेटी सितारा है। न तो रहने के लिए ठीक-ठाक घर है न खाने के लिए कुछ विशेष। वह जितना मेहनत मजदूरी करके कमाती है उसी से गुजारा होता है। सितारा के स्कूल की फीस भरने के लिए भी पैसा नहीं है। उपन्यासकार इद्दन के जीवन का चित्रण कुछ इस तरह कराते हैं। "कमाई के एवज में उसे रोटियाँ मिलती थी। चार ताजा रोटियाँ तो तय ही थीं चाहे ज्वार की ही क्यों न हों, कभी-कभी गेंहू की बासी रोटिया भी मिल जाती थी। बासी रोटिया ही नहीं, भात, दाल, तरकारी और कभी-कभी तो गोस्त का बासी सालन भी मिल जाता था।"[73] यहाँ लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया

[73] बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2019) कुठाँव, पृष्ठ 104

है कि उच्च वर्ग के स्त्री का शोषण केवल पितृसत्तात्मक व्यवस्था के तहत ही होगा, जबकि इद्दन जैसी स्त्री का शोषण आर्थिक रूप में भी होता है। ऐसी स्त्रियों को सबसे अधिक संघर्ष खाने के लिए करना पड़ता है। रोज कामना रोज खाना। यदि किसी दिन काम नसीब नहीं हुआ तो खाने के लाले पड़ जाते हैं। इद्दन घरों में झाड़ू-पोछा का काम करती करती। इतने भर से परिवार का गुजारा नहीं होता है तो इद्दन का पति उसे मैला ढोने के लिए भी कहता है। इद्दन यह काम करने से मना करती है तो उसका पति कहता है- "ऐसा ही था तो हेला के घर में पैदा क्यों हुई?"[74] इसके प्रतिउत्तर में इद्दन कहती है- पैदा तो हमारे बच्चे भी होंगे, मगर क्या हमारे बच्चे भी लोगों के गू-मूत साफ करेंगे? मैं तो अपने बच्चों को यह सब नहीं करने दूँगी।"[75] इद्दन का यह प्रतिकार उसके प्रतिरोधी चेतना को स्पष्ट करता है,लेकिन इसके लिए उसे अपने पति से प्रताड़ित भी होना पड़ता है। इद्दन अपने बच्चों को पढ़ा-लिखकर इस काबिल बनाना चाहती है कि वह अपने पैरों पर खड़ा हो सकें और समाज में उन्हें हेय दृष्टि से न देखा जाय।

इद्दन सितारा को मजबूर नहीं मजबूत बनाना चाहती हैं और इसके लिए वह कोई कोई भी कदम उठाने को तैयार हैं। ठाकुर गजेन्द्र सिंह के संपर्क में आने के उपरांत इनकी आर्थिक तंगी थोड़ी ठीक होती है। अपने राजनीतिक ओहदे और रसुक के बल पर गजेन्द्र सिंह सितारा को हाईस्कूल की परीक्षा पास करवाने की जिम्मेदारी लेते हैं। इसके एवज में वह सितारा का शारीरिक शोषण भी करते हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इस उपन्यास में 'स्त्री यौनिकता' को प्रश्नांकित करते हैं। क्योंकि इद्दन अपनी गरीबी से बाहर निकलने लिए यौनिकता का सहारा लेती है। सितारा का संबंध नईम से है इस बात को इद्दन भली भाँति जानती हैं, वह इसका विरोध कारण के बजाय समर्थन करती है। इद्दन जिस समस्या से मुक्ति चाहती थी वह उसमें और गहरे धँसती चली गई। यौन संबंधों का यह क्रम उसकी बेटी तक जा पहुँचा। ठाकुर गजेन्द्र सिंह सितारा के साथ ज़ोर जबरदस्ती करने लगे हैं। इस बात का पता जब हुमा को चलता है तो वह ऐसे पुरुषों और व्यवस्था को धिक्कारती है। " हरमजादे, कमज़ात, सूअर के बच्चे ...नईम मियाँ और

---

[74] बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2019) कुठाँव, पृष्ठ 139

[75] बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2019) कुठाँव, पृष्ठ 139

ठाकुर... मुसलमान हो या हिंदू, सब साले एक जैसे हैं। लड़की और वो भी नीची जात की उनकी नजर में तो वह गोस्त का एक टुकड़ा भर है। बस।"[76] हुमा पुरुषों की मानसिकता को समझती है। वह जानती है कि पुरुषों के लिए स्त्री केवल उपभोग की वस्तु है। वह चाहे किसी जात धर्म क्यों न हो। वह स्त्री को एक वस्तु ही समझता है जैसे उसका काम निकल जाता है वह उसे निकाल बाहर कर देता है। पुरुषों के लिए स्त्री का दैहिक शोषण करते समय जाति मायने नहीं रखता। जाति तो रोटी-बेटी के संबंध में सबसे आगे आता है। हुमा जाति और सामन्ती पुरुषों के चरित्र के बारे में कहती हैं-" जहाँ तक मेरी परेशानी का सवाल है तो साफ बता दूँ कि जातिवाद की असल सजा औरत को ही भुगतानी पड़ती है। हिंदुओं में कोई भी ब्राह्मण या ठाकुर यह कहता हुआ मिल जाएगा कि मैंने गाँव की किसी चमारिन, पसनिया, खटकिन को नहीं छोड़ा है उसी त्राह किसी खाँ साहब या किसी सैयद साहब के साहबजादे यह कहते हुए आपको आसानी से मिल जाएँगे कि मैंने अपने इलाक़े की किसी जुलाहिन, चुड़िहाइन या धोबिन को नहीं छोड़ा है। सब मेरी जांघों के नीचे से निकलकर अपनी सुहागरात मनाने गई हैं।"[77] इस उपन्यास में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इद्दन, सितारा और हुमा जैसे पात्रों के माध्यम से स्त्री-जीवन के संघर्ष को दिखाया है। इद्दन ने यौनिकता का सहारा लेकर ज़लालत और जहालत से मुक्त होने का प्रयास किया, लेकिन वह इसके दलदल में ही फँसती चली गई। लेखक ने इशारा किया है कि स्त्री मुक्ति का रास्ता इतना आसान नहीं है उसकी राह बहुत मुश्किल है। स्त्री को एक ही साथ कई मोर्चे पर लड़ना पड़ता है। इस लड़ाई में उसका साथ देने वाला कोई नहीं है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के अधिकांश उपन्यासों में मुस्लिम समाज का चित्रण है हुआ है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि पात्र भी मुस्लिम ही होंगे। अधिकांश स्त्री चरित्र पात्र मुस्लिम हैं। स्त्री जीवन के सामने पुरूष के मुकाबले कई गुना ज्यादा समस्याएं एवं चुनौतियां। मुस्लिम समाज में भी जाति व्यवस्था कायम है। इन स्त्रियों को जाति एवं पितृसत्ता से दोहरी लड़ाई लड़नी पड़ती है। बिस्मिल्लाह ने जिन स्त्री

[76] बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2019) कुठाँव, पृष्ठ 172

[77] बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2019) कुठाँव, पृष्ठ 31

पात्रों को अपने उपन्यास के केंद्र में रखा है उन्हें गरीबी, आर्थिक तंगी, जातिगत भेदभाव एवं पितृसत्तात्मक विचारों से संघर्ष करना पड़ता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह को ऐसी शोषित स्त्रियों के प्रति सहानुभूति है। उन्होंने अपनी जिंदगी में ऐसी स्त्रियों को संघर्ष करते देखा है। आर्थिक तंगी यानी भूख के आगे सब कुछ बिखर जाता है। इसके कारण ही स्त्री को घर में हिंसा भी झेलनी पड़ती है। अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में पुरूष स्त्री का हर तरीके से शोषण करता हुआ दिखाई देता है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों से गुजरते हुए यह बात स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यासों का कथ्य कल्पना नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ की वह ऊबड़-खाबड़ भूमि है जहाँ जीवन के तमाम संघर्ष एवं जद्दोजहद मौजूद है। इनके उपन्यासों का केंद्रीय कथ्य आमजन का जीवन-संघर्ष है। वह चाहे 'झीनी झीनी बिनी चदरिया' में बनारस के बुनकरों की दयनीय, अभावग्रस्त एवं आर्थिक तंगी में बीत रहा है जीवन हो या 'जहरबाद' के कथानायक 'मैं' के परिवार का चित्रण हो जो गरीबी रेखा से भी नीचे जीवन यापन करने को मजबूर है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने इन उपन्यासों के माध्यम से भारतीय ग्रामीण जीवन खासकर निम्न मुस्लिम समाज का जीवन एवं बनारस के बुनकरों के जीवन को आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। बिस्मिल्लाह ने मार्क्सवादी वैचारिक दृष्टि के माध्यम से इन सभी तत्वों का विश्लेषण किया है और शोषण के केंद्र में इन्हीं को जिम्मेदार ठहराया है। लेखक समतामूलक समाज की उम्मीद करता है। वह चाहता कि सभी को अपने हिस्से की हवा, पानी एवं भोजन मिल सके।

3.5 बदलते जीवन मूल्य

भारतीय संस्कृति का एक खास महत्व है, वह महत्व इस बात में है कि भारतीय संस्कृति ने पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक एवं आर्थिक मूल्यों को बचाकर रखा है। लेकिन आधुनिकता के आगमन से इस संस्कृति व मूल्यों में व्यापक बदलाव हुआ है। आज टूटते जीवन मूल्यों की वजह से पूरा सामाजिक ढांचा बदल गया है। अब्दुल बिस्मिल्लाह के ज़हरबाद , झीनी-झीनी बीनी चदरिया, दंतकथा मुखडा क्या देखे, रावी खिलता है तथा समर शेष है उपन्यासों में यह बदलता हुआ रूप विभिन्न स्वरूपों में दिखाई देता है। उनके उपन्यासों पर बात करने से पूर्व मूल्य को समझने का प्रयास करेंगे फिर उपन्यासों में किस तरह का मूल्यगत बदलाव आया है इसका स्वरूप देखा जायेगा। संस्कृत कोश में मूल्य का अर्थ इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है – ''मूल्य शब्द की उत्पत्ति मूल+यत से मानी गयी है जिसका अर्थ है उखाड़ देने योग्य तथा मोल लेने योग्य।''[78] इसी तरह हिंदी कोश में –''मूल्य 'मुद्रा'के रूप में उतना धन जो कोई चीज़ क्रय करने के लिए बदले में किसी को देनी पड़ती हैं।''[79] इसी तरह विश्वहिंदी कोश में मुल्य को मुद्रा के अलग मानकर देखागया है -''मूल्य के स्वरूप, प्रकार और उसकी तात्विक सत्ता का अध्ययन' मूल्य-मीमांसा' नामक अंग्रेजी शब्द एग्जिथोलाजी का हिंदी रूपान्तर है।''[80]

जबकि भारतीय वांङ्:मय या प्राचीन साहित्य में जीवन मूल्यों का महत्व स्वीकार किया जाता रहा है । इस संदर्भ में भर्तृहरि का यह कथन बहुत महत्वपूर्ण है –''जिन व्यक्तियों में विद्या दान, ज्ञान, शील, गुण, धर्म आदि नैतिक गुण नहीं होते हैं, लोग धरती पर बोझ स्वरूप हैं और मनुष्य के रूप में पशु ही हैं।''[81] इस तरह मूल्य को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में जोड़कर देखा गया। जबकि मनोविज्ञान में मूल्य का अर्थ मनुष्य के अस्तित्व संबंधी व्यक्तियों के मूल में माना गया है । समाज में मूल्यों के अभाव में नैतिकता

---

[78] आपटे वामन शिवराम, संस्कृत हिंदी कोश, पृ.सं. 812

[79] वर्मा, रामचन्द्र, मानक हिंदी कोश भाग-4, पृ.सं. 404

[80] तिवारी, रामप्रसाद, विश्व हिंदी कोश, पृ.सं. 365

[81] भतृहरी, नीतिशतक, श्लोक, पृ.सं. 13

का ह्रास होता है। बिना सामाजिक मूल्य के अच्छे समाज की कल्पना नहीं की जा सकती हैं। सामाजिक मूल्यों द्वारा ही व्यक्ति अपना जीवन निर्दिष्ट की तरफ आगे बढ़ाता है। मूल्य एक ऐसा नैतिक आदर्श है जो किसी एक विशेष व्यक्ति को नहीं बल्कि समूचे समाज को अपनाना पड़ता है। मूल्यों में परिवर्तन से समाज के व्यवहार में परिवर्तन होता है। भारतीय संदर्भ में बात की जाये तो यहाँ मूल्य एक तरह का समन्वय भी है क्योंकि यहा विश्व की सभी संस्कृतियां विद्यमान हैं। इस प्रकार समाज मूल्यों का प्रभाव केन्द्र होता है। मूल्य व्यक्ति के व्यक्तित्व को हर तरह से मूल्यवान बनाता है। मूल्यका निर्माण समय के अनुसार बदलता रहता है यह भी देश काल एवं परिस्थितियों के अनुरूप बदलाव खुद में लाता है।

यही कारण है कि भारत में कुछ मूल्य तो शाश्वत माने गये हैं जबकि कुछ मूल्य सदैव समय के अनुरूप रहे है। प्रत्येक नया युग अपने लिए नए सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को बनाता है परिस्थितियों के अनुरूप प्राचीन मूल्य अप्रासंगिक भी होते हैं प्रत्येक युग व समाज की अपनी इच्छाओं एवं अभिरूचियों के अनुरूप मूल्यों का निर्माण व निर्धारण होता रहा है। अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में हिन्दू व मुस्लिम संस्कृति व उसके मूल्यों में जो बिखराव आया है उस पूँजीवादी व्यवस्था का यथार्थ प्रस्तुत किया गया है। 'समर शेष है' उपन्यास में मूल्य विघटन का यथार्थ रूप दिखाई देता है। उपन्यास का कथानायक खुद ही अपनी कथा कहता है, जिसे कथाकार ने 'मैं' शैली में लिया है। 'मैं' के माध्यम से ही वे समस्त जीवन मूल्य प्रस्तुत हुए हैं, जो जीवन के लिए बहुत आवश्यक होते हैं। कथानायक 'मैं' के सम्पूर्ण परिवेश रहन-सहन, खान-पान, शिक्षा, मित्रता एवं विषय परिस्थितियों में बनाये रखने वाले हौसले को दिखाया गया है जो उसे भीतर से प्रेरित करता है। उपन्यास अपने प्रारंभिक पृष्ठ में ही मूल्यों का एक बेहतरीन उदाहरण प्रस्तुत करता है जो यह दिखाता है कि हमारे पूर्वज कितने कर्मठ व अपनी जुबान के पक्के हुआ करते थे-इलाहाबाद के एक विशेष अंचल बलापुर गाँव का कथानक कुछ इस प्रकार दिखाई देता है –''उस जमाने में कोई मुसलमान बादशाह इस क्षेत्र में आया तो उसने कहा कि अगर दादूराम मेरे जिस्म को तलवार से छू दें तो उन्हें मैं कुछ गाँव बसाने की इजाजत दे दूँगा।''

दादूराम ने वह गर्त पूरी कर दी और फलस्वरूप छ: गाँव बसाये गए। उनमें से तीन दादूराम ने बसाए और तीन बालाराम ने कहा जाता है कि बादशाह का पान खाने के कारण दादूराम तो मुसलमान हो गए पर बालाराम हिंदू बने रहे। बालाराम ने जो तीन गाँव बसाए उनमें प्रमुख था बालापुर, जो बिगड़कर अब बलापुर हो गया है।''[82] उपरोक्त कथनों से यह तथ्य सामने आता है कि मूल्यगत कारणों की वजह से ही आज का बलापुर गाँव दान में मिला था। भारत में जातिव्यवस्था एक सच्चाई है इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। परम्परावादी मानसिकता रखने वालों के लिए वह भी एक मूल्य हो सकता है और इसे तोड़ने वाले व्यक्ति के साथ पूरा गाँव ही उससे नाता तोड़ लेता है। कथाकार ने ऐसी मूल्यगत व्यवस्था को जातिव्यवस्था से जोड़कर देखा है- ''बालाराम ने इस गाँव में विभिन्न जातियाँ बसाई। ब्राह्मण, लाला, अहीर, लुहार, चमार, मुसलमान, पारसी, ठाकुर, भुंजवा, बरई, भाट आदि। लेकिन वेश्या के लिए अनुमति नहीं दी।''[83] वेश्या को अनुमति क्यों नहीं प्रदान की गयी? क्या वह मनुष्य नहीं है? ऐसा इसलिए कि वेश्या के रहने से उनकी नज़र में समाज भ्रष्ट हो उठेगा। अत: यहाँ समाज पर निषेधात्मक कोई भी प्रभाव न पड़े इसलिए ऐसा किया गया जान पड़ता है। जाति व्यवस्था को तोड़ना या अलग जाति की स्त्री के साथ संबंध रखने वाले व्यक्ति को समाज द्वारा दंडित किये जाने का यथार्थ भी इस उपन्यास में दिखाई देता है जहाँ एक ठाकुर जाति के व्यक्ति ने एक छोटी माने जाने वाली जाति पासी की एक स्त्री से संबंध बना लिया था इसलिए ठाकुर समाज ने उस ठाकुर को अपनी जाति से बहिष्कृत कर दिया - ''अब सभी जातियाँ तो ज्यों-की त्यों हैं, पर ठाकुर ने चूँकि एक पासिन को रख लिया था और फलस्वरूप वह पासी हो गया था, इसलिए ठाकुरों के रूप में उसका वंश नहीं चला।''[84] इस तरह मूल्यगत स्वरूप किस तरह से समाज पर हावी है कथाकार ने इसका बेहतरीन रूप दिखाया है। आज भी भारतीय गाँव ज्यादा नहीं बदले हैं, वे तकनीक और विज्ञान तो एकदम अत्याधुनिक प्रयोग करते है लेकिन उनकी सोच आस्थापरक, मूल्यपरक व परम्परापरक है। एक स्त्री के साथ प्रेम करना संवैधानिक दृष्टि से कोई गलत

[82] बिस्मिल्लाह अब्दुल, समर शेष है, पृ.सं. 6
[83] बिस्मिल्लाह अब्दुल, समर शेष है, पृ.सं. 6
[84] वहीं, पृ.सं. 6

कार्य नहीं है लेकिन वहीं सामाजिक दृष्टि से देखा जाय तो पूरा गाँव-जमात ही इसके विरोध में आकर खड़ा हो जाता है कि दूसरी जाति से शादी करने की इसकी हिम्मत कैसे हुई? इसी तरह आधुनिकता ने व्यक्ति को भीड़ में भी तनहा और अकेला बना दिया है जहाँ व्यक्ति के आस-पास तो हजारों-लाखों लोग रहते है लेकिन, कोई किसी से मतलब नहीं रखता, बात भी नहीं करता है। ऐसा क्या बदलाव हुआ जिससे आदमी आदमी के बीच में संवाद की कमी होती जा रही है। वास्तव में इन सबके मूल में पूँजीवादी मूल्य हैं जो आज समाज से ज्यादा पैसे को महत्व देते हैं। 'समर शेष है' उपन्यास में अकेलेपन के घुटन व संत्रास का एक सूक्ष्म अंकन दिखाई पड़ता है – ''अकेलापन क्या होता है, इसका ज्ञान मुझे कब्रिस्तान से लौटने के बाद हुआ। मुर्दे में भी संबंध की कशिश होती है, यह मैं नहीं जानता था और यह भी मुझे नहीं मालूम था कि अकेलापन एक ऐसी मन:स्थति का नाम है जो आदमी की चेतना को कुंद कर देती है।''[85]

इन कथनों से आज के मनुष्य जीवन के एकाकीपन को समझा जा सकता है। ऐसी परिस्थितियों का जन्म एक दिन में नहीं हुआ है बल्कि काफी लम्बे समय बाद आधुनिक उत्तरआधुनिक युग में मनुष्य के भीतर यह एकाकीपन का भाव आया है। इस संदर्भ में कुमार विमल का यह कथन समीचीन लगता है- ''नए मूल्यों का जन्म अल्पकाल में नहीं होता यह प्रक्रिया एक लम्बे अरसे तक चलती है, तब जाकर पुराने मूल्य अपना संदर्भ बदलते हैं तथा मूल्यों का संघर्ष सदैव दृष्टिकोण के चुनाव की समस्या द्वारा उद्भूत होता है।''[86]

इसी तरह मूल्यों का क्षरण 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में भी दिखाई देता है जहाँ पूँजीवादी सभ्यता ने सभी मुस्लिम मूल्यों; आपसी भाईचारा, सौहार्द्र एवं नैतिकता आदि को नष्ट कर दिया है। पूँजीवादी व्यवस्था ने नैतिकता का क्षरण इस कदर किया है कि आज मुस्लिम ही मुस्लिम का इतना अधिक शोषण करने पर उतावला है जितना अन्य धर्म का व्यक्ति भी नहीं कर सकता है।

---

[85] वहीं, पृ.सं. 23

[86] विमल, डॉ. कुमार

आजादी के बाद मूल्यों का क्षरण और तीव्र गति से प्रारम्भ हुआ है। 1960-70 के दशक से हिन्दू, मुस्लिम, सिख, इसाई आदि के सांस्कृतिक स्वरूप में तीव्र गति से परिवर्तन आया है। यह परिवर्तन सामाजिक पारिवारिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं नैतिक आदि रूपों में फैला हुआ है। संयुक्त परिवार के तीव्र गति से टूटने से एकल परिवार की अवधारणा सामने आयी है यही कारण है कि समाज में बदलाव के एक युग का सूत्रपात हुआ जो भारत में इसके पहले कभी नहीं था। इस तरह भारतीय समाज पर पश्चिमी समाज का सीधा-सीधा प्रभाव दिखाई देता है। युवाओं में प्रेम सम्बन्ध को लेकर खास उत्साह दिखाई पड़ने लगा। एक तरह से परम्परावादी भारतीय मूल्य और आधुनिकतावादी मूल्यों की टकराहट दिखाई देती है। उपन्यास इसका यथार्थ बहुत संजीदगी के साथ प्रस्तुत करता है- ''चुनार का मेला बीत गया है और शादी-ब्याह शुरू हो गये है। शरफुद्दीन की शादी भी हो रही है। शरफुद्दीनवा ने हालांकि प्रेम विवाह करना चाहा था और इसके लिए उसने बी.एच.यू. की एक लड़की देख भी रखी थी, पर हाजी अमीरूल्ला ने उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया 'हाजी बलिउल्ला क्या सोचेंगे यार।''[87] इस तरह उपन्यास में दो पीढ़ियों के सोच व मूल्य आपस में टकराते हैं लेकिन पुरानी पीढ़ी की परम्परा ही अंत तक यहाँ हावी रही। सरफुद्दीन चाहकर भी बी.एच.यू. में पढ़ने वाली लड़की से प्रेम विवाह नहीं कर पाता है क्योंकि यह बात उसके घरवालों के परम्परा व उनके मूल्यों के विपरीत है।

अजनबीपन आधुनिकता की एक प्रमुख विशेषता है। व्यक्ति भीड़ में भी अकेला महसूस करता है जबकि उसी शहर में उनके जैसे हजारों लोग उपस्थित हैं। मगर संवाद किसी से नहीं हो पाता है क्योंकि कोई भी यहाँ का निवासी नहीं है बल्कि देश के अलग-अलग क्षेत्रों से लोग आये हुए है उपन्यास में इसका धार्मिक स्वरूप दिखाई देता है- ''भोला नया-नया आया है बनारस में काम की तलाश में। दो दिन पहले मतीन से मुलाकात हुई तो दोस्ती हो गयी। कोई दूसरा वक्त होता तो शायद मतीन कुछ हालचाल पूछता भोला का लेकिन इस वक्त उसका मन उदास है। वह काम में लगा हुआ हैं…मतीन उसी

[87] बिस्मिल्लाह अब्दुल, झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृ.सं. 125

तरह अपना लाग बिनता रहता है।''[88] कथाकार ने आज के समय में लगातार गिरते मूल्यबोध को सामने लाया है जिसके कारण समाज एक तरफ जहाँ संविधान के कारण समभाव वाले दृष्टिकोण में आ रहा है वहीं नैतिक मूल्यों के पतन से अराजकता, हत्या, आगजनी जैसी घटनाएं आम होती जा रही हैं। प्राचीन शिक्षा व्यवस्था और आज की शिक्षा व्यवस्था एवं वहाँ की अराजकता का एक दृष्टान्त कथाकार नें यहाँ प्रस्तुत किया है –''इस बीच एक ऐसी घटना घट गयी जिस पर स्वयं हाजी अमीरूल्ला को भी विश्वास नहीं हुआ। बी.एच.यू. के एक छात्रनेता का मर्डर हो गया और शरफुद्दीन गिरफ्तार कर लिया गया।''[89] वास्तव में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने समय के उस यथार्थ को दिखाया है जो सचमुच आज के समाज में घटित हो रहा है। कथाकार के इस कथन की पुष्टि आलोचक ज्योतिष जोशी के इन कथनों से और भी ज्यादा प्रमाणिक हो जाती है। उनका मानना है कि, ''उपन्यास अपने समय की नैतिकता से दूर नहीं हो सकता। उपन्यासकार अगर नैतिक समस्याओं से आखें चुराता है तो मानना चाहिए कि वह अपने दायित्व से मुँह मोड़ रहा है ...इस दृष्टि से हिंदी उपन्यास की भूमिका कुछ अपवादों को छोड़कर उल्लेखनीय रही है। अपने समय की राजनीति, समाजिक संघर्ष, संक्रमण, उपभोक्तावाद और पारिवारिक विघटनों को केन्द्र में रखकर अनेक उपन्यास लिखे गये और चर्चित भी हुए।''[90] उपरोक्त कथनों की गहरी सभ्यता अब्दुल बिस्मिल्ला के उपन्यासों में देखी जा सकती है। उनके उपन्यासों में यह भी दिखाई देता है कि मूल्यों के क्षरण में पूंजीवाद की भूमिका कैसे महत्वपूर्ण हो जाती है। पूँजीवादी लोग अपने अनुरूप मूल्यों को गढ़ते हैं जिसमें संवेदना का स्थान अर्थ ले लेता है और मानवीय संबंधों में भारी गिरावट होती है। उपन्यस इसकी तरफ संकेत करता है-''बुनकरों ने सरकार से मांग की है कि वास्तविक गरीब बुनकरों द्वारा उत्पादित कपड़े खरीदने की व्यवस्था की जाय तथा उन्हें ऋण की सहायता सुलभ करायी जाय।''[91] पहले ही सरकार से साठ-गांठ करके पूंजीपति वर्ग ने भारत के अधिकांश संसाधनों पर कब्जा जमा लिया

---

[88] वही, पृ.सं. 47

[89] वही, पृ.सं. 156

[90] जोशी, ज्योतिष, उपन्यास की समकालीनता, पृ.सं. 15

[91] बिस्मिल्लाह अब्दुल, झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृ.सं. 143

है। वही कर्ज देंगे वही शोषण करेंगे। संवेदनशीलता धीरे-धीरे समाप्त की जा रही है और धर्म की आड़ में साम्प्रदायिक दंगे करवाये जा रहे हैं। आज का पूंजीपति वर्ग और सत्तावर्ग दोनों का चरित्र एक जैसा है। पहले दंगा कराते है फिर समाज को धर्म के नाम पर इकट्ठा करते हैं फिर उसी से अपनी रोजी-रोटी या कहें कि अपने व्यक्तिगत लाभ को प्राप्त करते है- ''इस इलाके में वैसे भी मौतें ज्यादा हो रही हैं इन दिनों। अभी दशहरे और मुहर्रम के मौके पर यहाँ भयंकर दंगा हुआ, जिसमें सैकड़ों जाने गयीं।''[92] इस तरह कथाकार ने मऊ और बनारस के दंगों के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया है कि आज कैसे साम्प्रदायिक सौहार्द्र को हजारों मील दूर बैठा पूंजीपति वर्ग कितनी आसानी से मिटा देने पर तुला है। ब्रिटिश जिस प्रकार हिंदू-मुस्लिम के बीच नफरत के बीज बोकर अपने वतन चले गये, आज वही नफरत, सम्प्रदाय, श्रेष्ठताबोध की ताकतें भारतीय जमीं पर फल-फूल रही हैं। इसी तरह हिंदू-मुस्लिम दंगो के स्वरूप के संदर्भ में आलोचक मधुरेश का यह कथन एकदम समीचीन प्रतीत होता है- ''स्वाधीनता से पूर्व गाँवों में जो साम्प्रदायिक सौहार्द्र था, हिंदू जमींदार मुसलमान 'प्रजा' के प्रति जो सदाशयता बरतता था वह स्वाधीनता के बाद राजनीतिक कट्टरता की आँधी में उड़ जाती है।''[93] इस तरह जब समाज का सौहार्द्र बिगड़ता है तब मानवीय संवेदना शून्य हो जाती है। आजादी के बाद हिन्दुत्ववादी ताकतों ने जैसे-जैसे अपना विस्तार किया वैसे-वैसे दंगो में भी वृद्धि नजर आने लगती है। यानी दंगों का कुल इतिहास महज सौ दो सौ वर्षों का है वहीं यदि हम अपने प्राचीन या मध्यकालीन धर्म सम्प्रदाय या मूल्यों को देखे तो वहाँ मूल्य नीतिपरक थे इसी कारण न दंगे होते थे न ही इतनी नफरत। इस संदर्भ में प्रो. मुहम्मद हबीब का यह कथन उल्लेखनीय है जो हमें प्राचीन मूल्यों की महान भारतीय परम्परा की तरफ हमारा ध्यान ले जाता है- ''यह विचित्र बात है कि मध्यकालीन इतिहास के राजनैतिक या ऐतिहासिक साहित्य में हिन्दू मुस्लिम द्वन्द्व का कोई छोटे से छोटा प्रमाण नहीं मिलता।''[94]

---

[92] बिस्मिल्लाह अब्दुल, झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृ.सं. 142

[93] मधुरेश, हिंदी उपन्यास का विकास, पृ.सं. 222

[94] हबीब मुहम्मद : (उत्तरगाथा) अंक 6-7, जनवरी, 1981, पृ.सं. 15

उपरोक्त कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय जीवन मूल्यों में लगातार गिरावट दर्ज हो रही है और इन सबके मूल में पूँजीवादी व साम्प्रदायिक ताकतें महत्वपूर्ण हैं। इसी तरह 'ज़हरबाद', 'दंतकथा', 'मुखड़ा क्या देखे', 'रावी लिखता है' जैसे उपन्यासों में विविध प्रकार के जीवन मूल्यों को रेखांकित किया गया है।

चतुर्थ अध्याय

अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों का रूप-गत वैविध्य

4.1- कथा निर्माण की प्रक्रिया-

किसी भी रचनाकार का रचना कर्म सृजनशीलता के कला पक्ष को अभिव्यक्त करता है। रचना प्रक्रिया का अर्थ साहित्य के कला पक्ष से है। दूसरे शब्दों में कहें तो कोई भी साहित्यकार अपनी अनुभूति एवं चिन्तन-धारा को अभिव्यक्त करने के लिए जिस संरचना का उपयोग करता है उसे ही रचना प्रक्रिया कहते हैं। रचना करना एक प्रक्रिया है, इस प्रक्रिया में प्रारंभ से अंत तक सभी कुछ शामिल होता है। रचना प्रक्रिया के सन्दर्भ में मुद्राराक्षस कहते हैं- "लिखना मातृत्व की प्रक्रिया के समानांतर अनुभव है।"[1] कोई भी सृजन कर्ता जब सृजन की प्रक्रिया से गुज़रता है तो जो भी वह अनुभव करता है या कहें कि इस प्रक्रिया में जो भी तत्व शामिल होते हैं वह रचना-प्रक्रिया के अंतर्गत आते हैं। रचना-प्रक्रिया के संदर्भ में कुमार विकल का मानना है कि- "साहित्य विधाएं ही नहीं, सभी ललित कलाओं में भावना की धरातल तक रचना प्रक्रिया की समानता बनी रहती है, किन्तु भावनाओं या भावित अनुभूतियों को सर्जन के धरातल तक लाते ही अभिव्यक्ति प्रणाली या अभीष्ट विद्या के अनुरूप रचना प्रक्रिया में अंतर आ जाता है। सर्जन के धरातल तक पहुंच जाने के बाद कवि, उपन्यासकार और नाटककार की रचना-प्रक्रिया एक सांचे में ढली नहीं रहती, बल्कि अपने-अपने विधागत स्थापत्य के अनुरूप किंचित भिन्न हो जाती है।"[2] हर साहित्यकार की अपनी रचना प्रक्रिया होती है। यह जरूरी नहीं कि एक समय के हर रचनाकार की रचना प्रक्रिया एक जैसी होगी। रचना प्रक्रिया शिल्प का ही एक हिस्सा है। विषय वस्तु को कला-रूप में ढालने की प्रक्रिया को ही रचना प्रक्रिया कहते हैं। इस प्रक्रिया में जीवन दृष्टि, आदर्श, विषय वस्तु आदि का समावेश होता है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने समय के अन्य रचनाकारों से अलग तरह की रचना प्रक्रिया को अपनाते हैं। इस समय के अन्य रचनाकार निम्न वर्ग, निम्न मध्य वर्ग, ग्रामीण एवं शहरी जीवन बोध को

---

[1]अवस्थी ओम.(1992).*रचना प्राक्रिया,* पृष्ठ सं. 11

[2]विकल, कुमार .(1996).*रचना प्रक्रिया का सामान्य स्वरुप, काव्य रचना प्रक्रिया,* पृष्ठ सं. 41

अपने साहित्य के केंद्र में रखते हैं तो वहीं अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने उपन्यासों में निम्न वर्ग के मुस्लिमों का जीवन, मुस्लिमों में जाति व्यवस्था, वर्ग विश्लेषण, सामंती एवं पूँजीवादी शोषण का गठजोड़, धर्म और पूँजी का तालमेल, पूँजी का जीवन में प्रवेश, स्त्री-पुरुष संबंध, मुस्लिमों में नैतिक –अनैतिक की बहस, तीज त्यौहार, मेले आदि का बहुत ही सजीव वर्णन किया है। ग्रामीण जीवन खासकर मुस्लिम समाज के जीवन के विविध रूपों को जिस तरह से चित्रित किया है वैसा कहीं और देखने को नहीं मिलता। रचना-प्रक्रिया के संदर्भ में गोर्की कहते हैं कि- " अपने सार तत्व में साहित्यिक सृजनात्मकता सभी देशों तथा सभी जातियों में एक सी है।"[3] गोर्की की बातों से पूर्णतया सहमत नहीं हुआ जा सकता। रचना-प्रक्रिया समय एवं समाज सापेक्ष होते हुए भी हर लेखक की अपनी विशिष्टता होती है जो एक दूसरे से भिन्न होती हैं। इस सन्दर्भ में अमृतराय लिखते हैं- "मैं आपकी बात से सहमत हूँ कि सबकी अपनी-अपनी रचना प्रक्रिया के बावजूद उसका एक सामान्य स्वरूप भी होता है, लेकिन उसके लिए लम्बी व्याख्या अपेक्षित है।"[4] एक सामान्य रचना प्रक्रिया के बावजूद हर लेखक की अपनी स्वयं की रचना प्रक्रिया होती है। अब्दुल बिस्मिल्लाह की रचना प्रक्रिया अपने समय के लेखकों से अलग है। अपने पहले उपन्यास 'ज़हरबाद' में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने आत्मकथात्मक शैली को अपनाया है। इस शैली के माध्यम से लेखक ने अपने जीवन-संघर्ष को बहुत ही संवेदनात्मक रूप से प्रस्तुत किया है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने जीवन-संघर्ष को इस तरह से चित्रित किया है कि उससे सभी का जुड़ाव बन सके। पाठक को यह नहीं लगता है कि यह लेखक की जिंदगी है, बल्कि ऐसा लगता है कि यह आम जन के जीवन संघर्ष की अभिव्यक्ति है। अभावग्रस्तता के कारण जीवन में जो संघर्ष होता है वह बेहतरी के लिए होता है और यह बेहतरी स्वयं के साथ शोषित, पीड़ित, अभावग्रस्त जनता के लिए होती है। अब्दुल बिस्मिल्लाह के लेखन का यह कौशल है कि वे स्व की पीड़ा को आम जनता की पीड़ा में तब्दील कर देते हैं और इसके लिए वे मार्क्सवादी विचार प्रणाली का प्रयोग करते हैं। इनके लेखन की

---

[3]गोर्की, मैक्सिम.(1986). *मैंने लिखना कैसे सिखा, लेखन-कला और कौशल*. पृष्ठ सं. 8

[4]अवस्थी, ओम (1992) *रचना प्रक्रिया*. पृष्ठ सं.10

प्रक्रिया में मार्क्सवादी दृष्टिकोण हमेशा बना रहता है। जाति व्यवस्था, धार्मिक पाखंड एवं शोषकों का वर्ग किस तरह से आम जन के जीवन में दुःख भरते हैं इनके कथा का प्रस्थान बिंदु है। 'ज़हरबाद' एवं 'समर शेष है' उपन्यास लेखक के जीवन की घटना पर आधारित होते हुए भी कहीं भी व्यक्ति का महिमामंडन या स्वयं की पीड़ा, दुःख, ग़रीबी, जहालत का विशेष रूप उल्लेख नहीं किया है। स्व की पीड़ा कब पर-पीड़ा में तब्दील हो जाती है यही लेखक का कौशल है। अब्दुल बिस्मिलाह ने जितने भी उपन्यास लिखे हैं उसमें मेहनतकश जनता की पीड़ा है। 'मुखड़ा क्या देखे' में स्वतंत्रता के बाद जनता की स्थितियों में कोई बदलाव नहीं हुआ और न ही किसी तरह का कोई लाभ आम जनता को मिला, लेकिन यह जरुर हुआ कि हिंदू-मुस्लिम में वैमनस्य बढ़ गया। कई बार मुस्लिमों को ताना सुनना पड़ता है कि जब तुम लोगों का अलग देश बन गया है तो यहाँ क्या कर रहे हो, जाओ अपने देश पाकिस्तान।

अब्दुल बिस्मिलाह के सभी उपन्यासों 'ज़हरबाद', 'समर शेष है', 'मुखड़ा क्या देखे', 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया', 'कुठाँव, 'दन्तकथा' एवं 'रावी लिखता है' में वैविध्य है। जिस तरह से जीवन में एक रूपता नहीं है उसी तरह से इनके उपन्यासों में भी एक रूपता न होकर वैविध्य है। समकालीन उपन्यासकारों में अब्दुल बिस्मिल्लाह ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने अपने कथा साहित्य के माध्यम से एक साहित्य का नया स्वरुप विकसित किया है।

रचना प्रक्रिया में शिल्प ही वह माध्यम है जिससे कथाकार अपने विषय का अनुसन्धान और विकास करता है, उसे मूर्त रूप देता है, अर्थबोध कराता है और अंत में उसका मूल्यांकन करता है। रचना प्रक्रिया के माध्यम से ही लेखक कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने में समर्थ होता है। रचना प्रक्रिया के सन्दर्भ में रोमां रोला का मत है कि- "रचना प्रक्रिया को आत्म और वस्तु जगत, या आत्मनिष्ठ तथा वस्तुनिष्ठ ध्रुवों की टकराहट के रूप में समझा जाना चाहिए। इसलिए उन्होंने टकराहट ही को अवस्थाओं में बाँटकर बताया है कि इसकी प्रक्रिया के दौरान व्यक्ति की विचार या आंतरिक दर्शन के साथ टकराहट होती है जो प्रयत्न और अप्रयत्न दोनों तरह की हो सकती है। फिर उस टकराहट के बाद आत्मसात की

प्रक्रिया आती है। उसके बाद टकराहट की तीव्रता निर्धारित होती है। रचना प्रक्रिया रूप में अभिव्यक्त होने वाला भावावेग है जिसकी तीन अवस्थाएँ हैं।'' 1- प्रारम्भिक चरण. 2- बिंब सृजन, 3- निर्णयन[5]। रचना प्रक्रिया के मध्य से कलाकार की अनुभूति अमूर्त से मूर्त हो जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि शिल्प किसी साहित्यिक कृति की रचना-प्रक्रिया का नाम है। यह लेखक के अंतर्मन से निर्मित कथा होती है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह की रचना-प्रक्रिया का मुख्य आधार बिंदु है उनकी वैचारिकी। यह वैचारिकी विचारधारा से सम्बद्ध है, लेकिन उसका प्रतिबिम्ब मात्र नहीं है। इनके साहित्य में आस्था के अनेक प्रतीक हैं। उनका अधिष्ठान एक है, किन्तु उनकी दार्शनिक मान्यताएँ अनेक अन्तर्विरोधों को पार करती हुई स्त्री और प्रकृति के मोहक चित्रों के साथ साहित्य में व्यक्त होती हैं। नये मानवतावाद के प्रतिष्ठापक बिस्मिल्लाह के साहित्य में निरन्तर संघर्षशील निजी अनुभव का विकास, उनके काव्य तथा उनकी भावधारा को विवेचित करता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह के साहित्य परंपरा में आत्मकथ्य का आना नए मूल्यों की तलाश है और लेखक उस तलाश में सफल भी होता है। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में लेखक स्वयं उपस्थित होकर कथा को और भी यथार्थपरक बना देता है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने कथा यात्रा में जीवन के अनुभव और अपने आस-पास के चरित्रों को अधिक चित्रित किया है। इनके कथा का विकास भी इसी क्रम में हुआ है। आत्मकथात्मक उपन्यास से होते हुए इन्होंने अपने जीवन के आस-पास की घटनाओं को समेटा है। अब्दुल बिस्मिल्लाह का आत्मकथात्मक दृष्टिकोण इस तरह का है कि वे अपने अनुभव दूसरों को देकर दूसरों के अनुभव को विचारों की कसौटी पर कसते हैं। यह सच है कि रचनात्मक अनुभव की पीड़ा लेखक स्वयं भोगता है। और जब तक उसे शब्द नहीं दे देता तब तक उस पीड़ा से निकल नहीं पाता। बनारस में रहते हुए इन्होंने बुनकरों की स्थिति से पूरी तरह वाकिफ होकर ही 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' की रचना की है। अब्दुल बिस्मिल्लाह विसंगतियों, रूढ़ियों, अनास्था एवं असुंदर के बीच वे इन सभी में क्रांतिकारी परिवर्तन करते

[5]अवस्थी, ओम .(1992). *रचना प्रक्रिया*. पृष्ठ सं. 35

हुए दिखाई पड़ते हैं। समाज में जिस तरह की समस्याएँ हैं वे उसे उसी तरह चित्रित भर नहीं करते बल्कि इनके उपन्यासों के नायक स्थिति के बदलाव के लिए संघर्ष करते हैं। इनके उपन्यासों के कथानायक मार्क्सवादी जीवन दर्शन से प्रभावित हो समाज में गैर- बराबरी को समाप्त करने करने की बात करते हैं। वह चाहे 'मुखड़ा क्या देखे' का बवाली हो या बुद्दू, 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' का मतीन हो या इकबाल तथा 'समर शेष है' का कथानायक 'मैं' सभी शोषण की बुनयाद पर टिकी व्यवस्था को बदल देना चाहते हैं।

समग्रता में देखें तो हम पाते हैं कि अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने समय के अन्य साहित्यकारों के अपेक्षा निम्न मध्यवर्गीय समाज का प्रतिनिधित्व अपने कथा साहित्य में वैचारिक परिप्रेक्ष्य में भी करते हैं। इनके उपन्यासों से गुजरते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि वैचारिक धरातल पर ये नारा नहीं लगाते और न ही उसका प्रचार-प्रसार करते हैं। उपन्यासों में अपने पात्रों के माध्यम से जीवन मूल्यों को इस तरह चित्रित करते हैं कि लगता ही नहीं है कि कथा नायक कोई गूढ़ दार्शनिक बात कह रहा है। अब्दुल बिस्मिल्लाह की रचना-प्रक्रिया कल्पना से यथार्थ की यात्रा न होकर यथार्थ से यथार्थ की यात्रा है।

4.2- पात्र योजना

उपन्यास में पात्र-योजना का महत्वपूर्ण स्थान होता है। कई बार उपन्यासकार पात्र-योजना (चरित्र-चित्रण) के बल पर ही उपन्यास को सफल बनाते हैं। कथा नायक/नायिका उपन्यास को सशक्त आधार प्रदान करते हैं। उपन्यास को आगे बढ़ाने में पात्रों का समुचित चित्रण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उपन्यासकार को पात्रों की सृष्टि इस प्रकार करनी चाहिए कि वे सत्य और विश्वसनीय लगें। पात्र कथानक के साथ ताल-मेल बिठाने वाला हो, ऐसा न हो कि कथा ग्रामीण पृष्ठभूमि की हो और पात्र शहरी। यदि पात्र कथानक के अनुकूल होते हैं तो वे पाठकों की चेतना को प्रभावित कर पाने में सफल होते हैं और पाठक के मन-मस्तिष्क पर अपना प्रभाव छोड़ने में सफल होते हैं। इस सन्दर्भ में कथा सम्राट प्रेमचंद को देखा जा

सकता है। प्रेमचंद ने अपने सभी उपन्यासों में पात्रों का सशक्त चित्रण किया है। 'सेवासदन' की सुमन, 'गबन' की जालपा, 'निर्मला' उपन्यास की निर्मला, 'रंगभूमि' का सूरे एवं गोदान का होरी पात्र-योजना के सशक्त मिसाल हैं। प्रेमचंद ने व्यक्तित्व के अनुरूप ही पात्रों को रचा है। पात्र-योजना के महत्व को रेखांकित करते हुए डॉ. बेचन कहते हैं- "एकमात्र पात्र ही उपन्यास का मेरुदंड है। पात्र और चरित्र के चारों ओर फैला हुआ वातावरण और परिस्थितियां ही लेखक या कलाकार के लिए कच्चा माल है, जिसे पकाकर वह उपन्यास का कलेवर तैयार करता है उसे सजाता है। कथा का प्रधान लक्ष्य चरित्र-चित्रण द्वारा मानव संवेदना को प्रभावित प्रभावोत्पादक बनाना है। इसके लिए वह घटनाओं का सृजन करता है और संगीत की रीत की तरह आरोह-अवरोह की गति संचालित करता है, उसे क्लाइमेक्स तक पहुंचाता है और उतारता है।"[6] अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में पात्रों का चित्रण क्लाइमेक्स के साथ हुआ है।

'ज़हरबाद', 'कुठाँव', 'मुखड़ा क्या देखे', 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया', 'समर शेष है', 'रावी लिखता है', 'दन्तकथा' में चरित्र- चित्रण कथा को गति प्रदान करते हैं। इनके सभी उपन्यासों में जो मुख्य एवं गौण पात्र आए हैं वे यथार्थ जीवन से हैं। इन पात्रों से गुजरते हुए ऐसा लगता है कि ये हमारे आस-पास ही मौजूद हैं। ये पात्र इकहरा जीवन व्यतीत नहीं करते, बल्कि इन पात्रों में जीवन के विभिन्न राग-अनुराग समाहित है। 'ज़हरबाद' एवं 'समर शेष है' के पात्र तो ऐसे लगते हैं जैसे उनके ही परिवार के लोग हों। 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास के जो भी पात्र हैं वे सभी बनारस के बजरडीहा मोहल्ले के बुनकर हैं। लेखक पात्रों का बाह्य एवं आतंरिक दोनों गुण विकसित करता है। कथानक के अनुसार ही वह पात्रों के चरित्र को उद्घाटित करता है। इस सन्दर्भ में डॉ. प्रताप नारायण टंडन का मत है कि- "मनुष्य का बाह्य और आंतरिक रुप भिन्नता रखता है? एक मनुष्य के क्रिया-कलाप से किस सीमा तक उसके चरित्र का अनुमान लगाया जा सकता है? सामाजिक परिस्थितियां कहां कहाँ तक मनुष्य को उसके जीवन

[6]डॉ. बेचन, (2010) *कथा साहित्य चरित्र और विकास*. पृष्ठ सं. 26

में प्रभावित करती हैं? आदि प्रश्नों के द्वारा ही उपन्यास कृति में अनेक पात्रों का निर्माण करता है।"[7]अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में पात्र किसी-न-किसी समस्या को लेकर उपस्थित होते हैं।

बिस्मिल्लाह ने पात्रों का सृजन समस्याओं को उपस्थित करने या उसे उभारने के लिए किया है । पात्रों के माध्यम से दैनिक जीवन में घटने वाली घटनाओं को उपस्थित किया गया है। इनके सभी उपन्यासों में पात्र-योजना बेजोड़ है । 'समर शेष है', 'ज़हरबाद', 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में जो पात्र-योजना है वह रोजमर्रा के जीवन-संघर्ष को उद्घाटित करते हैं। पात्र जीवन के विविध भावों को व्यक्त करते हैं। कभी वे हंसाते हैं तो कभी ये रुलाते हैं। कभी संवेदित करते हैं तो कभी क्रोध से भर देते हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने पात्रों के माध्यम से जीवन के विविध रूपों का दर्शन कराया है। चूंकि बिस्मिल्लाह जी प्रतिबद्धता के साथ लेखन करते हैं, इसलिए इनके यहाँ समाज में जो शोषण व्याप्त है उसका उद्घाटन भी इनके पात्र करते चलते हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने पात्रों को कहीं भी ढीला नहीं छोड़ते, इसलिए वे अपने पात्रों के चयन और उनकी भूमिका के बारे में पूरी सावधानी बरतते हैं। वे इस बात का ध्यान अवश्य रखते हैं कि कहीं उनके पात्र अनियंत्रित होकर उद्देश्य के दायरे से बाहर न चले जाएँ। इनके उपन्यासों के मुख्य पात्र जिसे हम नायक भी कह सकते हैं शोषण की प्रक्रिया को उद्घाटित करते चलते हैं। समाज में शोषण की जो ज़मीन है जिसके चंगुल में आम जनता पिसती रहती है को व्यक्त करने के लिए वे समाज के यथार्थ पात्रों को उठाते हैं। 'समर शेष है' और 'ज़हरबाद' का कथानायक'मैं', 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' नायक 'मतीन','मुखड़ा क्या देखे' का अली अहमद तथा 'दन्तकथा' का नायक 'मुर्गा' आदि के चरित्र सम्पूर्ण शोषण प्रक्रिया का उद्घाटन करती है । सामंती समाज व्यवस्था का शोषण और पूँजीवादी शोषण को चित्रित करने के लिए वे पूँजी के बदले स्वरूप को उद्घाटित करते हुए व्यावसायिक बुद्धिवाले शोषकों के चरित्र को चित्रित किया है। 'झीनी-झीनी बीनी' चदरिया उपन्यास में मतीन और उसके बेटे इक़बाल के मार्फ़त मार्क्सवादी मूल्यों को चित्रित किया है।

---

[7]टंडन, प्रताप नारायण.(1959).*हिंदी उपन्यासों में कथा शिल्प का विकास*. पृष्ठ सं 75

जहरबाद -

मैं शैली में लिखा गया इस उपन्यास का मुख्य पात्र 'मैं' है। इसके अलावा अब्बा एवं अम्मा सहायक पात्र हैं। गौण पात्रों में मैसू मामा, शहीदन, रफीक खाँ, हाफिज खाँ, फुलझर, लोखरी, साबुनलाल, शाहबाज खाँ, साहूकार, शमशाद खाँ, लाल बाबू और बेगम हैं। कथानक 'मैं' उपन्यास का प्रमुख पात्र है जो संभवत; लेखक ही है । लेखक के अब्बा, अम्मा और साथ ही अम्मा की सहेली फुलझर एवं लोखरी के इर्द-गिर्द ही कथा घूमती है। आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया इस उपन्यास में कथानायक 'मैं' के अभावग्रस्त बचपन का चित्रण अब्बू-अम्मा के झगड़ों मार्फ़त किया गया है। कथानायक 'मैं' बालपन में अपने हम उम्र शहीदन के प्रति आकर्षित है और वह खेल-खेल में उससे विवाह भी करता है। कथानायक अपने आस-पास और परिवार के बारे में बताता है- "दादा ने दो शादियां की थीं और अब्बा ने चार। पहली बीवी को तलाक दिया, दूसरी मर गई, तीसरी को पुनः तलाक दिया और अब्बा और अम्माँ चौथी बीवी के रूप में आयीं। तीसरी बीवी हिंदू थी, जिनसे एक लड़की भी थी जो देश (पैतृक स्थान) में ब्याही थी। अम्माँ का खानदान बहुत बड़ा था, पर मेरे मामू निहायत गरीब थे। नाना मर गए थे और नानी बूढ़ी हो गयी थीं। एक मामू बाहर रहते थे और दूसरे अपने दोनों लड़कों के साथ घर पर ही रहकर मजदूरी किया करते थे। उनके अलावा उस घर में दो लड़कियां भी रहती थीं- शहीदन और बेगम। शहीदन मेरी बड़ी अम्माँ की लड़की थी और बेगम मामू की। शहीदन के मां-बाप दोनों मर गए थे और उसका पालन-पोषण नानी ने हीं किया था। एक तरह से बेगम का पालन-पोषण भी नानी ही कर रही थी, क्योंकि मामू सिर्फ नाम को ही उसके पिता थे। माँ उसकी भी नहीं थी। शहीदन मुझसे काफी बड़ी थी और खूबसूरत न होते हुए भी नाक-नक़्शे से आकर्षक लगती थी, लेकिन उसके पास बुद्धि की बेहद कमी थी, इसलिए लोग उसे बैही (पगली) कहा करते थे। बेगम थोड़ी मोटी थी इसलिए मैं उसे मुटल्ली कह कर चिढ़ाया करता था ... ।"[8] 'मैं कथानायक ने अपने आस-पास के लोगों के बारे में इसी तरह से बताया है।

[8]बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2016). जहरबाद, पृष्ठ सं. 8 -9

उपन्यास में ये सभी गौण पात्र हैं। गौण पात्र कथा में मुख्य भूमिका तो नहीं नभाते, लेकिन कथा को गति देने एवं आगे बढ़ाने में सहायक होते हैं। अम्माँ, अब्बा, लोखरी- फूलझर सहायक पात्र की तरह कथा में मौजूद हैं। लेखन ने अम्माँ के चरित्र को कर्तव्यपरायण, सहनशील, पतिपरायण, अपने बच्चे को प्रेम करने वाली, दूसरों की मदद करने वाली, परिश्रमी, सहज एवं सरल रूप में चित्रित किया है। अब्बा का चरित्र बहुत विस्तार लिए हुए नहीं है। इनका चरित्र गुस्सा करने वाला, जिमेदारियों से मुँह मोड़ने वाला एवं अनैतिक प्रेम संबंधों के रूप में चित्रित हुआ है। समग्रता में देखें तो हम पाते हैं कि कथानायक 'मैं' के अलावा अम्माँ,लोखरी और फूलझर के चरित्र का विस्तार हुआ है। उपन्यास की कथा भी इन्हीं के आस-पास केंद्रित है।

समर शेष है-

यह उपन्यास 'ज़हरबाद' का ही विस्तार लगता है। आत्मकथात्मक शैली के इस उपन्यास की कथा 'ज़हरबाद' के आगे की कथा है और इसका कथानायक 'मैं' है। उपन्यास में मुख्य चरित्र 'मैं' के अलावा अब्बा, अम्माँ, नज़ीर, छाया, खातून, भाभी, रहमतुल्ला सहायक पात्र हैं जबकि प्रिंसिपल, चपरासी, यासीन साहब, शकूर साहब, छोटू, बबाना बुआ, 'मैं' की सौतेली बहन, मुहम्मद भैया, इस्लाम एवं पप्पू आदि पात्र का संयोजन उपन्यास में बहुत कुशलता के साथ हुआ है।

समर शेष है का कथा नायक 'मैं' उपन्यास में आत्मकथात्मक रूप में प्रस्तुत होता है। छाया और खातून कथानायक 'मैं' की प्रेमिका के रूप चित्रित हैं। नज़ीर कथा नायक का चचेरा भाई है एवं भाभी नज़ीर की पत्नी है। कथानायक 'मैं' का छाया और खातून से प्रेम रहता है, लेकिन दोनों ही मामले में नायक का प्रेम विवाह की परिणिति को प्राप्त नहीं कर पाता। कथानायक 'मैं' ग़रीबी की जहालत झेलते हुए अपने रिश्तेदारों के यहाँ पढ़ने के लिए जाता है, लेकिन हर जगह उसे अपमान एवं तिरस्कार सहना पड़ता है। 'मैं' के पिता अपने बेटे को पढ़ाने के लिए रिश्तेदारों का अपमान सहते हैं। अपने स्वाभिमान की हत्या कर वह कथानायक को पढ़ाने का प्रयास करते रहते हैं। बेबसी, लाचारी, जहालत ग़रीबी का चित्रण

इस उपन्यास में कथानायक 'मैं', अब्बा, रहमतुल्ला, नज़ीर की पत्नी आदि के माध्यम से हुआ है। गरीबी के चित्रण का एक उदाहरण द्रष्टव्य है- 'मेरा विचार था कि कुछ भी हो, रात को मुझे खाने के लिए जरूर कहा जाएगा, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। सीढ़ियों पर जब कोई आहट होती तो मैं यही सोचता कि कोई-न-कोई मुझे बुलाने आता होगा, पर मेरी कल्पना के टुकड़े-टुकड़े हो गए। देर रात तक अँधेरे में टकटकी बाँधे रहने के बाद मैं धीरे-धीरे सो गया।"[9] उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि कथा नायक ने किस तरह की लाचारी, बेबसी एवं गरीबी देखी है । घर में एक भी दाने न होने के कारण उसे अपनी बहन के यहाँ भी खाने को कुछ नहीं मिलता। ऐसा लगता है कि लेखन ने 'मैं' के रूप में स्वयं उपस्थित होकर पाठकों के समक्ष अपने जीवन-कथा को व्यक्त किया है।

झीनी-झीनी बीनी चदरिया-

बनारस के बुनकरों के जीवन चरित्र पर आधारित इस उपन्यास में अनेक पात्रों का चित्रण कथानक के अनुसार हुआ है। इस उपन्यास में कथानक बहुत ही सशक्त हैं जिसे कुछ पात्रों के माध्यम से चित्रित किया गया है। उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण भाग पात्र योजना है। उपन्यास की सफलता पात्रों की कुशल चित्रण में हैं। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में पात्रों का संयोजन कथा के अनुकूल हुआ है। लेखक ने पात्रों को स्थानीयता के साथ चित्रित किया है। इस उपन्यास का नायक मतीन है। इसके अलावा इकबाल, डॉ. अंसारी, बसीर, बिस्मिल्लाह, शरफुद्दीन, अलीमुन, हाजी अमीरुल्ला, अल्ताफ, रउफ़ चचा, शरीफ, शमीम, कामता प्रसाद, सेठ गजाधर, अमीना, रेहाना, अलीमुन, नजबुनिया, अख्तरुनिया आदि पात्र हैं। यह पूरा उपन्यास बनारस के बजरडीहा मुहल्ले के साड़ी बुनकरों पर केंद्रित है और कथा नायक मतीन बुनकरों का प्रतिनिधित्व करता है। उपन्यास में हाजी अमिरुल्ला जैसे अढ़तिएँ हैं तो मतीन जैसे बुनकर जो किसी तरह से साड़ी बुनकर अपने परिवार का पेट पालते हैं। मतीन बुनकरों को इकट्ठा कर मालिकों के शोषण के खिलाफ आवाज उठाता है। उपन्यास में बुनकरों के शोषण को केंद्र में रखा गया है। शोषक

[9]बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2016) समर शेष है, पृष्ठ सं. 55

वर्ग यानी व्यापारी और शोषित वर्ग यानी साड़ी बुनकरों के बीच वर्ग संघर्ष की स्थिति तो नहीं है लेकिन मतीन इन सेठ साहूकारों की नीतियों को बखूबी समझता है, इसलिए बुनकरों को संगठित कर अपने हक़ के लिए आवाज उठाने के लिए कहता है।

'झीनी झीनी बीनी चदरिया' के हाजी अमीरूल्लाह और सेठ गज़ाधर प्रसाद शोषक वर्ग का प्रतिनिधत्व करते हैं । हाजी अमीरूल्ला का चरित्र अब्दुल बिस्मिल्लाह की उल्लेखनीय देन है जो यथार्थवादी चरित्रों की कतार में एक बड़ी उपलब्धि भी है । हाजी अमीरूल्ला की बढ़ती पूँजी मेहनत का प्रतिफल नहीं है, बल्कि बुनकरों के श्रम-शोषण का फल है । साड़ी में ऐब निकालकर पैसे काटना शोषण का ही एक औजार है। यह एक ऐसा औजार है जिसे मन मसोस कर बुनकर मान लेता है। बुनकरों की दयनीय स्थिति का चित्रण सभी पात्रों के माध्यम से हुआ है। शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले हाजी अमीरुल्लाह शोषण का हर तरीका जानते हैं और उसे अपने परिवार के सभी सदस्यों को सिखाते हैं। बाहर से बहुत ही नम्र एवं दयालु दिखने वाले अमीरुल्लाह शोषण की हर तिकड़म को अपनाते हैं।

'झीनी-झीनी बीनी चदारिया' में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने न केवल बुनकरों के शोषण को दिखाया है, बल्कि मतीन के बेटे इकबाल के चरित्र के द्वारा शोषण के विरुद्ध संघर्ष को भी दिखाया है । इकबाल आधुनिक चेतना से युक्त नवयुवक है। उसे अपने व्यक्तिगत एवं सामाजिक अधिकारों एवं दायित्वों का भान है। भावनात्मकता से अधिक वैचारिकता से लैस, वह अन्याय के खिलाफ मुखर है और बुनकरों को संगठित कर शोषण के विरूद्ध लड़ने का आह्वान करता है । इकबाल केवल शोषण के विरुद्ध ही आवाज नहीं उठाता, बल्कि वह धार्मिक पाखंड का भी मुखालपत करता है । अपनी माँ की मृत्यु के बाद किए जाने वाले धार्मिक कार्यक्रमों को बकवास समझता है इसलिए इसका विरोध भी करता है।

स्त्री पात्रों में अलीमुन, नजवुनिया तथा रेहाना प्रमुख पात्र हैं। मेहनती एवं संस्कारी अलीमुन मतीन की पत्नी है जो टीबी से ग्रसित है। वह अपने पति का ख्याल रखती है और सोसायटी के कार्यों में परेशान मतीन के साथ खुद भी चिंतित रहती है । पति परायण बीमार अलीमुन अपने पति मतीन को दूसरी शादी

करने के लिए भी कहती है। वह नजवुनिया से प्रेमवत व्यवहार करती है। शादीसुदा नजवुनिया से मतीन को प्रेम है जो बाद में तलाक लेकर मतीन से शादी करती है। नजवुनिया भी एक संवेदनशील स्त्री है जो अलीमुन का इलाज करवाती है। उपन्यास में तीसरी मुख्य पात्र रेहाना है। रेहाना रऊफ चचा की बेटी है जिसके साथ कमरुद्दीन अनैतिक अत्याचार करता है। रेहाना का पूरा जीवन दुःख में बीतता है। सामाजिक बदनामी को झेलती रेहाना का विवाह लतीफ़ के साथ कर दिया जाता है। रेहाना की बहुत ही कम उम्र में मृत्यु हो जाती है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इस उपन्यास में जितने भी पात्रों को गढ़ा है वे सभी जीवन के यथार्थ को उद्घाटित करते हैं।

रावी लिखता है –

इस उपन्यास के केंद्र में आधुनिकता का लबादा ओढ़े लोगों एवं ग्रामीण चेतना का द्वंद्व है। उपन्यास में रावी कथा वाचक है जिसके माध्यम से नास्टेल्जिया का वितान रचा गया है। इस उपन्यास का कथानक गाँव से शुरू होकर इलाहबाद- दिल्ली जैसे शहरों से होता हुआ यूरोप तक विस्तृत है। इस उपन्यास में सूत्रधार रावी और अप्पी हैं। इस उपन्यास के पात्र अपने समय को प्रस्तुत करते हैं। दीनमुहम्मद 'सतयुग' के, वलीमुहम्म्द त्रेता के वलीमुहम्द के पुत्र एवं अप्पी के पिता यानी डैडी द्वापर के तथा कथावाचक रावी एवं अप्पी कलयुग के प्रतीक रूप में चित्रित हुए हैं। ये चारों मिलकर निम्नवर्गीय मुस्लिम परिवार की चार पीढ़ियों का जीवन-वृत्तांत रचते हैं। इन पात्रों से मुस्लिम समाज की चार पीढ़ियों का द्वंद्व चित्रित हुआ है। गाँव-शहर, मिथक एवं यथार्थ का मिश्रण ऐसा है कि उसे अलगाना मुश्किल है। कथा अप्पी के माध्यम से ही आगे बढ़ती है। अप्पी अपनी जड़ों को खोजने के लिए फैंटेसी का शिल्प तलाशती है। इस फैंटेसी में पिता यानी डैडी की एकतरफा पत्रात्मक प्रेम कहानी भी शामिल है। कथा-शिल्प में अप्पी का चरित्र बिलकुल अलग तरीके का है।

इस उपन्यास में सीमित पात्र हैं। सामंती प्रवृति का दीनमुहम्मद किसान-मजदूर से निर्मम वसूली करता है। इस वसूली से ही पिनका और उसका परिवार आत्महत्या कर लेता है। वलीमुहम्मद का चरित्र

किस्से-कहानियों में खोये रहने वाले व्यक्ति के रूप में चित्रित है। वलीमुहम्मद चार शादियां करते हैं और इसे बड़े शान की बात मानते हैं । डैडी का चरित्र न तो पूरी तरह से परंपरावादी है और न ही पूरी तरह से आधुनिकता से युक्त। अप्पी का चरित्र नास्टेल्जिक है। धीरे-धीरे वह परंपरा के महत्त्व को समझती है और डैडी को भी समझाने का प्रयत्न करती है । 'रावी लिखता है' उपन्यास के पात्र वैशिष्ट्य पीढ़ीगत अंतराल और भूमंडलीकृत मुस्लिम-जीवन की सटीक बयानी को व्यक्त करते हैं।

कुठाँव-

इस उपन्यास के केंद्र में स्त्री-पुरुष का प्रेम संबंध एवं अनैतिक यौन संबंधों के साथ ही हिन्दू - मुस्लिम समाज में जाति व्यवस्था को दिखाया गया है। इस उपन्यास में मुस्लिम समाज की आन्तरिक विडंबनाएं एवं विसंगतियों को केंद्र में रखा गया है। मेहतर समाज की बेवा इद्दन उसकी बेटी सितारा, नईम और ठाकुर गजेन्द्र सिंह उपन्यास के केन्द्रीय पात्र हैं। सहायक पात्रों में सितारा का भाई हमिद, रफीक, अली हुसैन खान, जुवैदा, उर्वशी आदि पात्र हैं। मुस्लिम समाज में व्याप्त जाति-व्यवस्था को दिखाने के लिए नईम और सितरा के प्रेम संबंधों को दिखाया गया है, लेकिन जहाँ सितरा मेहतर है तो वही नईम सैय्यद है। उपन्यास में इद्दन और बेटी सितारा हर वह कोशिश करती हैं जिससे उनकी स्थिति में बदलाव हो सके जिससे उन्हें भी अन्य मुस्लिमों की तरह सम्मान मिल सके। इद्दन और सितारा की आकांक्षाएं इतनी अधिक हैं वह इसके लिए कुछ भी करने को तैयार रहती हैं । अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इन दो स्त्री पात्रों के माध्यम से मुस्लिम समाज में जाति व्यवस्था एवं पितृसत्ता को दिखाया है।

दंतकथा –

इस उपन्यास का कथा नायक एक मुर्गा है। मुर्गे के माध्यम से ही कहानी आगे बढ़ाती है । निम्न मध्य वर्ग का प्रतीक मुर्गे का चरित्र पूरे उपन्यास में उभरकर सामने आता है। मुर्गा ग्रामीण परिवेश का है लेकिन उसे शहर लाया जाता है। गाँव में रहने वाले मुर्गे को शहर की घुटन भरी जिंदगी पसंद नहीं आती है। मुर्गे के

माध्यम से लेखक ने मध्यवर्गीय जीवन बोध एवं विसंगति का चित्रण किया है। मुर्गा इंसानों के हिन्दू-मुस्लिम के तकरार के कारण वह बोलता है कि उसे न हिन्दू बनना है और न ही मुसलमान उसे मुर्गा ही बने रहना है। मुर्गा कहता है कि- " मुझे इस बात का बेहद संतोष रहा है कि मैं हिंदू या मुसलमान न होकर मुर्गा हूँ। मैंने कई बार ईश्वर से प्रार्थना की है कि वह अगले जन्म में भी मुझे मुर्गा ही बनाए, मनुष्य नहीं; वरना मजबूरन मुझे हिन्दू या मुसलमान बनना पड़ेगा।"[10] यह मुर्गे का आत्मकथ्य नहीं है बल्कि मनुष्यता और अमनुष्यता का द्वंद्व है। मनुष्य के अन्दर जो पशुता है जो हिंसा है वह जाग उठती है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इस उपन्यास में मुर्गे के चरित्र के माध्यम से मनुष्य की जिजीविषा को भी अभिव्यक्त किया है। शक्तिशाली और निरीह के द्वंद्व को भी कथा में व्यक्त किया है।

'मुखड़ा क्या देखे' –

ग्रामीण जीवन पर आधारित इस उपन्यास में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने ग्रामीण समाज के सभी वर्गों के पात्रों का चित्रण किया है । उपन्यास का नायक अली चुड़िहार है। उपन्यास में प्रमुख पात्र दयाशंकर पाण्डेय, रामबृक्ष पाण्डेय, अशोक कुमार पाण्डेय, सृष्टि नारायण पाण्डेय, सत्तार, जब्बार, मखदूम नाऊ, पतरस, मुन्ना नचनिया, लल्लू, नुरू, डॉ. रफ़ीअहमद, मंगल, जलील, खलील, दसरथ सिंह गोंड, बंगाली बाबू, बवाली, जवाहर हलवाई, रनिया और भूरी हैं। उपन्यास में लल्लू विशेष पात्र है जो गीतों का पैरोडी बनाकर गाँव के युवाओं का मन बहलाता है। गाँव के युवा लल्लू भाट को छेड़ते रहते हैं। लल्लू सुन्दर पैरोडी बनाकर सुनाता है।

डोंट टच माइ बॉडी मोहन रसिया

हाँ मोहन रसिया

यूं आर ए सन ऑफ़ श्री बिंदराबन,

एंड आई ऍम ए डॉटरऑफ़

---

[10]बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2016). दंतकथा, पृष्ठ सं. 87

गोकुल रसिया

डोंट टच माइ बॉडी मोहन रसिया[11]

गाँव की रामलीला, नौटंकी में सभी का मनोरंजन करने वाला लल्लू पिता की मृत्यु के बाद बिलकुल शांत हो जाता है। लल्लू की जीवन यात्रा बहुत सुखद नहीं है। केस के चक्कर में अशोक कुमार उसका नसबंदी करवा देते हैं। बाद में एक कार्यक्रम में गोली लगाने से लल्लू का दुखद अंत हो जाता है।

उपन्यास का नायक अली चुड़िहार है जो स्वाभिमानी है। अली निम्न मध्यवर्गीय मुस्लिम समाज का प्रतिनिधित्व करता है। रामबृक्ष पाण्डेय की बेटी की शादी में नेग लेने नहीं जाता है तो उसे अपमानित किया जता है और उसके साथ मारपीट भी होती हैं। इससे अपमानित हो वह गाँव छोड़कर मध्य प्रदेश चला जाता है। वहीँ उसकी मुलाकात पतरस नामक व्यक्ति से होती है जो धर्म परिवर्तन कर ईसाई बन गया है। पतरस की मदद से ही वह वहां पर एक दुकान खोलता है जिससे उसका जीवन यापन चलता है। इस उपन्यास में पण्डित रामवृक्ष पाण्डे, सृष्टिनारायण पाण्डे आदि सामंती संस्कारों से युक्त शोषक वर्ग का प्रतिनिधत्व करते हैं, जो लोगों की ज़मीन हड़पकर उन पर शासन करते हैं । जमींदारी खत्म होने के बाद राजनीति का पल्ला पकड़ते हैं। राजनीति इन लोगों को शोषण की प्रक्रिया में सुविधा देती है। गाँधी और नेहरू को गरियाने वाले ये पात्र सरदार पटेल को मानते हैं और सामंती पृष्ठभूमि से कोई समझौता नहीं करना चाहते। रामबृक्ष पाण्डेय गाँव के लोगों पर रौब झाड़ने वाला पात्र है। मुसलमानों से नफ़रत करने वाला यह पात्र चाहता है कि सभी मुसलमानों को पाकिस्तान भेज देना चाहिए। रामबृक्ष पाण्डेय का छोटा भाई सृष्टिनाथ पाण्डेय अनैतिक व्यवहार वाला पात्र है। वह फुल्ली दाई की नातिन से अनैतिक व्यवहार करता है, लेकिन उसमें सफल नहीं हो पाता है। वह मुन्ना नचनिया से भी अनैतिक संबंध रखता है और उसके पैसों पर अपना अधिकार जताता है। मुन्ना से इतर वह अजय से भी संबंध रखता है। उपन्यास का एक पात्र अशोक पाण्डेय रामबृक्ष का पोता है। वह भी अपने दादा के नक़्शेकदम पर चलता है। अली

[11]बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2016) मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ सं. 9

चूड़ीहार की बेटी से एक तरफा प्रेम करता है और उसके लिए कुछ भी करने को तैयार रहता है, लेकिन ताहिरा उससे प्रेम नहीं करती।

इस उपन्यास का एक प्रमुख पात्र बुद्धु है जो अली चूड़ीहार का बेटा है। बुद्धु आगे की पढ़ाई करना चाहता है, लेकिन स्कूल में उसे सांप्रदायिक भेदभाव का सामना करना पड़ता है। इस कारण वह पढ़ाई छोड़ देता है। बुद्धु को गाँव के ही तोते पासी की बेटी भूरी से प्रेम करता है और उससे विवाह भी करता है। भूरी से विवाह करने के लिए उसे अपना गाँव छोड़ना पड़ता है। बुद्धु का नक्सलवादी मंगल से परिचय होता है तो वह उसे डॉक्टर बनने का सलाह देता है। बुद्धु डॉक्टर बन रफ़ी अहमद सिद्दीकी हो जाता है। प्रगतिशील चेतना से युक्त बुद्धु अपने पारंपरिक पेशा को छोड़ने की बात करता है। बुद्धु मंगल के संपर्क में आने के बाद सशस्त्र क्रांति की वकालत करता है और उसे अपना समर्थन देता है। मंगल और बुद्धू दोनों प्रगतिशील चेतना के युवक हैं। वे शोषणमुक्त समाज के लिए क्रान्ति की बात करते हैं। सभी क्षेत्रों में आमूल परिवर्तन कराना उनका लक्ष्य है। वह कहता है- ‘‘सब पूँजीखोरन का एक दिन नास होगा, देखते रहना।’’[12]अब्दुल बिस्मिल्लाह जी को जहाँ भी मौक़ा मिला है वे अपने पात्रों से मार्क्सवादी चेतना का उदबोधन करवा लेते हैं। इस उपन्यास में भी बुद्धु और मंगल मार्क्सवादी विचारधारा को मानने वाले व्यक्ति हैं। बिस्मिल्लाह ने अपने पात्रों को विभिन्न परिस्थितियों में रखकर विश्लेषित करते हैं।

इस उपन्यास में दो स्त्री पात्रों को विशेष रूप से चित्रित किया गया है। इसमें अली चूड़ीहार की पत्नी रनिया और तोते पासी की बेटी भूरीजो बुद्धु के पत्नी भी है का चित्रण हुआ है। रनिया पति परायण है। वह अपने पति अली की सेवा करती है और उसके हर कदम में साथ देती है और अपना पुश्तैनी पेशा चूड़ी पहनाने का कार्य जारी रखती है। रनिया का चित्रण परिवार एवं समाज के साथ सामंजस्य बिठाने वाली स्त्री के रूप में हुआ है। दूसरी प्रमुख स्त्री पात्र भूरी है जो अली एवं रनिया के बेटे बुद्धु से प्रेम करती है और सामाजिक विरोध के बावजूद भी भागकर ब्याह करती है। भूरी भी अपने पति के हर मुसीबत में

[12]–बिस्मिल्लाह अब्दुल(2016). मुखड़ा क्या देखे, पृ. 176

साथ खड़ी रहती है। यहाँ भूरी का चरित्र सामाजिक रुढियों एवं परंपरा से विद्रोह का है, लेकिन विवाह के अलावा उसका किसी भी तरह का कोई प्रतिरोध नहीं दिखता है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह जी अपने सभी उपन्यासों में स्त्री पात्रों को नायकत्व देने में चूकते नजर आते हैं। इनके सभी उपन्यासों में कहीं भी स्त्री परंपरा एवं रूढियों से विद्रोह करती हुई नहीं दिखती है। झीनी-झीनी बीनी चदरिया' के अलीमुन, निजबुनिया, रेहाना सभी पति परायण है। प्रेम में रहते हुए भी ये स्त्रियाँ परंपरावादी ही हैं। ये स्त्रियाँ अपने भाग्य को कोसती हैं, लेकिन उस पर विश्वास भी करती हैं। 'नजबुनिया' लड़कियों को स्कूल भेजना अच्छा नहीं मानती। इसी तरह 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास की 'रनिया' भी अपनी लड़की को नहीं पढ़ाना चाहती, बल्कि उससे परम्परागत पेशा चूड़ियाँ पहनाने को कहती है। आधुनिक चेतना से लैस बुद्धु की पत्नी भूरी जो कि बुद्धु से भागकर विवाह करती है, लेकिन उपन्यास में कहीं भी उसका सामाजिक बदलाव के लिए प्रतिरोध नहीं दीखता और न पितृसत्ता से कोई टकराहट ही। इसी तरह 'समर शेष है'उपन्यास में सामाजिक परिस्थितियों से विवश होने के कारण ही छाया तथा खातून अपनी प्रेमी से विवाह नहीं कर पाता।यहाँ परिवार एवं समाज से किसी तरह का बगावत नहीं दिखता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने स्त्री पात्रों के जीवन यथार्थ को तो अभिव्यक्त किया है, लेकिन परंपरा, रुढियों के नाम पर हो रहे शोषण को मुखरता नहीं प्रदान की है। स्त्री जीवन की जो स्थिति है जो दशा है उस पर अलग से कहीं भी विचार नहीं किया और न ही पितृसत्तात्मक व्यवस्था को ही दोषी माना है। बिस्मिल्लाह जी ने पूँजीवाद पर तो प्रहार किया है, लेकिन स्त्रियों की स्थिति के लिए सबसे अधिक जिम्मेदार धर्म और पितृसत्ता की मुखालफत अपने पात्रों से करवाने में चूकते नजर आते हैं।

4.3- भाषा शैली

साहित्य का मूल उपकरण भाषा है। इस उपकरण के माध्यम से ही साहित्य की अर्थवत्ता को अभिव्यक्त किया जाता है। इस लिहाज से देखें तो किसी कृति की भाषा की अर्थवत्ता उसमें निहित निश्चित अर्थ को व्यंजित करने में है। इस संदर्भ में राजेंद्र यादव कहते हैं- "अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच भाषा निश्चय

ही एक जीवित और स्वतंत्र सत्ता है।"[13]यह जीवित और स्वतंत्र सत्ता यथार्थवादी साहित्य लेखन के लिए आवश्यक है जिससे कि कथा साहित्य अपने भाषाई संदर्भ में भी यथार्थपरक लगे। भाषा का भी यथार्थवादी होना आवश्यक है। भाषा एवं कथ्य का आपसी संबंध इस तरह से होना चाहिए कि उसमें अलगाव न महसूस हो। यथार्थवादी कथा साहित्य एवं विचारवाही साहित्य से गुजरते हुए एक बात का निरंतर अनुभव होता रहता है कि ये कथा साहित्य स्वाधीनता पूर्व के उपन्यासों से बिलकुल जुदा है। इस अलगाव का मुख्य कारण हमारी आधुनिक भावभूमि है। इस भावभूमि को समझे बिना कथा की पृष्ठभूमि एवं संरचना को नहीं समझा जा सकता। आधुनिक भावबोध के कारण कथा साहित्य में आशय, विषय और शैलीगत परिवर्तन हुए हैं। हिंदी कथा साहित्य आंदोलन कई विचार एवं भाव भूमि से होते वर्तमान तक की जो यात्रा है, उसमें नवीनता एवं परंपरा दोनों का मिश्रण है। समकालीन कथा साहित्य पुरानी अवधारणाओं से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पायी। यही इसकी कमजोरी और सीमा भी है।

किसी भी कथाकार के साहित्यिक विकास में उसके द्वारा प्रयुक्त भाषिक-संरचना का अत्यधिक महत्त्व होता है। कथाकार द्वारा प्रयुक्त भाषा जितनी सशक्त होती है, उसका कथा-साहित्य भी उतना ही प्रभावशाली होता है। डॉ. हेमलता ने कथा-भाषा के सन्दर्भ में अपनी पुस्तक 'नई कहानी की संरचना' में भाषा की अवधारणा के संदर्भ में बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कही है- "भाषा स्वयं शाब्दिक शब्दों की ऐसी व्यवस्था है जो बाह्य जगत और मानव के आंतरिक भावबोध को परस्पर जोड़ती है साथ ही सर्जनात्मक कल्पना की सूक्ष्म प्रक्रिया से अपने आपको निर्मित करती है।"[14] भाषा कोई जड़ वस्तु नहीं होती, बल्कि भाषा के माध्यम से कहानीकार अपने जीवन के अनुभवों और जीवन-संदर्भों को रूपायित करता है। अब्दुल बिस्मिलाह के उपन्यासों की भाषा में उनके जीवन-दर्शन को भाषा के मार्फ़त देखा जा सकता है। इनके उपन्यासों की भाषा में मुख्य रूप से प्रवाहात्मकता, चित्रात्मकता, प्रतीकात्मकता, व्यंग्यात्मकता, नाटकीयता एवं भावात्मकता आदि पद्धतियों का प्रयोग प्रमुखता से हुआ है। अब्दुल बिस्मिलाह के

[13]यादव, राजेंद्र. (1977). कहानी: स्वरूप और संवेदना. पृष्ठ सं. 115

[14]डॉ. हेमलता. (2013). नई कहानी की संरचना. पृष्ठ सं. 259

उपन्यासों में प्रयुक्त भाषिक-संरचना में कहीं भी अस्वाभाविकता दृष्टिगत नहीं होती। स्त्री-पुरुष, शिक्षित-अशिक्षित, ग्रामीण-शहरी पात्रों के बौद्धिक और मानसिक पार्थक्य को अब्दुल बिस्मिलाह अपनी भाषिक-संरचना में सार्थकता के साथ व्यंजित करते हैं। इनके द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली भाषा स्वाभाविक, जीवंत एवं कथ्यपरक है । नवोन्मेषी कथ्य की तरह ही अब्दुल बिस्मिल्लाह ने भाषिक संरचना का जो वितान तैयार किया है वह भी नवीनधर्मी है। दूसरे शब्दों में कहें तो हम कह सकते हैं कि इनकी रचनाओं में भाषा वैविध्य है, यह भाषा वैविध्य परंपरावादी न होकर नवोन्मेषी है। अब्दुल बिस्मिल्लाह जन सरोकारों को अभिव्यक्त करने वाले उपन्यासकार हैं, इसलिए इनके उपन्यासों में शोषित, पीड़ित, किसान, मज़दूर एवं आमजन की भाषा सहज रूप में अभिव्यक्त होती है। यथार्थपरक जीवन को व्यक्त करने के लिए इन्होंने अलंकारिकता से युक्त छद्म भाषा को न अपनाकर आमजन की भाषा में उपन्यासों को रचा है, जिसमें स्थानीयता का समावेश अधिक होता है।

साठोत्तरी के दौर के कथाकारों ने कथा के अंतर्वस्तु के साथ-साथ रूप पक्ष को भी उतना ही महत्त्व दिया है। इन साहित्यकारों ने भाषा के स्तर पर नवीन दृष्टिकोण के अंतर्गत भाषा की कृत्रिमता और जड़ता के स्थान पर सहज-सरल शब्दों के चयन पर अधिक बल दिया। काशीनाथ सिंह, ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, रविन्द्र कालिया एवं अब्दुल बिस्मिल्लाह के यहाँ जो परिवेशगत भाषाई संरचना है वह सहजता-सरलता कथाकारों के उनके परिवेश और कथ्य के अनुसार अलग-अलग दिखाई देती है। भाषा के संदर्भ में नामवर सिंह की यह टिप्पणी उल्लेखनीय है- “हल्के-हल्के शब्द और छोटे-छोटे वाक्य एक पर एक जमे हुए एक पर एक सहज प्रवाह में बहते चलते हैं, फिर भी सूक्ष्म भाव अथवा विचार का कोई रेशा छूटने नहीं पाता।”[15] नामवर सिंह का यह कथन अब्दुल बिस्मिल्लाह पर समीचीन प्रतीत होता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह का जुड़ाव इलाहबाद, मिर्जापुर, बनारस एवं दिल्ली से रहा है, इसलिए इनके शब्दों में स्थानीयता का प्रभाव अधिक दिखता है। स्थानीय भाषा का प्रवाह कथ्य के अनुकूल होता है और कथा

[15]सिंह,नामवर. (2012). कहानी नई कहानी. पृष्ठ सं. 48

को आगे बढ़ाने में सहज ही गतिशील रहता है। बिस्मिल्लाह जी का जुड़ाव ग्रामीण जीवन से लगातार बना रहा, इसलिए भी इनके उपन्यासों में गाँव-कस्बों में प्रचलित शब्द अधिक आते हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने उपन्यासों में जिस प्रकार से शब्दों का चयन किया है उससे यह बोध होता है कि उनका शब्द ज्ञान अत्यंत विस्तृत एवं समृद्ध है। उर्दू, फारसी, अरबी के दुरुह शब्दों के बदले लोक में प्रचलित स्थानीय शब्दों को अधिक तरजीह देते हैं। इनके उपन्यासों में कथानक के अनुरूप तत्सम, तद्भव, देशज (स्थानीय) अरबी, फारसी एवं अंग्रेजी शब्दों के अलावा अपशब्द, निरर्थक शब्द एवं ध्वन्यार्थक शब्द, बाजारू एवं समूहवाची शब्दों का प्रयोग बहुलता से हुआ है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के कथा साहित्य में तत्सम और तद्भव शब्दों की बहुलताजन्य नैरंतर्य से कहीं भी ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि यह जानबूझकर किया गया प्रयोग है। भाषा की सहजता को बनाये रखने के लिए ये शब्द आवश्यक होते हैं। तत्सम शब्दों की गम्भीरता के साथ ही तद्भव शब्दों की सहजता का समन्वय इनके उपन्यासों में भाषा को सहजता प्रदान करता है। लेखक ने इन शब्दों का प्रयोग कथा प्रवाह के अनुकूल ही किया है। उपन्यासों में प्रयुक्त कुछ तत्सम-तद्भव शब्द दृष्टव्य है-

तत्सम-तद्भव

अधर, आभास ,आत्मा, अपेक्षा,उन्मूख, तिरस्कार, परिवर्तन, स्वर, सघन, वातावरण, घनी भूत, ध्वनि, महान, तड़प, परीक्षा, दर्शन, संवेदन, प्रति, प्राण, नाम, हर्ष, पत्थर,प्रतीक्षा, आगंतुक, प्रत्येक, प्रशंसापूर्ण, नेत्र, विश्वासपूर्ण, व्यक्ति, उदारतापूर्वक, सम्मति, प्रकट, मौलिकता, कर्णस्पर्शी, आत्म-संतुष्टि, जिज्ञासा, मुद्रा, करुण, रहस्यपूर्ण, असमंजस, दार्शनिक, क्षण, स्वभाव, योग्य,अनभिज्ञता, प्रलाप, ह्रदय, व्याप्त, एकत्रित, संबोधित, सूचित, व्यर्थ, सभ्यता, तुच्छ, ग्रन्थ, दृष्टिगोचर, विराजमान, अतएव, पथिक, श्रेणियों, उपस्थित, प्राथमिक, अवकाश, वैद्य, विक्रेता, आर्थिक, विद्यार्थी, शरीर, नितंबों, उरोज, स्वागत, घोषणा, खंडन, गर्व, छात्र, शंकालु, शांतिपूर्वक, आश्वासन, भविष्य, निम्न, मध्य, वर्ग, संगठित, सज्जन, पूर्व-घोषित, आमूल, प्राचीन, परिवर्तन, उत्तेजित, अत्याचार,रसिक दाम्पत्य, लटकाये, जितना, उलझा, जीना, मरना, हिनहिनाते, भटकने, दौडा, झुका, अनदेखी, ठहर, टँका, होंठ, गिरती साँस, नचाती, चित,

मोड, माँ, नाई, संभवतः, द्वंद्व, मित्र ,सोझिउ अफवाहों, घिरा, परछाई, टाँगे, बेझिझक, लेट, अधनंगा, थककर, आकुल, चेहरे, हँसा, झुण्ड–झुण्ड, झाँक, निकल, ब्राह्मण, पथिक, हृदय, आस्था, वृत्ति, शुष्क, उद्घाटन, ब्रह्मभोज, धर्मप्रवण, सुपुत्र, संशोधन, सुबह, खेत ,टूटते, बहना, मस्ती, असगुन ,ब्याह, साँझ, आँख, गाँव, रात, दूध, आँसू, बहन, प्यार, चाँद, आग, पहला, जीभ ,दुर्भिक्ष, सुशोभित, पश्चात, पूर्णतया, आश्चर्य, तर्क, दुष्टतापूर्वक, रहस्यमयी, मौखिक, सहानुभूति, अवश्य, विस्तार उद्घाटन, रुचि, दृष्टि, संबंध, धारणाएं, संगठित, प्रथम, समुचित, प्रधान, विस्तारपूर्वक, ललाट, भाव-भंगिमा, अत्यंत, भावना, मित्र, साक्षी, पृथ्वी, स्थिति, भिन्न–भिन्न, धर्म, स्वप्न, आगामी, स्थिर, पलक, दृष्टि, यद्यपि, सम्पन्न, पुत्र, भीषण, सौन्दर्य, पुन: सम्प्रदाय आदि।

अब्दुल बिस्मिलाह ने अपने सभी उपन्यासों में चित्रित परिवेश के अनुसार ही भाषा का प्रयोग किया है। इनके उपन्यासों में तत्सम शब्दों का जो प्रयोग हुआ है वह सायास है। तत्सम शब्दों के साथ ही बिस्मिल्लाह जी ने तद्भव शब्दों का प्रयोग अपनी भाषा को सहज और सरल बनाने के लिए करते हैं। तद्भव शब्दों के साथ स्थानीय बोलियों का संयोजन कर कथानक को परिवेशानुकूल ढालकर प्रस्तुत करना अब्दुल बिस्मिलाह की अपनी विशेषता है। इस तरह के शब्दों के प्रयोग से इनकी भाषा में स्वाभाविकता की स्पष्ट झलक दिखती है। इनके कथा-साहित्य में प्रयुक्त स्थानीयता को ध्वनित करते कुछ शब्द इस प्रकार हैं-

देशज शब्द

देशज शब्दों का संबंध लोक-जीवन है। किसी भी भाषा के शब्द जब लोक-जीवन में आते हैं और उसमें जब स्थानीयता का छौंका लग जाता है तो वह शब्द देशज या ठेठ रूप में प्रयुक्त होते हैं। भाषा की देशजता के संबंध में काशीनाथ सिंह ने 'दंतकथाओं में त्रिलोचन' रेखाचित्र में भाषा की स्थानीयता एवं देशजता का जो चित्र अपने माँ के माध्यम से खींचा है वह अद्भूत है। अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों के केंद्र में भी स्थानीयता का बोध अधिक है। 'झीनी झीनी बीनी चदरिया', 'मुखड़ा क्या देखे', 'ज़हरबाद', 'समर शेष है' एवं कुठाँव उपन्यासों में स्थानीयता का दर्शन होता है। स्थानीय या ठेठ शब्दों

के प्रयोग से कथा में रोचकता आ गई है। बिस्मिल्लाह जी अपने भाषाई कौशल एवं मौलिकता से इन उपन्यासों को बहुत ही प्रभावी बना दिया है। इनके उपन्यासों में प्रयुक्त देशज शब्दों के कुछ उदहारण द्रष्टय है-

नोई, खरका, गोदला, छूला, खरका, डंग्गा, भोंड, चरका, छाका, गोई, ऐरन, कंदरी, मड़ई, खोरी, चिकारा, कंडा, खंडा, काठ, खुमरी, रौं, सोंहारियाँ, नोई, परछी, डेंगरखोरी, खुजलैयाँ, फुलरा, गाँती, मोटो, झंपली, बारी, नर्बदा, जोकराइन, डोक्के, फुरहरी, कुटकी, दुऔलिया, पैना, गुहूँ , गउवों, चिकट, बिजूका, हरनी-पानी, ठोलाकोटवार, निरदोस, बिदवान, सकाडे, रेजा, गिरस्ता, बेठन, दूद, बरना, बैठकी, रिंधी, सुंसुआता, सिंधोरा, तुल्बा, कजनी, हौली, खडया, डागा, फरका, मनसेधू, भिम्मा, बरिहा, कोरो, चूली- दुआर, चकर-पकर, गिरस, मुसाफा, जोडिया, नेजामत, दहरिन, अयाँ, रग्गी, मूरख, परछी, भंइसिया, बिलैत, पौडर, मसीन, परेसानी, औंटाते, बखत, गोस, मछरी, नून, इबराहिम, टरेनिंग, बेसरम, सैकिल, इस्टाट, खपसूरत, परचार, बिस्वास, कुबेला, गर्दा, गदबेरा, चोरबत्ती(टार्च), इजार, तनज्जुली, बरसाती,मनई, मेहरारू, मिरचई, कुकुर, चिरई-चुनमुन, भकुआए, हंडिया, मुठिया, अउर, चरखवा, घास-पात, कउआ, बबवा, लावा, आतमा, गोरू, इस्कूल, ननियाउर, करईल, अस्तुरा, नोम्सकार, पुलुस, कहुली, काल्ह, निखरी, टेम, जुलूम, सोसण, निरदोस, अलहनै, बड़मनइन, भात, बरिहा, कोदो, एक जून, अम्मा, बलुई, मरद, ढेला, गाहकों, चूली-दुआर, सोउरी- बरही, सहर, सहल, मोलबी, ढरबा, लिबनचूस, बिस्कूट, माई-बाप, धरम, पेरानी, मुलां, सेर, सीघ्र, जुगाड़, बड़मनइन, फिकर, उनहिन, मिरजापुर, चेमेमोइयाँ, पुरखिन, नसेड़ी, बनिया, बतियाने, अगरेजी, दुधारू, दर्सन, पूरब, बूढ़-पुरनिया, सावां-कोदो, सोहारी, परधानमंत्री, बिसेस, सुक्कर, मलकाइन, मुलुर-मुलर, चढ़उना, चमरौधे, चप्पल, झुलनी, मूरख, भात, संझा, बुड़बक, पिट्ठू, बकार और मेहरारू आदि।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के यहाँ शब्द-चयन का आधार भाषा में सहजता, सरलता एवं बोधगम्यता से है। देशज शब्दों के प्रयोग से कथा और भी अधिक संप्रेषणीय हो जाती है। स्थानीय शब्दों के प्रयोग से कथा में सजीवता आ जाती है। ‘जहरबाद’ उपन्यास में छत्तीसगढ़ी का एक उदहारण द्रष्टव्य है-

“भाइगेदूजुवार क चारा बैलमान खातिर सकेल डारौ। काली क कली देखबौन। भगवान करा एसनेच हमार भाग में बदे रहे कि रात-दिन कमायन, चाउर पैदा करथन, रगद क पसीना बनउथन तोने पर डोकी मन दुरामन ला भर पेट खाये पर नाहि मिलै।”[16] स्थानीय बोली-बानी के कारण कथ्य में प्रवाहात्मकता आ गई है। छत्तीसगढ़ का मजदूर होने के कारण लेखन ने उसकी बोली का प्रयोग किया है, “आपन अम्माल कहला भगायदये रे ? वह बेचारी यहाँ ईटागारा ढोयै।”[17] स्थानीय शब्दों का प्रयोग ‘झीनी-झीनी बीनी चदरिया’ में भी खूब हुआ है। यह उपन्यास बनारस के बजरडीहा मोहल्ले के बुनकरों पर आधारित है। बजरडीहा के बुनकर और मदनपुरा के गिरस्ता(अढ़तिए) अपनी-अपनी बोली बोलते हैं। एक ही शहर के दो मुस्लिम समुदाय के लोगों की बोली में अंतर है। यह अंतर क्लास (जाति एवं वर्ग) को भी दर्शाता है।

उर्दू मिश्रित ठेठ बनारसी भोजपुरी का एक उदहारण द्रष्टव्य है-

तोहार नाव का है मट्टर साहब?

मुझे अब्दुल बिस्मिल्लाह कहते हैं।

...मैं नावेल निगार हूँ।

ओ ! जइसे हमरे इब्ने सफी अउर ए हमीद है। वाह मट्टर साहब।

इब्ने सफी का कोई जवाब नहीं। उ नवालिया क का नाँव है रे सरफुद्दिनवा जे के रस्मेएजरा में लाल बहादुर शास्त्री आये रहेन।”[18]बजरडीहा मुहल्ले में बनारसी साड़ी बुनने वाले अंसारी बुनकर रहते हैं जिनकी भाषा उर्दू मिश्रित भोजपुरी है। उपन्यासकार ने ‘झीनी-झीनी बीनी चदरिया’ में इसी भाषा का प्रयोग अधिक किया है।

“ कहाँ जाती रे ?”

---

[16]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2016). जहरबाद, पृष्ठ सं. 113

[17]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(216) . जहरबाद, पृष्ठ सं. 113

[18]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2008). झीनी-झीनी बिनी चदरिया, पृष्ठ सं. 87

अलीमुन ने पूछा तो नजबुनिया अनायास ही मुस्करा उठी।

"जाइला अपनी भउजी कियें।"

"तोरी भउजी क घरवाकेज्जन पड़ेते ?"

"बाकराबाद के लंगपड़ेते।"

"का करेहुवाँ जाती?"

हमरी भउजी की अम्माँ की तबीयत ख़राब है, उनहीं के देखे जाइला ।"[19]

'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' की यह जो भाषा है इसमें स्थानीयता में भी स्थानीयता यानी बजरडीहा मोहल्ले की भाषा है। बजरडीहा के बुनकरों यानी यहाँ के जुलाहों की यही बोली-बानी है जिसे बिस्मिलाह जी ने बहुत ही मनोयोग से पकड़ा है और उसे उपन्यास में प्रतिनिधित्व के तौर पर इस्तेमाल किया है।

स्थानीय बोली का बखूबी प्रयोग 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में भी हुआ है। यह उपन्यास इलाहबाद के ग्रामीण क्षेत्र, पश्चिमी मिर्ज़ापुर एवं मध्य प्रदेश के सीधी जिले के भाषाई परिक्षेत्र को ग्रहण करता है। उपन्यास में बैगा एवं गोंडी बोली को भी शामिल किया गया है। गोंड और बैगा समुदाय के पात्र अपनी बोली-बानी का प्रयोग करते हैं। देशजता का एक उदहारण द्रष्टव्य है-

सुम्मार को जाना ठीक नहीं होगा, मुरकी पूरब में हैं।

सोम सनीचरपूरब न चालू ।

मंगर बुध उत्तर दिस काल।

जाना है तो इतवार के दिन ही चले जाओ।[20]

एक दूसरा उदहारण द्रष्टव्य है-

"सान चढ़ाने के लिए पइसा चाही की नहीं? और रिवाज अइसा है कि बड़मनइन के हियाँसोउरी से लेकेबियाह के बखत तक लड़िकन क बाल मुफत में ही बनना पड़ता है। बदले में एक डब्बल नहीं मिलता।

---

[19]बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2008) झीनी-झीनी बिनी चदरिया, पृष्ठ सं. 57

[20]बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2003). मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ सं. 54

कहते हैं बियाह में नेग न लोगे क्या? अब तुम्ही सोचो, यही नियाव है का? मगर सब रिवाज तो बड़मनइन का बनाया हुआ है कि नहीं। कभी दुईपईसा -एक आना देंगे भी तो ऐसे मानो कर्ज दे रहे हैं।”[21] इस उपन्यास में अधिकांश पात्र स्थानीय बोलियों में ही संवाद करते हैं। ठेठ देसी रंग में रंगे इस उपन्यास के पात्र अवधी एवं अवधी मिश्रित बघेली का प्रयोग करते हैं। स्थानीयता का एक उदहारण- “ सूना है अब तक त कोऊ खाली हाथ लउटिस नाहीं। बाँझ मेहरारुन क गोदि भरिगऽ। जेकरे लड़किए-लड़की रहिन, ओकरे गोदी में बाबा खेलतबाटै। अरे हमरे गाँव क भागैअहै कि कजनी कहाँ से अउतारित होइ गये न महतमाजी। चलौ बहिन कउनौ दिना हमहूँ चलि के दरसन कइ आवैं।”[22]

अब्दुल्ल बिस्मिल्लाह का प्रारम्भिक समय इसी क्षेत्र में बीता है इस लिहाज से उन्होंने इस क्षेत्र की बोलियों का बहुत ही सहजता से प्रयोग किया है। ‘ज़हरबाद’ उपन्यास में भी लेखक ने स्थानीयता का पूरा ख्याल रखा है। गोंडी और बैगा भाषाओं का समावेश पात्रानुकूल हुआ है। उपन्यास में मैसू का जो चरित्र है वह बैगा जाति से और वह अपनी बोली में ही बात करता है। एक उदहारण द्रष्टव्य है- “हाल-चाल ठीक है न मैसू भाई? मचिया पर बैठते हुए अब्बा ने पूछा तो चोंगी बुझाकर उन्होंने एक ओर रख दी और नाक से अंतिम बार धुआँ निकालते हुए कुछ बोलना चाहा कि खाँसी आ गयी। ठौंके-हवे मुंसी जी, तैं आपन बताव, कइसे चले?”[23] अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने पात्रों की भाषा को लेकर बहुत सजग हैं। इनके स्थानीय पात्र अपनी भाषा के साथ ही उपस्थित होते हैं। इनके सभी उपन्यासों में स्थानीय बोलियों के अलावा समुदाय विशेष की भाषा भी पात्रानुकूल है। बैगा एवं गोंड समुदाय के लोगों के लिए बिस्मिल्लाह ने उन्हीं के बोलियों का सहारा लिया है। इन बोलियों एवं भषाओं के माध्यम से कथा में यथार्थता और भी अधिक घनीभूत हो जाती है।

उर्दू, अरबी एवं फारसी के शब्द

---

[21]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2003). मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ सं. 34
[22]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2003). मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ सं. 239
[23]बिस्मिल्लाह, अब्दुल(2016). ज़हरबाद, पृष्ठ सं. 11

अब्दुल बिस्मिलाह के लगभग सभी उपन्यासों में मुस्लिम पात्र हैं जिस कारण से भाषा में उर्दू, अरबी, फारसी के शब्द आते हैं, लेकिन ये शब्द दुरूह नहीं है, बल्कि आम बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले शब्द हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने आम बोलचाल में बोले जाने वाली उर्दू शब्दों का प्रयोग किया है। बतौर उदाहरण उनके उपन्यासों में कुछ प्रयुक्त शब्द द्रष्टव्य हैं-

अनार, अन्दाज़, अफ्सर, अजीब,कब्र, कलई, कानून , रोबार, बाज़ार, शकल, हकीम, काफिर, खाली, खास, खिलाफ़, ख़ुद, बेगम, आवारगी, मरहूम, अश्क, अब्बा, अरमान, आगाही, अब्बा, आतिशबाज़ी आबादी, ग़ालिब, मुताल्लिक, तब्दील, तरह, तलाक़, निकाह, अक्ल, अक्सर, अज़ान, शौहर, जबान, ख़िदमत, कंदील, कम, वालिदा, असीम,इज़हार, रहमदिल, लफ़्ज, आखिर,अदा, अमानत, रोशनख़याली, हिमायत, बगावती, खवातीन, जज़्बात, कद्रदानी, आप, गरीब,असलियत, कतान, संजीदगी, पुख़्तगी,अल्लाह, इंतज़ाम, इंसान, इंसाफ, मुख़्तसर, तब्दीली, हुकूमत, गुलाम, जनाब, जवाब, जेब, हुक़्मपरस्त, आरामतलबी, फ़रमाइश, तसल्ली, बगावत, गलतबयानी, इज़ाजत, ईद, उर्फ, ऐलान, एहसान, औकात, इंतकाल, निकाह, कत्ल, तारीख, नज़र रुख़सती, कौम, मुख़ालिफ, शबनम, फ़रिश्ते, औलाद, कबीर, लियाकत, मज़हब, कर्ज, कामयाब, खामोश, खुराक, खानदान, खून, खूबसूरत, गोश्त, गन्दगी, गुमराह, ज़मीन, जायदाद, दस्तकार, ज़ेवर, ताज़गी, दरकिनार, निशान, कुर्बान, सुलूक, एतबार, सियासत, तजुर्बेकार, बाशिंदा, उसूल, तकलीफ़, फर्क, इशारा, और ख़्वाब , जिन्दगी, आदि।

अंग्रेजी के शब्द

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अंग्रेजी भाषा के प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी अपने कथा-पात्रों से सहजता के साथ करवाया है, अंग्रेजी के शब्द भी स्थानीय बोली-बानी में इस तरह समाहित हो गए हैं जैसे लगता ही नहीं है कि ये शब्द अंग्रेजी के हैं। अंग्रेजी के कुछ प्रमुख शब्द हैं- मास्टर, प्राइवेट, प्रिंसिपल, ट्यूशन, प्रेयर, आवर्स, कंटीन्यू, ट्रेनिंग, वेंट, थैंकयू, बेड, फीस, ट्रेडमार्क, रिमार्क, ऑपरेशन, पार्क, टेस्टवर्क, स्मार्ट, एडमिशन, मैच बाक्स,फोल्डिंग, मॉडल पेपर, एसोसियेशन, मूविंगचेयर, कॉलेज, शॉप्स,

फारच्च्यूनेटसिस्टम, फंड, ग्रेच्युटी, स्टेशन, मार्डर्न, विलेज, प्लेटफार्म, एडवर्टाइज़, जनरल नॉलेज, को-आपरेटिव सोसाइटि, प्लीज, ग्लोबल-वार्मिंग, प्लेटफार्म, बेंच, ओजोन लेयर, क्रीम, ड्राइंग रूम, लॉजिक, सेंटेंस, ट्रांसलेशन, बस स्टैंड, स्लीवलेस स्वेटर, प्रोग्राम, स्काई, रिपोर्ट, पार्क, फॉर, ऑर्डर, फिलासफी, चैयरमैन, कप, प्लेट, पार्टनर, टॉनिक, ब्रेसरी, टेप-रिकार्डर्स, टू-इन-वन, इलेक्शन, एडीटोरियल, कमेण्ट्री, बाथरूम, हॉस्टल, ब्लडी, बास्टर्ड, ड्यूटी, पेंट, कोट, टाई, ट्रे, नाइंथ, गाड, ग्रेट, ड्राइंग रूम, हीरोइन, स्टार्ट, प्राइवेट, किचेन, कैरेक्टर्स, स्ट्राइकर, अप्रूव, रिसर्च, आर्ट, इंजीनियर, लैट्रिन, टंबुल, प्रोग्राम, डाक्टर, टेलर्स, हेयरकटिंग, डाईक्लीनिंग, बिजनेस, टाइम, आई लभ यू, इंस्पेक्शन, गारंटी, पोस्ट मास्टर, बिजी, कोर्ट, टेबुल, फादर, माई, ही, एक्चुअली, वाज, डैडी, सीरियस, हेल्थ, टॉप, फ्रेण्ड, इनवाइट, पैसेंजर, ट्रेन, , प्लेटफार्म, ट्रैफिक, डाटर, सन, इंपोर्टेट, सेक्रेटरी, म्युन्सिपैलिटी, एक्रास, लैंप पोस्ट, बॉडीगाड, टोन, क्लाउड्स, टैबलेट, मेंटलिटि, पोस्ट आफिस, ऑपरेशन, डिनर, स्टार्ट, सिगरेट, डॉक्टर, इज, मार्केट-वाल्यूसोर्स, प्रैक्टिस सिविल, गो, एंड, कोर्स, टीचर, वाश, और रिपोर्ट आदि।

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने सभी उपन्यासों में मिश्रित भाषा का प्रयोग बहुत ही सहज रूप में किया है। मिश्रित भाषा का प्रयोग इन्होंने हिंदी, उर्दू एवं अंग्रेजी के रूप में किया है। 'रावी लिखता है' उपन्यास का एक उदहारण दृष्टव्य है- "ही बाज माई फादर।" यह भी कोई अंग्रेजी है। हम उन्हें सिखाते, "बाज नहीं डैडी, वाज बोला कीजिए। और फादर नहीं फ़ादअ। आर साइलेंट होता है।" डैडी बुरा नहीं मानते थे। हँसकर कहते, "बेटा, आप जैसी अंग्रेजी मैं नहीं बोल सकता।" फिर माने हमें चिढ़ाने के अंदाज में बोलते, "अच्छा गो एंड हाथ-मुँह वाश करके आओ। डिनर इज तैयार।"[24] इस उद्धरण में अंग्रेजी के शब्दों के प्रयोग से किसी बुजुर्ग पिता और बेटे के संवाद में स्वाभाविकता आ गई है। अब्दुल बिस्मिल्लाह की भाषायी रचनात्मकता उनके समकालीनों से बिल्कुल अलग है। इनकी रचनाशीलता किसी खाँचे, साँचे अथवा ढाँचे में बँधी हुई नहीं है। कथ्य के अनुरूप भाषा एवं शैली का गठन बिस्मिल्लाह के यहाँ

[24]बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2010). रावी लिखता है, पृष्ठ सं.9

सहज ही उपस्थित होता है। इसी तरह ‘मुखड़ा क्या देखे’उपन्यास में भी मिश्रित शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस उपन्यास के प्रारंभ में ही उपन्यास का पात्र लल्लू एक गाना गा रहा है जो हिंदी अंग्रेजी शब्दों का एक पैरोडी है-

‘‘डोंट टच माइ बाडी मोहन रसिया।

हाँ मोहन रसिया

हो मोहन रसिया

डोंट टच माइ बाडी मोहन रसिया।

यू आर ए सन आफ श्री बिंदाराबन,

एंड आइ एम ए डाटर आफ

गोकुल रसिया।

डोंट टच माई बाडी मोहन रसिया...[25]

‘मुखड़ा क्या देखें’ उपन्यास में अंग्रेजी के शब्दों के प्रयोग के साथ ही अंग्रेजी मिश्रित वाक्यों का प्रयोग देखने को मिलता है। अंग्रेजी मिश्रित भाषा का प्रयोग बिस्मिल्लाह जी ने जिस तरह से किया है उससे भाषा में रोचकता आ गई है। एक और उदहारण द्रष्टव्य है- “ नो, नो अब मैं एक सीरियस मैन हो गया हूँ। तुम इंग्लिस नहीं जानते। इसीलिए हिन्दी में बात कर रहा हूँ। वट एवहरी व्हेयर आई यूज टू टाक इन इंग्लिस। लखनऊ में एक कंपिटीसन हुआ था इंग्लिस टांकिंग का, उसमें मैं फर्स्ट आया हूँ।’’[26]अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अंग्रेजी मिश्रित वाक्यों के प्रयोग से लोक जीवन की सुंदर झांकी को प्रस्तुत किया है।

मिश्रित भाषा के माध्यम से जीवन का वह स्वरूप प्रस्तुत होता है जिसे हमने अन्य संस्कृतियों से ग्रहण किया है। अन्य संस्कृतियों से आए ये शब्द कई बार अपने मूल से बाहर निकलकर स्थानीयता को ग्रहण करते हैं। इस प्रक्रिया में लोक-जीवन में भाषा का वही स्वरूप नहीं रहता जिसका वह अर्थ होता है,

[25]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2003). मुखड़ा क्या देखें, पृष्ठ सं. 9

[26]: अब्दुल, बिस्मिल्लाह.(2003). मुखड़ा क्या देखे पृ. 187.

बल्कि लोक जीवन में भाषा जुबान पर चढ़कर अपनी अलग लय बनाती है अर्थ भी बदलता रहता है। 'मुखड़ा क्या देखें' उपन्यास से एक उदहारण द्रष्टव्य है-

रिवरस्ट्रीम न जाओ डियर

फुटवा पड़ूँ

रिवरस्ट्रीम गए तो गयबे करे

उसके ओभर गए तो गयबे करे

सेकंड वाइफ न लाओ डियर

फुटवापड़ूँ..[27].

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने पात्रों को गढ़ते हुए भाषा का विशेष ध्यान रखा है। उपन्यास 'मुखड़ा क्या देखें' ग्रामीण पृष्ठभूमि पर उपन्यास है। इस उपन्यास में जाति, धर्म, बेरोजगारी, पारिवारिक समस्या आदि प्रश्नों को उठाते समय भाषा के प्रवाह एवं कथा की गतिशीलता को ध्यान में रखा गया है। इस उपन्यास में नौटंकी का जिक्र कई बार हुआ है। लल्लू जो एक भाड़ का बेटा है नौटंकी वालों का बखूबी नकल उतारता है। उपन्यासकार ने अंग्रेजी मिश्रित भाषा का प्रयोग लल्लू के माध्यम से किया है। लल्लू कहता है-

"आई एम लल्लू। सन ऑफ़ क्वीन विक्टोरिया।

यूडैम फूल। नोनो, माईफादर। माईगाड।"[28]

अब्दुल बिस्मिल्लाह के यहाँ अंग्रेजी के जो भी वाक्य है वह इसी तरह है। इनके उपन्यासों का कोई भी पात्र अंग्रेजी के वाक्यों का प्रयोग नहीं करता बल्कि अंग्रेजी मिश्रित वाक्यों का प्रयोग करता है, क्योंकि इनके उपन्यासों के अधिकांश पात्र ग्रामीण पृष्ठभूमि या शहरी निम्न वर्ग या निम्न मध्यवर्गीय होते हैं। 'रावी

---

[27]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2003). मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ सं 21

[28]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2003). मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ 30

लिखता है' उपन्यास में अंग्रेजी के कुछ शब्दों का प्रयोग अवश्य हुआ है, लेकिन कोई भी पात्र धड़ल्ले से अंग्रेजी नहीं बोलता। यदा-कदा अंग्रेजी के कुछ शब्द आ जाते हैं जो आम बोलचाल में प्रयुक्त होते हैं।

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने कथा साहित्य में भाषागत विविधता को अपनाया है। संस्कृत भाषा को भी इन्होंने अपने उपन्यासों में प्रयुक्त किया है जो पात्रानुकूल है। 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास नौटंकी के दौरान ही सृष्टिनारायण पाण्डेय और आचार्य शिवपूजन तिवारी में शास्त्रार्थ होता है जिसे बिस्मिल्लाह जी ने संस्कृत भाषा के श्लोकों के माध्यम से व्यक्त किया है। कुछ उदहारण द्रष्टव्य है- "शास्त्रार्थ आरंभ हुआ। आचार्य शिवपूजन तिवारी ने खखारकर गला साफ किया, फिर सृष्टि नारायण की और चुनौती-भरी दृष्टि से देखते हुए "अहमन्नम् अहमन्नम् अहमन्नम् का उच्चारण किया और बोले सृष्टिनारायण इसके अंतर क्या हैं?

अहमन्नादो अहमन्नादो अहमन्नद। यह मन्त्र तैत्तिरीय उपनिषद् का है, पहली पनकी का कहती है: मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ।

सृष्टि नारायण पाण्डेय ने तपाक से उत्तर दिया। आचार्य की भंगिमा परिवर्तित हुई बोले:

'अच्छा यह बताइए कि उक्षादाधार पृथिवी मुतद्याम के टक्कर का भी कोई मंत्र है?"[29]

सृष्टिनारायण पाण्डेय एवं आचार्य शिवपूजन तिवारी के बीच हो रहे शास्त्रार्थ को बिस्मिल्लाह जी ने संस्कृत के श्लोकों एवं मंत्रों के माध्यम से चित्रित किया है। संस्कृत के इन श्लोकों को लेखक ने व्याख्यित भी किया है। लेखक ने गायत्री मंत्र को भी इन्हीं पात्रों के माध्यम से चित्रित किया है।

''न विष्णु पासनानित्यावेदनोक्तातुकस्याचित
न विष्णुदीक्षानित्यास्तिशिवस्यापितथैव च।
गायत्र्युपासनानित्यासर्ववेदै: सनीरिता
मया बिना त्वध: पातोब्राह्मणस्थास्ति ।।[30]

---

[29]बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2003) मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ 13

[30]बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2003) मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ 14.

विष्णु की नित्य उपासना करना वेदों में नहीं कहा गया है और न ही विष्णु की दीक्षा और शिव की दीक्षा ही नित्य है। परन्तु गायत्री की नित्य उपासना वेदों में कहीं गयी है। वेदो, पुराणों, गायत्री मंत्र एवं संस्कृत व्याकरण का उल्लेख शास्त्रार्थ के दौरान लेखक ने किया है। इससे स्पष्ट होता है कि अब्दुल बिस्मिल्लाह ने भाषा के वैविध्य को अपनाकर सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता को भी सजग रूप में चित्रित किया है।

लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग-

लोकोक्तियाँ लोक समाज की स्थानीय बोलियों में हर दिन की परिस्थितियों एवं संदर्भों से उपजे वैसे पद या वाक्य होते हैं जिसे किसी खास समूह, उम्र, वर्ग या क्षेत्रीय दायरे में प्रयोग किया जाता है। इसमें स्थान विशेष की संस्कृति, भाषाओं के मिश्रण इत्यादि की झलक मिलती है। लोकोक्ति आश्रित वाक्यांश न होकर स्वतंत्र वाक्य होते हैं। इन वाक्यों में जनता के अनुभवों का निचोड़ या सार होता है सामान्यतः इनकी उत्पत्ति एवं रचनाकार ज्ञात नहीं होते। लोकोक्ति में लोक ज्ञान का समावेश बहुत ही संक्षिप्तता के साथ किया गया था । यही कारण है आमजनमानस की जुबान पर लोकोक्ति रहती है, इसके लिए अलग से प्रयास करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। देशज एवं ठेठ बोली-बानी के संवादों में लोकोक्तियों का प्रयोग अधिक होता है। इस क्रम में देखें तो हम पाते हैं कि अब्दुल बिस्मिल्लाह के अधिकांश उपन्यासों के केंद्र में स्थानीयता का भाव प्रबल है।

मुहावरा अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है बातचीत करना या उत्तर देना। कुछ लोग मुहावरे को 'रोज़मर्रा', 'बोलचाल', 'तर्ज़ेकलाम' या 'इस्तलाह' कहते हैं, लेकिन इनमें से कोई भी शब्द 'मुहावरे' का पूर्ण पर्यायवाची नहीं बन सका। कुछ लोग इसके लिए 'प्रयुक्तता', 'वाग्रीति', 'वाग्धारा' आदि के रूप में चिन्हित करते हैं। इस सन्दर्भ में वी. एस. आप्टे ने अपने 'इंग्लिश-संस्कृत कोश' में मुहावरे के पर्यायवाची शब्द को 'वाक्-पद्धति', 'वाक् रीति', 'वाक्-व्यवहार' और 'विशिष्ट स्वरूप' आदि से अभिहित किया है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि जिस सुगठित शब्द-समूह से लक्षणाजन्य और कभी-

कभी व्यंजनाजन्य कुछ विशिष्ट अर्थ निकलता है उसे मुहावरा कहा जा सकता है। मुहावरे की वजह से भाषा सुदृढ़, गतिशील और रुचिकर बन जाती है। मुहावरों के प्रयोग से भाषा में एक चित्रमयता आ जाती है। मुहावरों के बिना भाषा निस्तेज, नीरस और निष्प्राण हो जाती है। मुहावरे एवं लोकोक्ति से कथ्य में गतिशीलता आ जाती है। मुहावरों का वाक्य में प्रयोग किया जाता है, जबकि लोकोक्ति का ज्यों का त्यों प्रयोग किया जाता है। मुहावरे का उपयोग क्रिया के अनुसार बदल जाता है, लेकिन लोकोक्ति का प्रयोग करते समय इसे बिना बदलाव के रखा जाता है। अब्दुल बिस्मिलाह अपने कथा साहित्य में लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग आवश्यकतानुसार किए हैं। स्थानीय भाषा का जहाँ भी प्रयोग हुआ है वहाँ लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग किया गया है। लोकोक्ति के प्रयोग से देशज भाषा और भी अधिक अर्थवत्ता के साथ आया है। कई बार लेखक अपनी बातों को पुष्ट करने के लिए भी लोकोक्ति का सहारा लेते हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने उपन्यासों में लोकोक्ति एवं मुहावरों के माध्यम से भाषा में छौंका लगाया है। ध्यातव्य है कि प्रत्येक भाषा में अनेक ऐसे विशेष शब्द प्रयुक्त होते हैं जो भाषा के सौंदर्य को बढ़ाकर उसे अधिक प्रभावी बनाते हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में प्रयुक्त लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से भाषा सहज, आत्मीय और अधिक सजीव हो गई है। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' 'मुखड़ा क्या देखे', 'कुठाँव', 'समरशेष है' एवं 'ज़हरबाद' उपन्यास में लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग अधिक हुआ है।

उपन्यासों में प्रयुक्त लोकोक्तियाँ-

''करियाअच्छर, भँइसबरोबर।''

"बिन घरनी घर भूत का डेरा।''

"माईहोत त मौसी के काहे गोहराइत।"

"मूड़मुडाएतिन नफ़ा। गर्दन मोटा, सिर सफा, दुईपइसा का तेल बचा।"

‘‘घर का जोगीजोगडा आन गाँव का सिद्ध।’’

‘‘पानी में रहे के है त मगरमच्छ से भला वैर।’’

“माटी की हांडी गई सो गई।”

“दाई से पेट मतछुपाओ।”

‘‘कोउ नृप होय हमें का हानी, चेरी छाँडनहोउबैरानी।’’

‘‘जब अपनी सोना खोट त परखैया के का दोस।’’

‘‘सौ बीमारों के एक अनार।’’

जाकेअँगना बहे नदी, सो क्यों मरे पियासा ?

“चीलर के डर से कोई अपनी कथरी छोड़ देगा।”

‘‘जब राजा नल पर विपत परी तब भूँजीमछरी जल में गिरी।’’

“जेकर बंदरिया उहै से नाचै।”

“सुमिरथ को नहिदोसगोसाईं।”

“पापी मरे न खंडहर ढहे।”

‘‘आपन घर में अंधियार करके मंदिर में गए हैं दिया बारने।

“बिल्ली के भाग से छींका टूटना।”

“पेटै के कारननाचतगावत, पेटै के कारन बाजा बजावत।”

“जहाँ पेड़ न रुख वहाँ रेंडैमहापुरुख।”

“न कहीं चिरई, न चिरई क पूत।”

“लरिकन के हम छुइतनाँहीं, जवानन के न सताई। बुढ़वन के हम छोडितनाँहीं,केतनौ ओढ़े रजाई।”

“गुरु से कपट मित्र से चोरी. या होयआँधर या होय कोढ़ी।”

लोकोक्तियों की तरह ही मुहावरों का प्रयोग भी विविध स्थानों पर प्रसंग और प्रकरण के अनुरूप हुआ है। उपन्यासों में प्रयुक्त मुहावरे-

खेत खाए गधहा मार खाए जुलहा ,मुँह पर कालिख मल लेना, मुँह में राम बगल में छूरी ,किस्मत फूट जाना, दाँत पीसना ,सीधे का मुंह कुकुर चाटता है ,चेहरा लाल होना, लात के आदमी बात से नहीं मानते ,पेट में चूहे कूदना, खून पी जाना, चेहरा उतर आना, एक हाथ से ताली नहीं बजती है,कान पर जूँ न रेंगना,तारे नज़र आना, भीगी बिल्ली बनना, सुख और दुःख का साथ ,खून में हरकत होना,धूप में बाल सफेद करना, जैसी नीयत वैसी बरकत ,जी छोटा करना, गले लगाना, दिन-दूनी रात-चौगुनी, किसी की जान जाए और किसी का खिलौना, अण्डबण्ड बकना, कलेजा मुँह को आना, गला भर आना, ऊधम मचाना, खाट खड़ी करना, किस्मत लोढ़ा से लिखना, दिल बैठ जाना, मुँह बिचकाना, करेजा जलाना, माथे पर बल पड़ना, मुँह के बल लोट जाना, छिल के पेडा खाना, आँचल फैलाना, उठल्लू का चुल्हा, दाल में काला होना, छाती कूटना, मूँछ मुड़वाना, पट्टा लिखाना, सर मुड़ाते ओले पड़ना आदि। मुहावारों के प्रयोग से कथ्य में गतिशीलता आ जाती है। मुहावरों के प्रयोग के सन्दर्भ में कुछ उदहारण द्रष्टव्य है।

"शरिफवा इस ताक में रहता है कि बाप इधर-उधर हटे तो कन्नी काटकर सरक जाय। उसके दोस्त कब्रस्तान में उसका इन्तजार करते होंगे। लातिफवा वैसे तो हटता नहीं पर पान-वान की तलब लगती है तो हटना पड़ता है। बिना नासा-पानी के काम नहीं होता नहीं। लातिफवा हटा की शरिफवा बाहर।"[31]

नरेश हमेशा शुद्ध बनारसी में बोला करता। उसकी भाषा में स्त्रीलिंग का प्रयोग बहुत होता। रामभजन को देखकर कभी कभी शुद्ध बलियाटिक भी बोलने लगता। "आईं-आईं बइठी! रउवा के कहाँ जात बानी? और रामभजन खिल उठता।"[32]

सरफुद्दीन बहुत अत्यंत सक्त लहजे में उससे सवाल करता और अपनी क्रूर आँखेमतीन के चेहरे पर टिका देता है।"[33]

"मगर बिट्टन खाला मानें तब न, तुम तो जानती हो छील के पेड़ा खाती हैं वो।"[34]

" 'मगर वहाँ से वो पढ़-लिखकर लौटेगा तो कितना बड़ा साहब बनेगा, पता है?' अच्छा-अच्छा, बस करो अब ! वही मसल है कि रहें भूईं चाटे बादर।"[35]

लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग से अब्दुल बिस्मिल्लाह ने उपन्यासों में सहजता प्रदान की है। उपन्यासों में प्रयुक्त इस तरह की शिल्प पद्धति से कथ्य में सजीवता आ जाती है। समग्रता में देखें तो अब्दुल बिस्मिल्लाह के सभी उपन्यासों में लोकोक्तियों और मुहावरों का बखूबी प्रयोग दृष्टिगत होता है। अपने समकालीन कहानीकारों की तुलना में अब्दुल बिस्मिल्लाह लोकोक्ति और मुहावरों का अधिक प्रयोग करते दिखते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि लोकोक्ति और मुहावरों के संदर्भ में यह मान्यता है कि यह जनसाधारण की भाषा के मध्य उनके परिवेश, संस्कृति और जीवन-शैली से प्रभावित होते हुए

[31]बिस्मिल्लाह,अब्दुल .(2008). झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ सं. 32
[32]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2008). झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ सं. 61
[33]बिस्मिल्लाह,अब्दुल .(2008). झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ सं. 93
[34]बिस्मिल्लाह,अब्दुल .(2003). मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ सं. 82
[35]बिस्मिल्लाह,अब्दुल .(2003). मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ सं. 62

व्युत्पन्न होते हैं। चूँकि अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों का केंद्रीय पक्ष ही जनसाधारण रहा है। शायद इसलिए इनके साहित्य में निम्न मध्य वर्ग के-बीच विशेष रूप से प्रचलित लोकोक्ति और मुहावरों का सहज रूप से प्रयोग होना स्वाभाविक प्रतीत होता है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने उपन्यासों में पात्रों के चरित्र द्वारा समाज की विसंगतियों, विद्रूपताओं और रूढ़ियों को अभिव्यक्ति किया है। निम्न-मध्यवर्ग के पात्रों का चयन एवं उनके अनुकूल भाषा का प्रयोग करके बिस्मिल्लाह कथ्य में स्वाभाविकता का भाव प्रविष्ट कराने में पूर्णतः समर्थ हैं। इसका परिणाम यह निकलता है कि पाठक स्वयं को कहानी के साथ जुड़ने पर विवश हो जाता है। सशक्त पात्रानुकूल भाषा होने के कारण अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों के पात्र पाठक को संघर्ष की प्रेरणा देते हैं साथ ही अधिकांश कथ्यों से गुजरते हुए पाठक उपन्यास में घटित घटना को अपने साथ घटित हुआ महसूस करता है।

कथोपकथन या संवाद शैली

किसी भी पात्र का संपूर्ण परिचय उसके संवाद में निहित होता है। पात्रों के संवाद के माध्यम से ही हम उसकी रूचि, संस्कार, जीवनदृष्टि, वैचारिक समझ को जानते समझते हैं। संवाद के माध्यम से कथावस्तु को विस्तार मिलता है और तथ्यों को उद्घाटित करने में सहजता भी होती है। कथोपकथन शैली के संदर्भ में डॉ. प्रताप नारायण टंडन कहते हैं कि - "कथोपकथन अथवा संवाद-योजना कहानी का चौथा मूल उपकरण है। सैद्धांतिक दृष्टि से तो कहानी के प्राय: सभी तत्त्व परस्पर संबद्ध होते हैं, परंतु व्यावहारिक दृष्टिकोण से कथोपकथन का संबंध पात्रों से अधिक घनिष्ठ होता है। कहानी में नियोजित पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप के लिए ही इस तत्त्व का समावेश कहानी में किया जाता है। पात्रों तथा कहानी के अन्य तत्त्वों की भांति ही कथोपकथन के क्षेत्र में भी पर्याप्त विविधता मिलती है।"[36] डॉ. प्रताप नारायण

[36] *टंडन, डॉ .(1970). प्रताप नारायण .हिंदी कहानी कला, पृष्ठ सं. 332*

टंडन के इस कथन से स्पष्ट है कि कहानी के विविध उपकरणों में से कथोपकथन का विशेष महत्त्व होता है। संवाद शैली के सन्दर्भ में गुलाब राय का मंतव्य है कि- "कथोपकथन या वार्तालाप द्वारा ही हम पात्रों के हृदयगत भावों को जान सकते हैं। यदि वार्तालाप पात्रों के चरित्र के अनुकूल न हो तो हम उनके चरित्र का मूल्यांकन करने में भूल कर जाएंगे।"[37] संवाद कथा साहित्य का एक उपयोगी और अनिवार्य तत्त्व है जिसके माध्यम से कथा में गतिशीलता बनी रहती है और पाठक जुड़ाव महसूस करता है। कथा साहित्य में कथोपकथन अथवा संवाद शैली की उपयोगिता एवं उसके महत्व के संदर्भ में आचार्य नंददुलारे वाजपेयी की यह टिप्पणी उल्लेखनीय है- " कथोपकथन कहानी का छोटा, स्वाभाविक और प्रभावी अंश होता है। उसका प्रत्येक शब्द सार्थक और सोद्देश्य होना चाहिए। बड़े संवादों के लिए कहानी में स्थान नहीं होता। कहानी के कथोपकथन ऐसे न होने चाहिए जो स्वतंत्र रूप से पाठक का ध्यान आकृष्ट कर उसे विलमाते चलें या कथा के प्रवाह में किसी प्रकार का विक्षेप डालें।"[38]पात्रों के संवाद से कहानी सुगठित होती है। कथोपकथन अथवा संवाद शैली के प्रयोग की सुदीर्घ परंपरा रही है। उपन्यासों में संवाद शैली न हो तो मुश्किल होता है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह कथोपकथन या संवाद शैली का प्रयोग अधिक करते हैं। इनके सभी उपन्यासों में इस शैली का प्रयोग हुआ है। इनके पात्र स्वयं उपस्थित हो अपनी बात कहते हैं। इस शैली में पात्रों के हवाले से लेखक को बहुत कुछ कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उपन्यास के संवाद छोटे, कई बार आवश्यकतानुसार लम्बे भी होते हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में संवाद न तो बहुत छोटे हैं और न ही बहुत बड़े। झीनी-झीनी बीनी चदरिया का एक उदहारणद्रष्टव्य है- लतीफ घर लौटता है तो अपने दरवाजे पर मतीन को बाहर निकलता हुआ देखता है। लूंगी का टोंका उठाये, मैला-सा कुर्ता पहने, टोपी लगाये ... लतीफ को देखकर वह अपने-आप ही खड़ा हो गया।

"कहो म्याँ कइसे आये रहेव?"

---

[37] टंडन, डॉ. प्रताप नारायण .(1970). *हिंदी कहानी कला.* पृष्ठ सं. 332

[38]टंडन, डॉ .(1970). प्रताप नारायण .हिंदी कहानी कला, पृष्ठ सं. 333

"बइठो त बात होय?"

"आओ।"

और दोनों जने करघे वाले कमरे में घुसकर बैठ गये।

"दस जने क दसखत हो गोवा है। बीस आदमी अउर चाहिए। कोसिस करौ।"

"होइ ए म्याँ, सब होइए, पर इ पूछ लिये हौ न कि रुपिया मिलिए ?"

"हाँ म्याँ, मिलिए काहे ने ?"

"तब होइ एस बुरकरौ। बस उ हनिफबै बूरचोदी के हरामी है। भोसडियावाला दलाली करेते।"

"चलौ कउनौ हर्जा नहिने।"

"केतना मिलिइ म्याँ?"

"करीब-करीब साठ हजार जरुर से मिलिए। दु-दु हजार एक-एक जने के।"

"बहुत है म्याँ, बहुत है!"[39]

यहाँ पर कथाकार ने सरकारी लोन लेने में किस तरह की समस्या आती है और लोगों के जेहन में किस तरह का सवाल उठता है को मतीन और लतीफ़ के बातचीत के माध्यम से प्रस्तुत किया है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इस उपन्यास में स्थानीय भाषा का प्रयोग करते हुए संवाद शैली का प्रयोग किया है। इस उपन्यास के सभी पात्र बातचीत करने के लिए स्थानीय बोली का प्रयोग करते हैं।

संवाद शैली की अनिवार्यता पर बल देते हुए जगन्नाथ प्रसाद शर्मा कहते हैं-- "संवाद से अन्य सभी तत्वों का सीधा संबंध होता है। संवाद जहां एक ओर कथा के प्रसार का मुख्य साधन होता है, वहीं चरित्रोद्घाटन का भी, साथ ही देश काल का भी पर्याप्त बोध करा देता है। इस प्रकार साहित्य नाम से अभिहित होने वाले रचना के जितने भी रूप हैं, उनमें संवाद तत्व अनिवार्य होता है।[40]" संवाद शैली के माध्यम से कथा में परिवेश का भी उद्घाटन होता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह छोटे छोटे संवादों के-माध्यम

[39]बिस्मिल्लाह, अब्दुल(2018).झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ सं. 26
[40]शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद. (1961). कहानी रूप और संवेदना. पृष्ठ सं. 26

से पात्रों को बुलवाते हैं, जो कथानक को आगे बढ़ाते हैं। इनके यहाँ जो भी संवाद है वह किसी एक खास चित्र या कथानक को उभारने के लिए नहीं है, बल्कि वे इसके माध्यम से राजनीतिक संदर्भों, सामंतवादी व्यवस्था, जाति-व्यवस्था, पूंजीवादी लूट, पारिवारिक समस्याओं, मनोदशाओं एवं संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने में सहायक होते हैं। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में लेखक ने संवाद के माध्यम से ही सेठों, धार्मिक आडंबर, जाति व्यवस्था को चित्रित किया है।

मैं शैली में लिखा गया उपन्यास 'समर शेष है' में छोटे-छोटे संवादों के मध्यम से सामाजिक विडम्बनाओं को उद्धाटित किया गया है। 'समर शेष है' नायक 'मैं' और प्रेमिका 'छाया' का एक संवाद द्रष्टव्य है-

''हमें अब भूल जाइए। बस इतने दिन का ही साथ था। अब हम चले जाएँगे। जल्दी ही।''

छाया किसी यंत्र की तरह बोल रही थी। मैं चुप था।

''मुझे छोड़कर तुम चली जाओगी छाया? जा सकोगी ?

छाया फफकने लगी। क्षण-भर के लिए वातावरण थरथरा उठा। संसार की गति मानो रूक गयी थी। मैं ने उसे संभाला।

''मत रोओ छाया! जिन्दगी की सबसे बड़ी सच्चाई यही है।''

मेरे पास दिल के अलावा कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसे मैं दे सकूँ आपको...

''लेकिन मेरे पास एक चीज़ है''

मैंने हिम्मत करके जेब से कंगन निकाल लिए।

''अपनी कंगाली में मैं सिर्फ यही दे सकता हूँ तुम्हें, और कुछ नहीं। हालाँकि यह नकली कंगन है, लेकिन इसमें मेरा असली प्यार ......''

''आप क्यों ले आए यह।''

''इस सवाल का मेरे पास कोई जवाब नहीं है।''

''छाया कंगन के जोड़े को निहारती रही और उसकी आँखों से आँसू झरते रहे।''[41]

समकालीन समय के सशक्त कथाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह संवाद शैली का प्रयोग कर कथा को जीवंत और ग्राह्य बना देते हैं। इनके उपन्यासों में संवाद संयोजन की जो भी योजना दिखती है, वह अनायास जान पड़ते हैं। ऐसा कहीं नहीं लगता है कि संवादों का प्रयोग जानबूझकर किया गया है। इनके सभी उपन्यासों में संवाद है और ये संवाद पात्रों की बतकही का ऐसा मजमून प्रस्तुत करते हैं जिससे लगता है कि पाठक भी इस संवाद में शामिल है। 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में सामंती परिवेश, जातीय वैमनस्य एवं राजनीतिक खोखलेपन को लेखक ने संवाद शैली के माध्यम से व्यक्त किया है। इस उपन्यास से एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

''हम आए हैं पंडित जवाहरलालजी से मिलने के वास्ते। हमारे गाँव में एक ब्राह्मन हैं, रामवृक्षपाण्डे। बहुत जालिम हैं। हमें बेबात के मारा है। वही आए हैं शिकायत करने। जवाहरलालजी तो अपने ही जिले के हैं, अब राजा भी वही है, क्या अपने जिले की जनता के वास्ते कुछ न करेंगे?

पनवाड़ी अली अहमद की बात चुपचाप सुनता रहा, फिर कत्थे की गिलसिया में लकड़ी की चमची हिलाता हुआ बोला : ''देखो भइया, तुम मुझे सीधे जान पड़ते हो, या फिर किसी ने तुम्हें बेवकूफ बनाकर यहाँ भेजा है। पहली बात तो ये जान लो कि पंडित जवाहरलालजी से भेंट करना इतना सरल नहीं है। उनसे तो बड़े-बड़े लोग नहीं मिल सकते, हमारी-तुम्हारी क्या बिसात है ? फिर वे कहाँ मिलेंगे कहाँ : वे तो दिल्ली में रहते हैं। राजधानी तो वही है न।''

''मगर सुना है जवाहरलाल जी पहले के राजा लोगों की तरह नहीं है। वे प्रधानमंत्री हैं। उनका काम है देश की देखभाल करना और इसके वास्ते उन्हें तनख्वाह भी मिलती है। तो यह तो वैसे ही है जैसे नौकरी। और इलाहाबाद में उनका घर है तो छुट्टी में तो ज़रूर आते होंगे। आजकल गर्मी की छुट्टी है कि नहीं।''

[41]बिस्मिल्लाह, अब्दुल(2016) *समर शेष है*. पृष्ठ सं. 103

‘‘नहीं मेरे भाई, तुम्हें कुछ भी नहीं पता है। पहले के राजा और अब के राजा में बस इतना ही फरक है कि वे राजा कहाते थे, ये प्रधानमंत्री कहाते हैं...वे हाथी-घोड़े पर चढ़कर निकलते थे, यह मोटरकार में बैठकर निकलते हैं। बाकी सब ‘मगर हमारा देश तो अब आज़ाद हो गया है। जनता का राज है यहाँ।”

“हाँ है तो, मगर जनता तो, मेरे भाई इस चौराहे पर अपनी गुमटी में बैठी पान बेच रही है, राजकाज दिल्ली में चल रहा है।’’[42]

संवाद के स्तर पर इनके उपन्यासों में कहीं भी दुरूहता नहीं है। पात्र की मनःस्थिति और खीझ को भी बिस्मिल्लाह जी बहुत ही सरल एवं सपाट रूप में अभिव्यक्त करते हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह बिंबों एवं प्रतीकों के माध्यम से बात न कहकर सीधे कहते हैं। वह अपने अधिकांश उपन्यासों में पात्रों से संवाद करवाते हैं। इनके उपन्यासों में पात्रों के बीच एकालाप नहीं है, बल्कि वार्तालाप है। संवादों के प्रयोग से उपन्यासों में सजीवता आ जाती है और इससे कथा और अधिक प्रभावशाली बन जाती है। संवादों की उपयोगिता कथा को आगे बढ़ाने और मूल संवेदना को उभारने में रही है। निश्चित रूप से इनके दौर के अन्य लेखकों के बरक्स अब्दुल बिस्मिल्लाह के यहाँ संवाद शैली का प्रयोग अधिक हुआ है।

सादृश्य विधान एवं वर्णनात्मक शैली-

यह शैली उपन्यास का अभिन्न तत्त्व है। हिंदी उपन्यास के प्रारंभिक दौर से लेकर वर्तमान समय तक इस शैली का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। इस शैली के संदर्भ में डॉ. प्रताप नारायण टंडन का कथन समीचीन प्रतीत होता है- “कहानी लिखने की यह शैली ही सर्वाधिक प्रचलित है। इस शैली में जो कहानियाँ लिखी जाती हैं, वे कहानी कला के परिपक्व स्वरूप का समग्रता से संपृक्तता का परिचय देती हैं। इस शैली में कहानी के सभी मूल उपकरणों के विकास की संभावनाएं विद्यमान रहती हैं।”[43] सादृश्य-विधान शैली में फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह, शिवमूर्ति का कोई शानी नहीं है। अब्दुल बिस्मिल्लाह

[42]बिस्मिल्लाह,अब्दुल.(2003). मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ सं. 39-40

[43]टंडन, डॉ. प्रताप नारायण.(1970). *हिन्दी कहानी कला.* पृष्ठ सं. 395

स्थानीय बोध के साथ निम्न मध्यवर्गीय मुस्लिम समाज का चित्रण कथ्य के अनुरूप बुने एक-एक शब्द के माध्यम से हू-ब-हू प्रस्तुत करते हैं। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया', 'मुखड़ा क्या देखे', 'समर शेष है', 'ज़हरबाद', 'कुठाँव' में निम्न मध्य वर्ग के मुस्लिम समाज का जो चित्रण अब्दुल बिस्मिल्लाह ने किया है वैसा चित्रण हिंदी साहित्य में अन्यत्र नहीं मिलता। अब्दुल बिस्मिल्लाह वर्णन करते-करते ऐसा दृश्य विधान रचते हैं कि पाठक सीधे तौर पर उससे जुड़ा महसूस करते हैं। बेबसी, लाचारी, भूखमरी, गरीबी, जीने की उत्कट चाह, बेरोजगारी, स्त्री-पुरुष संबंध, राजनीतिक स्वार्थपरकता, शोषण की अंतहीन व्यवस्था, जाति-व्यवस्था, आडम्बर, पाखंड, ग्रामीण समाज में लगने वाले मेले और ऊर्स जैसे कथ्यों को विस्तार देने के लिए वे वर्णनात्मक शैली का प्रयोग करते हुए ऐसा चित्र खींचते हैं कि पाठक को यह अनुभूति होती है जैसे वह स्वयं किसी आँखों देखी घटना का गवाह हो। अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने उपन्यासों में जो दृश्य विधान प्रस्तुत करते हैं उसके लिए वे बड़े- बड़े वाक्यों का प्रयोग नहीं करते, बल्कि छोटे वाक्यों के माध्यम से ऐसा दृश्य रचते हैं कि वह सामने प्रस्तुत हो जाता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह की यह विशेषता है कि वह अपने उपन्यासों में घटना का वर्णन करते समय पाठक के मन में शब्द चित्र उपस्थित कर देते हैं।

गोपाल राय ने अपनी पुस्तक 'उपन्यास की पहचान: मैला आँचल' में रचना के शिल्पगत वैशिष्ट्य के संदर्भ में बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कही है- "किसी साहित्यिक कृति के शिल्प का विवेचन करने का अर्थ उस कौशल का उद्घाटन करना है जिससे उसके रूप या आकार की निर्मिति हुई है।"[44] गोपाल राय की यह टिप्पणी अब्दुल बिस्मिल्लाह के ऊपर सटीक बैठती है। अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने उपन्यासों में दृश्य उपस्थिति हेतु वर्णनात्मकता का सहारा लेते हैं। बिस्मिल्लाह मेले का वर्णन ऐसा करते हैं कि पाठक स्वयं वहां उपस्थित हो जाता है। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया', 'मुखड़ा क्या देखे', 'कुठाँव', 'समर शेष है', और 'ज़हरबाद' में मेले का वर्णन करते हुए लेखक ने ऐसा चित्र खींचा है की पाठक स्वयं को मेले में पाता है। 'झीनी-झीनी चदरिया' से एक उदहारण द्रष्टव्य है-

[44]भूषण, विद्या. (2011). रेणु की कहानियों का पुनर्पाठ. पृष्ठ सं, 24

"दोपहर में तो मेला कुछ कमजोर था, लेकिन शाम होते ही भीड़ बढ़ गयी है। नजबुनिया घूमते-घूमते थक गयी है। गर्मी के मारे बुरा हाल है, पर मेला छोड़कर जाते नहीं बनता। उसने दूर से ही देखा, एक जगह मतीन कुछ लोगों के साथ खड़ा है। उसकी ओर देखकर वह मुस्कुराया तो नजबुनिया लजा गयी। जल्दी वह दूसरी ओर निकल गयी।

जगह-जगह खोमचे लगे हुए हैं। कहीं नानखटाई बिक रही है तो कहीं पकौड़ियाँ। कहीं गोलगप्पा तो कहीं खिजली और कुल्फी।

एक ओर बिसातबाने की दुकानें हैं तो दूसरी ओर चुड़िहारिनें बैठी हुई हैं। बारी-बारी से नजबुनिया का ध्यान सबकी ओर जाता है। खिजली और नानखटाई की ओर, चुड़ियों की ओर, फीतों और चोटियों की और... फिर अचानक एक बिसातबाने की एक दुकान के सामने खड़ी हो जाती है। वहाँ एक डोरी पर रंग-बिरंगी चोटियाँ लहरा रही हैं, नजबुनिया का दिल मचल जाता है। सबके बीच में जो एक लालवाली चोटी है, वह नजबुनिया को बहुतै अच्छी लग रही है।

" ए भईया इ चोटिया केतने की है?"

वह बहुत खुश होकर चोटी का दाम पूछती है और फिर आगे बढ़ जाती है। एक रूपये का तो उसने मजार पर नयाज कराने के लिए लाचीदाना ही खरीद लिया था। अब बीस आना की चोटी कहाँ से खरीदेगी। फिर भी अब्बा के लिए नोवलजीन भी तो लेनी है....

नजबुनिया मुँह लटकाये मेले से बाहर आ जाती है।"[45] मेले के इस सजीव वर्णन के साथ ही नजबुनिया के माध्यम से अब्दुल बिस्मिल्लाह ने गरीबी एवं लाचारी का भी चित्र खींचा है। लेखक ने मेले का वर्णन अपने अन्य उपन्यासों में भी किया है और वहाँ भी गरीबी, बेबसी, लाचारी, अभावग्रसत्ता का वर्णन ऐसे करते हैं जैसे लगता है कि यह सब लेखक के जीवन की घटनाएँ हैं।

जीवन के विविध रंग-रूप को दिखाने के लिए लेखक वर्णनात्मक शैली का प्रयोग अधिक करते हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह के यहाँ ग्रामीण जीवन का समग्र दस्तावेज है। तीज-त्यौहार, शादी- विवाह, नाच-

---

[45]बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2018). झीनी झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ सं.53-54

नौटंकी, मेला-ऊर्स, खेती किसानी के गीत, किसान-मजदूरों का जीवन, मुस्लिम समाज की जीवन शैली, सामंतवादी व्यवस्था, जाति-व्यवस्था, स्त्री-पुरुष संबंध, खान-पान आदि का वर्णन बिस्मिल्लाह जी ऐसे करते जिससे पाठक अपना जुड़ाव महसूस करने लगता है। 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में लेखक ने वर्णनात्मक शैली का बखूबी प्रयोग किया है। सामंती पृष्ठभूमि एवं गरीबी व भूख का एक उदहारण द्रष्टव्य है-

"नौटंकी देखते-देखते पाण्डेजी की परजा भी सो गई थी। अचानक वह भी हड़बड़ाकर उठ बैठी। भूख के मारे उसकी जान निकली जा रही थी। जब तक कन्या का विवाह संपन्न न हो जाय, भोजन कैसे होगा- इस सर्वमान्य सिद्धांत के अनुसार भोजन ज्यों का त्यों पड़ा हुआ था। पत्तलें विवाह के बाद ही लगना शुरू हुई। सबसे पहले बारातियों ने भोजन ग्रहण किया। फिर आया घरातियों का नंबर। उनमें भी पहले बैठे वे लोग जो पाण्डेजी के ख़ासपाहुन थे। फिर अंत में पत्तले लगी परजा के लिए। अब तक एकदम सबेरा हो गया था। पूरब में हल्की-हलकी लालिमा झलकने लगी थी। पर रात-भर की भूखी –प्यासी परजा को इतना साहस नहीं था कि भोजन छोड़कर अपने घर चली जाय। परजा थकी हुई और लस्त थी, मगर लालच भरी नज़रों से थाल में भरी हुई पूड़ियों- कचौड़ियों को निहार रही थी। एक क्रम से कचौड़ी, पूड़ी, उबला हुआ कोंहड़ा, अलग से रामरस यानी नमक, अचार और पीसी हुई चीनी परोसी जा रही थी। कतल की रसेदार तरकारी और मिठाई आदि पर उनका हक़ नहीं था। नौटंकी देखने के बाद जो लोग अपने घर जाकर सो गए तह नाऊ उन्हें भी जगाकर बुला लाया। गाँव का कोई भी आदमी छूटने न पाए, इस बात का सख्त निर्देश था कि पत्तल में किसी चीज की कमी न दिखे। जो एक पूड़ी माँगे, उसे चार दो। परजा को खिलाते समय इस बात का कड़ाई से पालन होना चाहिए। परजा के पत्तल में यदि अधिक भोजन भर जाय और वह पूरा न खा सके तो अपने अँगोछे में बाँधकर घर ले जाय, उसके बाल बच्चे खायें। परजा के सुख से ही अपना भी सुख है। परजा खा–पीकर चंगी रहेगी तो दूने उत्साह से काम करेगी: गुण भी गाएगी।"[46]
इस उद्धरण में गरीबी, बेबसी, लाचारी और भूख का जो चित्र शब्दों के माध्यम से उपस्थित किया है,

[46]बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2003).मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ सं. 15-16

काबिले गौर है। बिस्मिल्लाह ने रामबृक्ष पाण्डे के यहाँ बारात में प्रजा का चित्रण जिस तरह से किया है, जिस दृश्य को उपस्थित करना चाहा है वह पाठक के मानस पटल पर स्वतः खिच जाते हैं। बिस्मिल्लाह इस भाषिक संरचना द्वारा परजा की बेबसी, लाचारी और भूख जैसे भाव बोध को प्रकट करने में सफल नजर आते हैं।

सादृश्य विधान शैली एक ऐसी शैली है जिसके माध्यम से वातावरण को सजीव रूप में चित्रित किया जाता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह के यहाँ इस शैली का प्रयोग अधिक हुआ है। निम्न मध्यवर्गीय ग्रामीण पृष्ठभूमि को सादृश्य विधान के द्वारा रचने में शिवप्रसाद सिंह का कोई सानी नहीं है, लेकिन निम्न मध्य वर्ग की जिंदगी और समस्याओं को अब्दुल बिस्मिल्लाह चित्रात्मक शैली के माध्यम से हू-ब-हू उतार कर रख देते हैं। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' बनारस के साड़ी बुनकरों का जीवन उपन्यास में फिल्म की तरह चलती दिखती है। बनारस का बजरडीहा, अलईपुर, लल्लापुर, में बसे बुनकरों का जीवन बजबजाती नालियों की तरह ही है। न तो खाने के लिए सही से भोजन और न ही रहने के लिए घर। सुबह से शाम तक साड़ी बीनना और उसे मदनपुरा और गोलघर के गृहस्ता के यहाँ पहुँचाना। अब्दुल बिस्मिल्लाह के सभी उपन्यासों में सादृश्य विधान शैली का प्रयोग हुआ है। ये भाषा की चित्रात्मकता के द्वारा कथ्य को जीवंत बना देते हैं। सादृश्य विधान से परिवेश एवं पात्र दोनों ही सजीव हो उठते हैं। इस शैली से वातावरण तथा परिवेश का ही चित्रण नहीं होता, बल्कि पात्रों का चित्रण भी इस शैली के माध्यम से कथाकार पाठक के मन में उतारता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह इस शैली का उपयोग अपने उपन्यासों में बहुत ही कलात्मक ढंग से करते हैं। इनके उपन्यासों से गुजरते वक्त ऐसा नहीं लगता कि जो दृश्य सामने हैं उससे जुड़ाव न हो। भाषा की चित्रात्मकता के जरिए वे उपन्यासों में ऐसे दृश्य उत्पन्न करते हैं जिससे पाठक का सहज ही जुड़ाव बन जाता है।

आत्मकथात्मक या मैं शैली

आत्मकथात्मक या मैं शैली में उपन्यास का कोई पात्र 'मैं' के धरातल पर आत्मवर्णन के द्वारा उपन्यास में उपस्थित होता है। इस तरह की पद्धति के अंतर्गत पूरी कथा का ताना बाना उत्तम पुरुष में बुना जाता- है। इस तरह की शैली में लिखी गई कहानी को 'मैं' शैली, आत्मचरित्र शैली एवं उत्तम पुरुष शैली भी कहा जाता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह के यहाँ मैं शैली की बहुलता है। 'ज़हरबाद' और 'समर शेष है' मैं शैली में लिखा गया उपन्यास है। इन दोनों उपन्यासों में लेखक स्वयं उपस्थित है। दूसरे शब्दों में कहें तो ये दोनों उपन्यास अब्दुल बिस्मिल्लाह के जीवन पर आधारित आत्मकथात्मक उपन्यास है। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' मैं शैली में तो नहीं लिखा गया है लेकिन क्षेपक में लेखक स्वयं उपस्थित होता है। 'समर शेष है' का कथानायक 'मैं' अर्थात लेखक ही है। इस उपन्यास से मैं शैली का एक उदहारण द्रष्टव्य है- "अकेलापन क्या होता है, इसका ज्ञान मुझे कब्रिस्तान से लौटने के बाद हुआ। मुर्दे में भी संबंध की कोशिश होती है, यह मैं नहीं जानता था और यह भी मुझे नहीं मालूम था कि अकेलापन एक ऐसी मन:स्थिति का नाम है जो आदमी की चेतना को कुंद कर देती है।"[47] इस पूरे उपन्यास में 'मैं' शैली का प्रयोग हुआ है। 'मैं' शैली में लिखी गई कहानियों में व्यक्ति और परिवेश के साथ-साथ आत्मीयता का बोध अधिक होता है। इस सन्दर्भ में कामेश्वर प्रसाद सिंह कहते हैं- "इस तरह की कहानियों का कथानायक अर्थात 'मैं' का संबंध सदा उसके निजी व्यक्तित्व से हो, ऐसा आवश्यक नहीं।...कई कहानियों में, यह 'मैं' अर्थात कहानीकार प्रधान पात्र नहीं होता अपितु संपूर्ण घटना से असंपृक्त केवल उसका साक्षी होता है।"[48] मैं शैली में लेखक को सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभवों को साझा करने में सहजता होती है। इस तरह की शैली के माध्यम से व्यक्ति के आंतरिक द्वन्द्वों को अधिक प्रामाणिक ढंग से अभिव्यक्त किया जा सकता है। 'ज़हरबाद' उपन्यास भी मैं शैली में ही लिखा गया है। इस उपन्यास में कथानायक 'मैं' के जीवन का वृतांत है। एक उदहारण द्रष्टव्य है- "सुबह मुझे दूल्हा बनाया गया। नहलाकर नये वस्त्र एवं जूते पहनाए

[47]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2016). समर शेष है, पृष्ठ सं. 23

[48]सिंह, डॉ. कामेश्वर प्रसाद. (1988). नई कहानी और मध्यवर्ग. पृष्ठ सं. 206

गये। सर पर साफा बाँधकर कचनार के फूलों का सेहरा बाँधा गया और ऊपर से लाल रंग के झीने से टूल का मकना लटकाया गया। फिर दूध का शरबत पिलाकर घोड़े पर बैठाया गया और पूरे टोले में घुमाया गया। लौटने पर सेमलू मामा ने अपना नगाड़ा बजाकर मेरा स्वागत किया और अन्य स्त्रियों के साथ अम्माँ ने भी नृत्य किया। पर थोड़ी देर बाद ही वह तामझाम अब्बा ने बंद करा दिया और परछी में सजदा कराकर मुझे नंगा कर दिया गया। फिर मुझे चादरों के पर्दे में उलटे घड़े पर बैठाया गया और क्षण भर बाद ही 'सोने की चिड़िया' दिखाकर मुझे मुसलमान बना दिया गया।"[49] इस उद्धरण में कथानायक स्वयं उपस्थित होकर अपने मुसलमान बनने की प्रक्रिया (खतना) को बताता है।

आत्मकथात्मक शैली को संस्मरणात्मक शैली के एक हिस्से के रूप में देखा जाता रहा है। साठोत्तरी के कथा लेखकों ने इस शैली का प्रयोग बहुधा किया है जहाँ 'मैं'आत्मकथात्मक ढंग से अपने अतीत जीवन के संस्मरणों को कथात्मक रूप में कहता हुआ चलता है। आत्मकथात्मक शैली के अंतर्गत कथाकार एक सूत्रधार के रूप में कथावाचक की भांति पूर्णतः तटस्थ होकर कथा की सृष्टि करता है। इस तरह के उपन्यासों में घटनाओं का उल्लेख केवल एक पात्र विशेष के माध्यम से होता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इस तरह की शैली के अंतर्गत आवश्यकतानुसार जगह-जगह पर वर्णन विवेचन एवं विश्लेषण आदि पद्धतियों का भी सहारा लिया है।

उपरोक्त शैलियों के अलावा अब्दुल बिस्मिल्लाह ने पूर्वदीप्ति शैली (फ्लैशबैक शैली), पत्रात्मक शैली, व्यंग्यात्मक एवं नाट्य शैली का भी प्रयोग अपने उपन्यासों में किया है। 'रावी लिखता है' में फ्लैशबैक शैली का प्रयोग लेखक ने बहुत ही सुन्दर तरीके से किया है। स्मृतियों से गुजरते हुए लेखक ने तीन पीढ़ियों की कथा को चित्रित्र किया है। इस उपन्यास में पत्रात्मक शैली का भी प्रयोग हुआ है। अब्दुल बिस्मिल्लाह गालियों के लिए डाट्स का प्रयोग नहीं करते बल्कि पूरी गाली ही लिखते हैं। डॉट्स का प्रयोग इनके उपन्यासों में खूब हुआ है, लेकिन गालियों के सन्दर्भ में नहीं। कुछ अनकही बाते जिसे पाठक स्वयं समझ जाय के लिए इस तरह का प्रयोग हुआ है।

---

[49]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2016). ज़हरबाद, पृष्ठ सं. 23

4.4- लोकगीतों का समावेश

ग्रामीण जीवन की यथार्थपरक अभिव्यक्ति के लिए कई बार कथाकार लोकगीतों का सहारा लेते हैं। ग्रामीण चेतना के शीर्षस्थ कथाकार फणीश्वर नाथ रेणु ने अपने कथा साहित्य में लोकगीतों का सर्वाधिक प्रयोग किया है। 'परती-परिकथा' में रेणु जी ने लोकगीतों का सुन्दर समावेश किया है। लोक जीवन एवं ग्रामीण जीवन को केन्द्रीयता प्रदान करने वाले समकालीन कथाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह ने भी अपने कथा साहित्य में लोकगीतों का प्रयोग कथ्य एवं पात्र के अनुकूल किया है। कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन स्पष्ट रूप से मुखरित हो सके इसके लिए अधिकांश साहित्यकार शिल्प के माध्यम से लोकगीतों का सुन्दर समायोजन करते हैं। लोक गीत ग्रामीण जीवन के विविध रूपों जैसे हर्ष-विषाद, उल्लास, ख़ुशी, दुःख, संवेदना, करुणा, शोक आदि को व्यक्त करने का सहज माध्यम है। लोकगीत जीवन राग है इसमें जीवन का यथार्थ अभिव्यक्ति होता है। लोकगीत के सहजता के सन्दर्भ में मराठी साहित्यकार सदाशिव फड़के का मत है कि -"शास्त्रीय नियमों की प्रवाह न करके सामान्य लोक व्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपनी आनंद तरंग से जो छंदोबद्ध वाणी सहज उद्भूत करता है वही लोकगीत है।"[50] हिंदी कथा साहित्य में साहित्यकारों ने जब भी लोक गीतों का प्रयोग किया है वह अनायास रूप में नहीं किया है। कथ्य एवं पात्र के अनुकूल ही लोकगीतों का प्रयोग किया गया है।

समकालीन उपन्यासकार अब्दुल बिस्मिल्लाह जिनके सभी उपन्यासों (रावी लिखता है को छोड़कर) के केंद्र में स्थानीयता का दर्शन होता है जिसमें उत्तर प्रदेश का मिर्जापुर, बनारस एवं इलाहाबाद, मध्य प्रदेश का मंडला, हनुमाना, जबलपुर और छत्तीसगढ़ है। इन उपन्यासों की भाषा में स्थानीयता का छौंका लगा हुआ है। बिस्मिल्लाह ने 'ज़हरबाद', 'समर शेष है' 'मुखड़ा क्या देखे', 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया', 'कुठाँव' उपन्यास का जो शिल्प है उसे लोकगीतों से बघार दिया है। लोकगीतों के माध्यम से

[50]गौतम, डॉ. सुरेश. (2008).लोक साहित्य: अर्थ और व्याप्ति, पृष्ठ सं. 67

ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण करने में सहजता होती है। लोकगीत जीवन के वैविध्य को भी दर्शाते हैं और साथ आंचलिकता के सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं को भी व्यक्त करते हैं। बिस्मिल्लाह जी अपने उपन्यासों में पूर्वी उत्तर प्रदेश के अंचल विशेष के लोक संस्कृति एवं लोक जीवन को लोकगीतों एवं नृत्य के माध्यम से उद्घाटित किया है। अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में अनेक त्योहारों, मेलों, उर्स, व्रत, उत्सवों का उल्लेख आता है। इनके उपन्यासों में त्योहारों एवं उत्सव के अवसर पर स्त्री तथा पुरुषों द्वारा गाये जाने वाले लोकगीत तथा लोक नृत्य भरे पड़े हैं। स्थानीयता की महक के साथ ही पूरे उपन्यास का कथ्य एवं शिल्प घटित होता है। इनके उपन्यासों में जो भी लोक गीत एवं लोक नृत्य है वह स्थानीयता के रंग में रंगे होते हैं।

ज़हरबाद

'ज़हरबाद' उपन्यास में करमा लोक नृत्य को बिस्मिल्लाह ने स्थानीय भाव बोध के साथ व्यक्त किया है। इसका एक उदहारण द्रष्टव्य है-

''आहाहाय !
हाय रे सींचै ला जाबो ना,
साजा तरे क डबरा
सींचै ला जाबो ना।''[51]

यह गीत करमा नृत्य करते समय गाया जाता है। बिस्मिल्लाह जी ने इस उपन्यास के कथा नायक जो कि 'मैं' है के माध्यम से व्यक्त किया है। बसंत के महीने का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने माँदर के थाप पर स्त्री -पुरुषों का मदमस्त नृत्य करमा करते समय के गीतों को व्यक्त किया है जो स्थानीय भाषा के साथ तालमेल को दर्शाता है। 'ज़हरबाद' उपन्यास में संस्कार के समय गाए जाने वाले गीत, लौंडा नाच का

[51]बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2016). ज़हरबाद, पृष्ठ सं. 21

गीत एवं अन्य गीतों का सुंदर समावेश हुआ है। कथा नायक के खतने के समय मेहमानों एवं गांव के लोगों का जुटान हुआ है। ऐसे आयोजनों पर कई बार लोग नाच गाने का कार्यक्रम रखते हैं। गांव के ही साबुनलाल का छोटा भाई हीरा नवयुवती का रूप धारण कर जमीन पर पैरों का थाप देते हुए गा रहा है।

मोर बलमा नादान मोर देहियाँ गुलाबी रंग होइगै

पांचैपचासै की चोलिया

बंद लागे हजार

पहनावे वाली छोकरिया

चली बहियाँझुलाय

लौंग के लागी है रुख

ओखी पतली है डार

समझै समझ गोरी टोरले

माल है बिरान ...[52]

इस लोकगीत के माध्यम से ग्रामीण जीवन में अनमेल विवाह (स्त्री-पुरुष के बीच उम्र के अंतर) को दिखाया गया है। कई बार लोकगीतों पर अश्लीलता का आरोप भी लगता है, लेकिन लोक में इस तरह के गीतों की सहज अभिव्यक्ति है। लोक में श्लीलता-अश्लीलता का द्वैत बहुत अधिक नहीं है। लोक गीतों के माध्यम से ऐसी बातें भी कही जाती है जिसे सीधे तौर पर नहीं कहा जा सकता है। हीरा गाँव का युवा लड़का है जिसका मन नाचने-गाने में अधिक लगता है। उसे जब भी मौक़ा मिलता है वह गुनगुनाना शुरू कर देता है। हीरा के गुनगुनाने को उपन्यास में रीना कहा गया है। कथानायक हीरा से फरमाइश करता है जिसे हीरा इनकार नहीं कर पाता। हीरा का रीना शुरू हो जाता है-

सिफुलै तोर रुम्मक झुम्मक गेंदा फूलै कचनार सुआ हो

[52]बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2016). ज़हरबाद, पृष्ठ सं. 34

रीरी नारी हलो ना।

कोन खनावै ताल-तलइया कोन बँधावै ओखर धार

राम बनावै ताल-तलइया लछमन बँधावै ओखर धार

सुआ हो, रीरी नारी हलो ना।

कोस-कोस में गाँव बसे हैं अस्सी कोस में चट्टी

चलत-चलत मोर पाँव पिरा गौ चाला हो गौ मट्टी

सुआ हो … [53]

लोक गीतों में राम, लक्ष्मण, सीता, कृष्ण, राधा एवं अन्य धार्मिक व मिथकीय चरित्रों को आलम्बन बनाकर भी गीत गाए जाते हैं। लेकिन निम्न जाति वर्ग समूहों में गाए जाने वाले गीतों में आलंबन नहीं होता है और न किसी प्रकार प्रछन्न अर्थ। आम जन मानस में लोक गीतों को सीधे-सीधे शब्दों में अधिक अभिव्यक्त किया जाता है। जीवन जगत की तमाम समस्याएँ लोक गीतों में मुखरित होती है। ग्रामीण जीवन में हर्ष और उल्लास को व्यक्त करने के लिए मंडली का आयोजन किया जाता है। मंडली में किसी एक कथा के माध्यम से चरित्र एवं परिवेश को उद्घाटित किया जाता है। ज़हरबाद उपन्यास में नाच मंडली के माध्यम से लोक गीत एवं लोक नृत्य का उल्लेख उपन्यासकार ने बहुत ही सजीव रूप में किया है। मंडली का वर्णन करते समय लेखक ग्रामीण जीवन का चित्र खींचने में कामयाब रहा है। मंडली का आयोजन टोली के मुखिया पोल्लागोंड ने किया है। मुखिया के आंगन में चँदोवा तानकर मंडली के लिए जगह तैयार कर दिया गया है। इन तैयारियों के साथ हमती मामा बड़े ही तल्लीनता के साथ गाते हैं-

हाय रीनी झीनी आ ना

चादर ला ओढाय ले रीनी झीनी आ ना।

आठ बरन के चरखा बनिगै दसै बरन के पूनी रामा

[53]बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2016). ज़हरबाद, पृष्ठ सं. 58

दसैबरन के पूनी

नौ दस महिना बीनत लगिगै मूरख मैली कीनी

रीनी झीनी आ ना ...

लंका ओढै बंका ओढै ओढै सदल कसाई रामा

ओढै सदल कसाई

धुर पहला दबि भीसणओढै ओढै मीराबाई

रीनी झीनी आ ना ...

ना मैं आरी ना मैं भोरी पूत जनाजन हारी रामा

पूत जनाजन हारी

तिन –तिनलरिका गोद खेलाएवंहौ मैं अभी कुवाँरी

रीनी झीनी आ ना ...

चादर ला ओढाय ले रीनी झीनी आ ना...[54]

बैगा जनजाति का प्रमुख लोक नृत्य रीना-सैला के माध्यम से लेखक ने कथानायक 'मैं' को ग्रामीण जीवन में मनोरंजन के लिए उपलब्ध नाच-तमाशा के सजीव चित्र खींचा है। यह लोक नृत्य फसल के कट जाने के बाद किया जाता है। कथा के माध्यम से इस लोक नृत्य को किया जाता है। इस लोक नृत्य में स्त्री का अभिनय भी पुरुष ही निभाते हैं। जोकर जोकराइन ग्रामीण जीवन में व्याप्त हास्य को प्रस्तुत करते हैं। 'ज़हरबाद' उपन्यास में लोक गीतों का जो भी समावेश हुआ है वह लोक नृत्य के माध्यम से ही हुआ है। जीवन के राग-विराग माँदल के थाप झूमते-गाते एवं पैरों की थिरकन से जीवन के कुछ क्षणों में उल्लास भर देता है। कथानायक स्वयं भी अपने को रोक नहीं पाता और उसके पैर भी थिरकने लगता। रीना-सैला नृत्य गोंडी एवं बैगा बोली में ही गाए जाते हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इस बात का विशेष ध्यान रखा है।

[54]बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2016).ज़हरबाद, पृष्ठ सं 59

मोला देखत रहि बेनोनी मोर

झिंझरी महल ले मोला ले देखतर हिबे[55]

हमती मामा बीच-बीच में जोकर-जोकराइन से संवाद करता है जो सवाल- जवाब के रूप में अधिक रहता है। सवाल जवाब के उपरांत जोकर-जोकराइन मिलकर गाते हैं-

बिचिया बजार में बिकैला पेटी हो बिकैला पेटी

मोखान हिंबोलै मामा तुमर बेटी ला चिन्हाय दे ना

मछरी त मारे फँसावैपढिना

हाँ फँसावै पढिना

मोला ठगिठ गिराखै अढ़ाई महिना

हाँ चिन्हाय दे ना...[56]

'ज़हरबाद' उपन्यास में रीना-सैला के माध्यम से ही लोक गीतों का चित्रण हुआ है। प्रकृति उपासक आदिवासी समाज में इस तरह के लोक नृत्य का विशेष महत्व है। प्रेम पूर्ण जीवन की जो कल्पना है वह इन लोक नृत्यों एवं लोक गीतों में देखने को मिलता है। प्रेम में रूठना, मानना, मनुहार करना आदि के जो भाव हैं वह कई बार सीधे तो कई बार प्रकृति के प्रतीक के सहारे उद्घाटित होता है। रीना का गायन छोटे बच्चों को सिखाने एवं वात्सल्य प्रदर्शित करने के लिए भी गया जाता है।

मुखड़ा क्या देखे-

[55]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2016).जहरबाद, पृष्ठ सं. 60

[56]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2016).जहरबाद, पृष्ठ सं. 60

यह उपन्यास अंग्रेजी मिश्रित लोकगीत 'डोंट टच माई बॉडी मोहन रसिया' से प्रारम्भ होता है। इस उपन्यास में लोक गीतों की झड़ी सी लग गई है। कव्वाली, शेर, लोक गीत के माध्यम से ग्रामीण जीवन के हर्ष एवं उल्लास को व्यक्त किया है। जीवन के हर उल्लास में गीत इस तरह से रच बस गए हैं कि इनके बिना ग्रामीण जीवन का कोई भी आयोजन पूर्ण नहीं होता। मानव जीवन में हर्षित करने वाले जितने भी संस्कार हैं उन सभी संस्कारों पर स्त्रियाँ पूरे मनोयोग से गाती हैं। श्रम करते हुए, समूह में रास्ता चलते हुए भी ग्रामीण स्त्रियाँ अपने रागात्मकता से आस-पास के वातावरण को गुंजायमान करती रहती हैं। लोक में जीतनी भी कलाएँ हैं उन सभी कलाओं में लोक गीत में स्त्रियों का स्वर अधिक दिखता है। अब्दुल बिस्मिलाह ने इस उपन्यास में स्त्रियों द्वारा शादी-विवाह में गाए जाने वाले गीतों को भी उद्घाटित किया है। लोकगीतों के सन्दर्भ में कहा जाता है कि इसमें ग्रामीण जीवन का हर पक्ष उद्घाटित होता है।

लोक साहित्य का पचास प्रतिशत यानी आधा हिस्सा लोक गीतों का है और उसमें भी अधिकांश स्त्रियों द्वारा रचित जान पड़ता है। चूंकि स्त्रियां श्रम करते हुए व मांगलिक अवसर पर गीत गाती हैं, इसलिए लोकगीतों के अधिकांश हिस्से का सृजन स्त्रियों ने ही व्यक्त किया है। किसी भी मांगलिक आयोजन पर भी स्त्रियों द्वारा ही गीत गाये जाते हैं। मांगलिक अवसर पर गाए जाने वाले लोक गीतों में पुरुषों की उपस्थिति नहीं होती है। इस सन्दर्भ में अनुराधा गुप्ता का मानना है कि- "भारतीय लोक साहित्य के निर्माण में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का योगदान अधिक रहा।[57] यही कारण है कि लोक गीतों में स्त्री का अथाह दर्द, तकलीफ, पीड़ा, प्रेम, आशा, निराशा, प्रताड़ना आदि को साफ महसूस किया जा सकता है। जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में स्त्री ने अपने भाव और अभाव के उद्गार को गीतों के माध्यम से ही किया है। लोक के ये गीत स्त्री जीवन व समाज के घात-प्रतिघात का सच्चा रूप व्यक्त करते हैं। इन लोक गीतों में जनमानस के राग विराग से पूर्ण, स्वर और लय के संगीतात्मक आवरण से लिपटी, भावानुभूतियों का निश्छल प्रवाह है, जिसमें लोक जीवन के समस्त क्रिया-कलाप, रीति-रिवाज, परंपराएं, सामाजिक-

[57]गुप्ता, अनुराधा. *लोकगीत परंपरा में स्त्री वेदना के स्वर*http://www.hindisamay.com/contentDetail.aspx?id=9152&pageno=1

सांस्कृतिक गतिविधियां, मिथक, जीवन मीमांसा, प्रतिक्रिया, प्रतिरोध, आशा, उम्मीद, हर्ष-विषाद सभी कुछ प्रतिबिंबित होता है। कृष्णदेव उपाध्याय के शब्दों में –"किसी देश के लोकगीत उस देश की जनता के हृदय के उद्गार हैं। वे उनकी हार्दिक भावनाओं के सच्चे प्रतीक होते हैं। यदि किसी देश की सभ्यता का अध्ययन करना हो तो सर्वप्रथम उनके लोकगीतों का अध्ययन करना होगा। लोकगीत लोकमानस की वस्तु है, अतः उनमें जनता का हृदय लिपटा रहता है।"[58]

'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास के प्रारम्भ में ही बारात का उल्लेख है। विवाह के लिए बाहर तैयारियां चल रही है और अन्दर स्त्रियाँ गीत गा रही हैं-

एक दिन सखियन संग सैंया
चली गयी गुलजार में
नेहरू जी को गुलाब में देखा
गाँधी जी को अनार में
एक दिन सखियन संग सैंया...[59]

शादी विवाह के समय गाए जाने वाले गीतों में आज़ादी के नायक गाँधी और नेहरू का जिक्र लेखक ने लोक के रंग में रंग कर किया है। स्त्रियाँ गा तो रही हैं विवाह गीत लेकिन उसे आजादी के नायकों से जोड़ दे रही हैं। लोक की यह ताकत ही है कि वह इन नायकों को भी अपने अनुरूप ढाल लेता है। इस गीत को सुनाने के बाद ऐसा लगता है जैसे गाँधी जी अभी जीवित हों। स्वाधीनता का स्वर लोक जीवन में खासकर स्त्री जीवन में इन गीतों के माध्यम से दृष्टिगत होता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इस गीत के माध्यम से स्त्रियों की अभिव्यक्ति को भी आवाज दी है। स्वाधीनता के ये नायक स्त्रियों को अभी दिखते हैं।

[58]उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव, *लोक साहित्य की भूमिका*. पृ. 142
[59]बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2003). मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ सं 90

विवाह में गाए जाने वाले गीतों में जीवन का हर उल्लास शामिल रहता है। 'गारी' के माध्यम से यौन संबंधों को भी अभिव्यक्त किया जता है और साथ ही नव दंपत्ति को यौन संबंधों के बारे में गीतों के माध्यम से ही ज्ञान दिया जाता है। विवाह में 'गारी' गीत का अपना विशेष महत्व है। 'गारी' गाते समय स्त्रियाँ यौन संबंधों को बहुत ही मुखर रूप में प्रस्तुत करती हैं। यहाँ कोई पर्देदारी नहीं होती और न ही किसी तरह की कोई रोक टोक ही। जो स्त्रियाँ यौनिकता या यौन संबंधों के बारे में कभी कुछ भी नहीं बोलती वह भी गारी के माध्यम से व्यक्त कर रही होती हैं। वर के पक्ष के लोग जब खाना खाते हैं तब भी वधु पक्ष की स्त्रियाँ खाना खाने बैठे वर पक्ष के लोगों को गारी सुनाती हैं बरात के साथ आए बैंड बाजा वाले बाजा बजाना बंद कर दिए हैं और उधर स्त्रियाँ गा रही हैं-

बजनिया काहे चुपान

बजावत काहे नाहीं रे

तोरे बहिनी के लेइ गवा पठान

बजावत काहे नाहीं रे[60]

इसी तरह दुल्हे के आगमन पर भी स्त्रियाँ गाती हैं-

धियालइ के उड़बी धियालइ के बुड़बी

धियालइ के जइबूं पतार।

अइसनत पसिया के गौउरा नाहीं देबूँ

बलु गउरा रहिहें कुँवार

सूप अइसन देहिया अ अम्माँ, बरध अस आँखी ....[61]

दुल्हे को दी जाने वाली 'गारी' में राम-सीता एवं शिव-पार्वती को प्रतीक बना दिया जाता है। दुल्हा के नाक नक्स, मुख, चेहरा, बाल, हाथ, पैर एवं सभी अंग–प्रत्यंग को आधार बनाकर दुल्हे को

---

[60]बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2003). मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ सं.208

[61]बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2003). मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ सं.209

कमतर आंकते हुए स्त्रियों द्वारा गीत गाए जाते हैं। इन गीतों में इस बात की शिकायत होती है कि दुल्हा सुन्दर नहीं है। हमारी सुन्दर बेटी या बहन के लिए वर योग्य नहीं है और यदि थोड़ा बहुत योग्य है भी तो बहू के लिए कुछ भी नहीं लाया है। आभूषण भी नहीं लाया है और जो लाया भी वह बहुत खराब है। इससे अच्छा है कि पार्वती जैसी हमारी बेटी बिन ब्याहे ही ठीक है।

इन गीतों में कई बार स्त्री की बेबसी, लाचारी दिखती है तो कई बार नव जीवन का उल्लास भी। आर्थिक विपन्नता के कारण पलायन का जिक्र तो अक्सर ही इन गीतों में अभिव्यंजित होता रहता है। पंडित रामवृक्ष पाण्डेय की बेटी की विवाह में गाँव की स्त्रियाँ गा रही हैं-

मोर धानी चुनरिया इतर गमके

मोर बारी उमरियानइहर तरसे

सोने के थारी में जेवना परोसे

सोने के थारी में ...

मोर जी मनवा लाबिदेस तरसे...[62]

***

लागा झुलनिया कइ धक्का

बलम कलकत्ता निकरि गए [63]...

इन दोनों गीतों में स्त्री की बेबसी, लाचारी दिखाती है और इसके केंद्र में है आर्थिक विपन्नता, गरीबी एवं बेरोजगारी। शादी-ब्याह के मौके पर स्त्रियाँ चुहल भी करती हैं और अपने दुःख दर्द को इस रूप में भी व्यक्त करती हैं। नव विवाहिता के हाथ से अभी मेंहदी के रंग छूटे भी नहीं थे, कपड़ों से इत्र (सेंट) की खुशबू अभी भी बरकरार है, लेकिन यह सब जिसके लिए है वह परदेस चला गया है। मैं यहाँ किसके लिए रहूँ मुझे अपने मैयके की बहुत याद आती है। जीवन में विवाह का युवक-युवती के लिए सबसे

[62]बिस्मिल्लाह, अब्दुल . (2003). मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ सं 12
[63]बिस्मिल्लाह, अब्दुल . (2003). मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ सं 43

सुखद पल होता है, लेकिन इस ख़ुशी बहुत ही जल्दी कपूर्र हो जाती है। ब्याह होते ही कमाने का दबाव बढ़ जाता है। यह दबाव कई बार पत्नी की रूप सौन्दर्य के साथ भी होता है। लोकगीतों में कलकत्ता जाने का सन्दर्भ सबसे अधिक आता है। कोई अपनी पत्नी के लिए पान लेने चला गया तो कोई अपनी पत्नी के लिए नई-नई साड़ी लाने। पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के कुछ अंचलों में भिखारी ठाकुर का बिदेसिया भी बेरोजारी के लिए विस्थापन को लोक गीतों के माध्यम से व्यक्त करता है।

'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में मेले एवं बाजार से लौटती स्त्रियाँ गाती चलती हैं तो वही किसानी से भी संबंधित गीत हैं। गर्मी के बाद पानी बरसने के साथ ही धरती हरी-भरी हो जाती है और जीवन में एक नए तरह का संचार होने लगता है। प्रकृति की यह हरियाली किसानों के जीवन में भी हरियाली लाने का रास्ता बनता है। तप्त धरती पर जब बारिश की फुहार पड़ती है तो किसान गा उठते हैं –

गरजय बादर,खाथय पछाड

धर संगी नागर, आ गय असाढ़।[64]

आषाढ़ आते ही किसान सब कुछ छोड़ कर खेती की तैयारी में लग जाते हैं। आषाढ़ किसानों के लिए बारातियों जैसा है। जिस तरह से बारातियों का स्वागत किया जाता है उसी तरह से आषाढ़ का स्वागत किया जता है। गीत के संबंध में कहा जता है कि यह श्रम की विधा है। कथा जहाँ विचार और विश्राम की विधा है वहीं गीत परिश्रम व ह्रदय के भावुक व संवेदनशील उद्गार हैं । लोकगीत में ज्ञेयता प्रमुख तत्व है। गीत वे रागात्मक अभिव्यक्ति है जिसमें जीवन-राग प्रस्फुटित होता है। मानव की आदिम प्रवृतियां-करुण, प्रेम, हास्य वात्सल्य एक समान होने के कारण सभी समाजों व संस्कृतियों के गीतों में समानता एवं तारतम्यता देखी जा सकती है। लोकगीत पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के जीवन के अधिक नजदीक होता है। स्त्रियां अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए गीतों का सहारा अधिक लेती हैं। धान कूटते समय, जाता

[64]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2003). मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ सं 80

में गेंहू पीसते समय, खेती किसानी में श्रम करते समय और भी कई सांस्कृतिक अवसरों पर वे गीत गाकर अपने सुख-दुःख को प्रकट करती हैं।

'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में गाँव की स्त्रियाँ शाम के समय में समूह में बैठकर गाती है। आषाढ़ (जुलाई) का महीने में परदेश गए लोग भी लौटने लगते हैं और किसान भी कुछ महीनों के विश्राम के बाद पुन: अपने कार्य में लग जाते हैं। आषाढ़ सबसे अधिक उमस भरा महीना होता है, ऐसे में गांव की स्त्रियाँ शाम के समय समूहों में कहीं पर बैठकर गीत गाती हुई प्रकृति की तरह हंसी-ठिठोली करती हैं। महिलाओं का समूह दसरथ गोंड के बरोठे में बैठकर साज बाज जमाए कई गीत गा रही हैं। महिलाएं एक दूसरे को गाने के लिए कह रही हैं। इस दौरान कई गीत- 'सोने क गडुआ गंगाजल पानी', लवंगाइलइचीकइबीरालगाएव' आदि गाना हो जाने के बाद कई महिलाओं ने रनिया को कुछ गाने के लिए कहा। रनिया गाती है –

नजर लगी राजा तोरे बंगले पर

नजर लागी राजा ....

जे मैं होती राजा बन कइकोयलिया

कुहुक रहती राजा ....

जो मैं होती राजा कारीबदरिया

बरस रहती राजा ....

जो मैं होती राजा चंपा चमेलिया

महक रहती राजा...[65]

मेले का वर्णन अब्दुल बिस्मिल्लाह ने जिस तरह से किया है उससे मेले का सजीव रूप विद्यमान हो जाता है। मेले में बजने वाले गीत, लाउडस्पीकर पर जोर-जोर से बजने वाले देशज फ़िल्मी गीत और इन गीतों

[65]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2003). मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ सं 81

का नक़ल उतारते बच्चों का चित्रण कथा को सजीवता प्रदान करते हैं। हलवाई का लड़का लाउडस्पीकर से बजने वाने गाने का नक़ल उतारते हुए गा रहा है-

लाले लालेओठवा से

बहे रे ललइया कि रसचूवेला

जइसेअमवा के मोजरा से

रसचूवेला

हो कि रसचूवेला...[66]

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने लोक गीतों के अलावा इस उपन्यास में लोक विश्वास, मुकरी, लोकोक्ति, चुनावी नारे, दो अर्थी कवित्त आदि का प्रयोग लोक संरचना के तहत ही किया है। रामलीला के संवाद और उसमें प्रयुक्त दोहे में भी लोक गीत शैली का प्रभाव दिखता है। गांव में होने वाली नौटंकी में भी लोक गीतों का बखूबी प्रयोग हुआ है। फ़िल्मी गीतों को लोक में ढालकर भी प्रस्तुत किया गया है।

दो बैलो की जोड़ी

बिछुड़ गई रे

गजब भयो रामा, जुलुमभयो रे

दो बैलो की जोड़ी ...[67]

गांवों के द्वारा खेला जा लोक नाट्य में पुरबिया गाने का एक उदहारणद्रष्टव्य है-

ताना मारैं सासु ननदिया

हम बहुरियाभइली ना

ताना मारैं ...

सोरा रोटी हम सरपोटीअउबटुआ भर दाल

[66]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2003).मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ सं 114

[67]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2018).झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ सं.150

सासु गोसाई तोहरीकिरिया, हम कइली उपवास

कि हम बउरहिया भइली ना ...[68]

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में लोक जीवन का गीतों, शेर, कव्वाली, चुनावी नारे एवं बच्चों के उक्ति एवं लोक विश्वास के माध्यम से स्त्री जीवन के यथार्थ को चित्रित किया है। ये गीत महज स्वप्न और इच्छाओं की ही अभिव्यक्ति नहीं करते है, वरन इच्छाओं और सपनों को मूर्त रूप देने के लिए परिवार और समाज जैसे संस्थाओं के मूल्यों-मान्यताओं से सामना करना पड़ता है। स्वप्न यथार्थ की टकराहट जीवन-आख्यान के जरिए गीतों में पहुँचती है, क्योंकि यह यथार्थ रूप में फलीभूत नहीं हो पाता, जो यथार्थ में फलीभूत नहीं हो पाता वह कल्पना बन गीतों के मध्यम से प्रस्तुत होता है। गीत सुख दुःख की वह अनुभूतियाँ हैं जो स्वर लहरियों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। लोक जीवन में खासकर स्त्री जीवन में गीतों का अधिक महत्व है।

कुठाँव-

कुठाँव यानी मर्मस्थल को छूने में उपन्यासकार सफल रहा है। मुस्लिम समाज की आतंरिक कमजोरियों, सामाजिक-सांस्कृतिक एवं धार्मिक कुठाँव से लेखक ने परिचय कराया है। इसमें जाति का भी संबंध है और स्थानीयता का भी बोध है। उत्तर प्रदेश का मिर्ज़ापुर इस उपन्यास के केंद्र में है। इस उपन्यास में मिर्ज़ापुर के तीज-त्यौहार, मेले, उर्स, स्थानीय संस्कृति आदि का चित्रण हुआ है। मिर्ज़ापुर का एक स्थानीय त्यौहार है कजरी। सावन मास में पड़ने वाला यह त्यौहार स्त्रियों में अधिक प्रचलित है। झूला झूलते समय स्त्रियाँ एवं लड़कियाँ कजरी गाती हैं। उपन्यासकार ने मिर्ज़ापुर जिले के सुदूर हिस्से 'गड़बड़ा' में लगाने वाले का चित्रण किया है। मेले में बहुत कुछ बेचा जा रहा है। इसी मेले में एक व्यक्ति गा-गा कर किताबें बेच रहा था। वह स्थानीय गीत 'कजरी' गा रहा था-

हम्मे सैकिल पर चढ़ना सिखाय द पिया

[68]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2003). मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ सं. 150-151

मिरजापुर घुमायद पिया ना[69]

सड़क के दोनों किनारों पर पर्दे लगे हुए थे। पर्दों के पीछे स्त्रियाँ कजरी गा रही थीं। मिर्ज़ापुर की कजरी के कई रूप रहे हैं। दंगलों की कजरी, स्त्रियों की कजरी, कवियों की कजरी और...और मिर्ज़ापुर की अपनी विशेष कजरी। अनन्त चौदस की रात हमेशा स्त्रियों की कजरी का ही आयोजन होता था।[70] मेले में स्त्रियाँ कजरी गा रही हैं दूसरी तरफ कव्वाली का भी मंच सजा हुआ है। नईम के कानों में रह रहकर दोनों का स्वर गूँज रहा है। नईम जहाँ खड़ा हुआ है सड़क के उस पार से स्त्रियाँ कजरी गा रही हैं।

हरि-हरि बरसात हैं सखि मेघ

झमाझम पानी रे हरी

कारी भूरी भूरीभयावनिघेरि

घटा घहरानी रामा

हरि हरिगरजितरजि बहु भांति

भूमि नियरानी रे हरी[71]

मेले में ठहरी स्त्रियाँ एक के बाद एक कजरी गा रही हैं। कजरी में प्रकृति की तरह ही उल्लास है। ऋतु परक गीत कजरी स्त्री जीवन की संवेदना को भी अभिव्यक्त करता है। ऐसा कहा जाता है कि स्त्रियों को सावन का महीना सबसे अधिक प्रिय है। इस महीना उनके लिए उल्लास एवं उत्सव का महीना है। इस माह में स्त्रियाँ पेड़ों पर झूले डालकर झूलती हैं और नवयुवतियां एवं लड़किया झूला झूलती हुई गाती हैं-

निबिया बिरिछ जिनि काटा मोरे बाबा

निबिया के छतवार छाँव रे।

[69]बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2019). कुठाँव पृष्ठ सं. 12
[70]बिस्मिल्लाह, अब्दुल,कुठाँव पृष्ठ सं. 103
[71]बिस्मिल्लाह, अब्दुल, कुठाँव पृष्ठ सं. 12

निबिया के कटले चिरइया उड़ि जइहैं

होई जाई सून सगरौ गाँव रे।

निबिया बिरिछ बाबा बिटिया की नाईं

टुट जइहे तोर करिहाँव रे।[72]

इस गीत में स्त्री का दर्द मुखरित हुआ है। यह गीत स्त्री जीवन की पूरी कथा को व्यक्त करने वाला गीत है। वैसे तो यह बहुत संवेदनापरक विदाई गीत है, लेकिन इसे लड़कियाँ झूला झूलते हुए गा रही हैं। झूला झुलाती लड़कियों को पता है कि उन्हें भी एक दिन अपना घर छोड़कर कहीं और जाना है। वह जिन परिस्थितियों से गुजरी है उसी तरह से किसी और को न गुजरना पड़े, यही कारण है कि उसे घर के इन पेड़ों-पौधों और उस पर रहने वाली चिड़ियों की चिंता है । नीम का पेड़ तो एक प्रतीक है वह प्रतीक के माध्यम से अपनी जीवन के दर्द को व्यक्त कर रही हैं। नीम का पेड़ और उसमें बसर करने वाली चिड़ियों में जीवन का फैलाव देखती हैं । बेटियों के बिना घर कितना वीरान होता है, कितना सूना हो जाता है इसे एक स्त्री अधिक जानती है। इस सूनेपन में माँ कितनी अकेली पड़ जाएगी, इसको लेकर वह चिंतित है। नवयुवतियां गाती हैं और अपने पिता से यह अनुरोध करती हैं कि वे नीम का पेड़ न काटें। इस गीत में पितृसत्ता के आगे बेबस, लाचार स्त्री का दर्द है तो दूसरी तरफ प्रकृति से सहचर संबंध भी।

मुस्लिम समाज में कव्वाली का विशेष महत्व है। किसी भी उत्सव, आयोजन, खतना एवं मेले भी इसका आयोजन किया जाता है। कव्वाली के सन्दर्भ में अब्दुल बिस्मिल्लाह लिखते हैं- “कव्वाली के श्रोता सिर्फ़ पुरुष ही होते थे। यानी एक ही सड़क पर पर्दे के अन्दर स्त्रियाँ कजरी का रस लेती थीं तो पुरुष खुल्लम खुल्ला क़व्वाली सुनते थे। स्त्रियाँ पर्दे में और पुरुष सड़क पर। भारतीय संस्कृति का यह रूप मिर्ज़ापुर में हर साल दिखता था।[73] ‘कुठाँव’ उपन्यास में कव्वाली का ख़ूब प्रयोग हुआ है। यह जवाबी

[72]बिस्मिल्लाह, अब्दुल,कुठाँव पृष्ठ सं. 148

[73]बिस्मिल्लाह, अब्दुल(2019) कुठाँव पृष्ठ सं. 103

कव्वाली है जिसमें दो टीम है। एक टीम का नेतृत्व पुरुष तो दूसरी टीम का नेतृत्व महिला कर रही है। पुरुष कव्वाल द्वारा प्रतिद्वंदी को मुखातिब करके गया जवाबी कव्वाली का एक उदहारण द्रष्टव्य है-

सलामे-हसरत कबूल कर लो

मेरी मुहब्बत कबूल कर लो

उदास नज़ारे तड़प-तड़पकर तुम्हारे जलवों को ढूँढती हैं

जो ख्वाब की तरह खो गए उन हसीं लम्हों को ढूँढती है।

अगर न हो नागवार तुमको

तो ये शिकायत कबूल कर लो

मेरी मुहब्बत कबूल कर लो

तो ये शिकायत ....

इसके जवाब में गायिका जवाब देती है-

तुम्हीं निगाहों की आरज़ू हो, तुम्हीं ख़यालों का मुद्दआ हो

मेरी परस्तिश की लाज रख लो

मेरी परस्तिश की लाज रख लो

मेरी मुहब्बत कबूल कर लो।[74]

इस तरह की जवाबी कव्वाली में एक दूसरे को मात देने की पूरी कोशिश रहती है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इस उपन्यास में हिंदू एवं मुस्लिम दोनों धर्म के संस्कृतियों के साथ ही स्थानीय लोक पर्व एवं मेलों का जो चित्र खींचा है वह सजीव जान पड़ता है। कुठाँव में शेर एवं लोक प्रसंग का भी समावेश किया है जो द्विअर्थी एवं अश्लील है। अब्दुल बिस्मिल्लाह सामाजिक यथार्थ को प्रकट करने में द्विअर्थी एवं अश्लीलता से संकोच नहीं करते। इस उपन्यास में जगह-जगह शेर-ओ-शायरी भी देखने को मिलती है। शायरी लोकोक्तियों को समाहित कर गढ़ी गई हैं। उदाहरणार्थ:-

---

[74]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2019). कुठाँव, पृष्ठ सं.105

"पहिले बइर सम, फिर भइलेटिकोरा।

सैंया जी हाथ लागल हो गइलैं सिंधोरा।"[75]

"ख़तारे-दर्ज़ी का सीना देखकर,

जी में आता है कि इसको मल मल दूँ।"[76]

अश्लीलता के संदर्भ में उपन्यासकार 'कहना जरूरी है' में आत्मस्वीकृति करते हैं। पहली बात तो यह कि इस उपन्यास में पाठकों को दो आपत्तिजनक बातें दिखेंगी; कुछ अश्लीलता और जातिसूचक शब्दों (जो कि आज के युग में असंसदीय या निषिद्ध हैं।) का प्रयोग। मगर यह मेरी मजबूरी थी। उपन्यास की कथावस्तु के हिसाब से इनसे बच पाना मेरे लिए लगभग असम्भव-सा था। फिर भी मैं इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।"[77] बिस्मिल्लाह जी ने भले ही इसके लिए क्षमा प्रार्थी हैं, लेकिन पूरे उपन्यास में द्विअर्थी एवं अश्लीलता का प्रयोग अधिक दिखता है।

झीनी -झीनी बीनी चदरिया-

इस उपन्यास में बनारस के बुनकरों के आर्थिक शोषण, तंगहाली, गरीबी, संप्रदायवाद एवं वर्ग संघर्ष को दिखाया गया है। उपन्यास के केंद्र में बजरडीहा के बुनकर हैं जो साड़ी बीनते हैं। 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास की बोली-बानी में स्थानीयता का प्रभाव अधिक है या कहें कि यह उपन्यास स्थानीय बोली में लिखा गया है तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। आंचलिकता के सारे तत्व मौजूद होने के बाद भी यह आंचलिक उपन्यास नहीं है। स्थानीय लोक जीवन की झांकी, मेले, त्यौहार आदि के संयोजन से

[75]बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2019). कुठाँव. पृष्ठ सं.98
[76]बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2019). कुठाँव. पृष्ठ सं. 58
[77]बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2019). कुठाँव. पृष्ठ सं. 9

यह उपन्यास बुनकर जीवन को उद्घाटित करने में सफल रहा है। अब्दुल बिस्मिल्लाह के अन्य उपन्यासों की तरह ही इस उपन्यास में भी लोक गीतों का प्रयोग हुआ है। ये लोक गीत जीवन के विभिन्न पहलुओं को उद्घाटित करने में सक्षम है। उपन्यास में कजरी, सोहर, बन्दा लचारी लोकगीतों का प्रयोग हुआ है। राम भजन दलाल दातून करते करते कजरी गुनगुना रहा है-

चार गुंडा आगे चलै

चार गुंडा पीछे चलै

बिचवा में चलेलू उतान सांवरगोरिया

तुहंइ बाटू नोखे क जवान सांवरगोरिया[78]

कजरी लोक गीत मिर्ज़ापुर एवं बनारस दोनों जिलों में गाया जाता है जिसे स्त्री-पुरुष गुनगुनाते रहते हैं। इस उपन्यास में लोक गीतों का जो भी वर्णन हुआ है वह पात्रानुकूल एवं कथ्यपरक है।

शादी-विवाह के अवसर पर स्त्रियाँ विवाह गीत गाती हैं। विवाह कर्म की शुरूआत से लेकर अन्त तक वे तरह-तरह के गीत गाए जाते हैं जिसे वातारण संगीतमय हो जाता है। लोकगीतों के माध्यम से मनमोहक वातावरण की सृष्टि होती है। नसीबुन बुआ के माध्यम से लेखक ने लोकगीतों को प्रस्तुत किया है। ये लोक गीत शादी विवाह में गाए जाते हैं। नसीबुन बुआ इस तरह के कार्यक्रमों में सबसे आगे रही हैं और वही सबसे पहले राग उठाती हैं। रेहाना (रेहनावा) की शादी में नसीबुन बुआ बन्ना गा रही हैं-

बन्नी अउर बन्ना की फली मुलाक़ात है

क्या मजे की बात है, क्या मजे की बात है

बन्नी कहे हमको टीका बनवा दो

[78]बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2018). झीनी- झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ सं.

दोनों में शर्त लगी क्या मजे की बात है

बन्नीअउर बन्ना की फली मुलाक़ात है।[79]

बन्ना बन्नी लोकगीत में दुल्हा दुल्हन के साथ चुहल(छेड़छाड़) की जाती है। कई बार तो काम क्रीड़ा को इस तरह के लोक गीतों के माध्यम से व्यंजित किया जाता है। उपर्युक्त गीत में दुल्हा-दुल्हन को हास-परिहास के माध्यम से भावी जीवन के लिए तैयार किया जाता है। उनके बीच जो भी संकोच रहता है उसे कम करने में ये गीत आधार बनते हैं।

विवाह का सबसे मार्मिक एवं संवेदनात्मक हिस्सा कन्या की विदाई होता है। विदाई के समय सभी भाव विह्वल हो जाते हैं। विदाई गीत में दुल्हन की वेदना उभर कर आती है। जिस बात को वह कभी नहीं कहती उसे वह विदाई गीत के माध्यम से कहती है। जिस घर में वह पली-बढ़ी उसे अपना ही घर छोड़कर जाना पड़ता है। विदाई गीत का एक उदहारणद्रष्टव्य है-

काहे को दिया विदेस रे

अरे लाखिया बाबुल मोरे

भईया के दिहै बाबू आपन देहरिया

हमके देह उपरदेस रे

एक बन गइलीदूसर बन गइली

तिसरे में लागीपियास

मियाना क परदा उलटि के जो देखलीं

ना बाबुल न बाबुल क देस रे।[80]

विदाई के समय बेटी अपने पिता से कहती है कि उसके भाई को उसका अपना घर मिला और उसे घर छोड़कर परदेश जाना पड़ रहा है । उसके साथ हर समय भाई से दोयम दर्जे का व्यवहार हुआ और अब

[79]बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2008). झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ सं. 85

[80]बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2008). झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ सं.87

उसे इतना दूर जाना पड़ रहा है जहाँ उसे अपने देश की तरह कुछ भी नहीं है। उसे न तो अपने पिता मिलेंगे और न ही अपना गाँव समाज। इन लोकगीतों के बहाने लोक समाज की स्त्री-मन के विविध भावोच्छवास अपनी संपूर्ण तरलता और उद्दाम वेदना के साथ प्रकट हुए हैं। ये लोकगीत न सिर्फ उसकी वेदना को बयां करते हैं बल्कि इनमें उसका प्रतिरोध भी दर्ज हुआ है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने उपन्यासों में कथा को प्रभावशाली बनाने हेतु कई-कई जगहों पर लोकगीतों के माध्यम से लोक जगहों पर लोकगीतों का प्रयोग किया है। लोकगीत समाज के दुख-दर्द एवं गहरी संवेदना को गहरी अनुभूति कराता है। 'कुठाँव', 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया', 'मुखड़ा क्या देखे', 'ज़हरबाद' उपन्यासों में लोक गीतों का प्रयोग हुआ है। 'समर शेष है', 'रावी लिखता है' और 'दंतकथा' उपन्यासों में लोक गीत नहीं है। इन तीनों उपन्यासों में आंचलिकता नहीं है और न ही स्थानीय बोलियों का प्रभाव है। इनके चार उपन्यासों में लोक जीवन अधिक है। 'मुखड़ा क्या देखे' में सर्वाधिक लोक गीतों के दर्शन होते हैं। इन उपन्यासों के आधार पर देखें तो हम पाते हैं कि अब्दुल बिस्मिल्लाह का लोक-जीवन से गहरा जुड़ाव जान पड़ता है। उन्हें अपने परिवेश की सांस्कृतिक समझ है। यहाँ यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि अब्दुल बिस्मिल्लाह को स्थानीय गीत, रीति-रिवाज, टोन, तेवर और मानसिकता का गहरा बोध है। एक प्रकार से देखें तो अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में प्रयुक्त लोक का यह स्वरुप कथा में रोचकता पैदा करने के साथ- साथ शिल्प संरचना को और भी प्रभावी बनाता है।

4.5 - इस्लाम संबंधित पारिभाषिक शब्दावली

अब्दुल बिस्मिल्लाह न तो धार्मिक लेखक हैं और न ही इनके साहित्य में धर्म का विवेचन किया गया है। लेकिन अब्दुल बिस्मिल्लाह ने जितने भी उपन्यास लिखे हैं उन सभी उपन्यासों में मुस्लिम पात्रों की उपस्थिति रही है। 'ज़हरबाद', 'समर शेष है', 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया', 'मुखड़ा क्या देखे', 'रावी

लिखता है' और कुठाँव उपन्यास में मुस्लिम पात्र हैं। इन सभी उपन्यासों में इस्लाम धर्म से संबंधित कोई न कोई जिक्र अवश्य आया हुआ है। इस्लाम धर्म के त्यौहार, व्रत, उपवास एवं उर्स का उल्लेख हुआ है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने कथा साहित्य में कहीं भी इस्लाम के उदय एवं प्रस्थान के बारे में नहीं बताया है और न ही कहीं भी इस्लाम धर्म का महिमा मंडन ही किया है। लेखक ने मुस्लिमों के बीच व्याप्त आडंबर, धार्मिक पाखण्ड, जातीय पदानुक्रम (Hierarchy) ऊँच-नीच की भावना, धर्म गुरुओं, उलेमाओं आदि के कार्य व्यवहारों को अपने कथा साहित्य में दर्ज किया है। इस्लाम धर्म की के बारे में रामधारी सिंह दिनकर कहते हैं- "इस्लाम को जन्म लिए हुए सिर्फ अस्सी वर्ष हुए थे कि उतने ही समय में उसका झंडा एक ओर तो भारत की सीमा पर पहुँच गया और दूसरी ओर वह अटलांटिक महासागर के किनारे पर जा गड़ा। सात सौ ईस्वी लगते लगते इस्लाम इराक, ईरान और मध्य एशिया में फ़ैल गया तथा सन् 1612 में सिंध मुसलमानों के अधिकार में आ गया। और उसी साल मुसलमानी राज्य स्पेन में भी गया। हिजरी सन् के सौ साल होते-होते मुसलमानों के राज्य के सामान शक्तिशाली राज्य दुनिया में और नहीं रह गया था।"[81] जवाहर लाल नेहरू ने भी डिस्कवरी ऑफ़ इंडिया में मुस्लिम संस्कृति पर बात की है। वे लिखते हैं- "मुस्लिम संस्कृति से तात्पर्य इस्लाम के प्रकाश में समाज और जीवन के सर्वांगीण संस्कार सुधार और विकास है, जिसकी सीमा में रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, साहित्य, कला, दर्शन, राजनीति, आचार, व्यवहार, नीति, रीति, रूचि, धर्म, अर्थ आदि। व्यक्ति समाज तथा जीवन से संबंध सभी तत्त्व आ जाते हैं।"[82] अब्दुल बिस्मिल्लाह के यहाँ धर्म संबंधी जो भी पदावलियाँ आती हैं ज्यादातर समाज में प्रचलित शब्द ही होते हैं। 'जहरबाद', 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' और 'मुखड़ा क्या देखे' में इस तरह के शब्दों का प्रयोग हुआ है। धर्म के प्रति आमजन में जो विश्वास है, जो नियम है उसे लेखक ने अपने उपन्यासों में कथ्य के अनुरूप शामिल किया है।

[81]दिनकर, रामधारी सिंह .(2010). संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ सं. 244

[82]नेहरू, जवाहर लाल, डिस्कवरी ऑफ़ इंडिया, पृष्ठ सं. 2008

नमाज- मुस्लिमों में ईश्वर प्रार्थना का तरीका है। और यह दिन में पांच बार किया जता है। पांचों नमाज को अलग-अलग नाम से जाना जाता है।

नमाज ए फ़जर- यह नमाज सूर्योदय से पहले पढ़ी जाती है।

नमाज ए जुह्र- यह नमाज सूर्योदय के बाद होता है।

नमाज इ अस्र- इस नमाज को सूर्यास्त से थोड़ा पहले अदा किया जाता है।

नमाज ए मगरिब- यह नमाज सूर्यास्त के बाद संध्याकाल में किया जाता है।

नमाज ए इषा-   इस नमाज को सूर्य डूबने से डेढ़ घंटे बाद अदा किया जाता है।

कलमा पढ़ना -एकेश्वर का दृढ प्रतिज्ञा के लिए जाप करना और हजरत मुहम्मद को याद कारते हुए इश्वर के दूत के रूप में मानना।

हज़- मुसलमानों के सबसे पवित्र तीर्थ स्थल मक्का की धार्मिक यात्रा को हज़ कहा जाता है।

हाजी- हज़ की यात्रा कर चुके व्यक्ति को हाजी कहा जाता है।

ज़कात देना- अपनी कमाई का ढाई प्रतिशत हिस्सा दान करना ज़कात कहलाता है।

रोज़ा- इस्लाम का पवित्र महीना रमजान में उपवास रखना।

तरावी - रोजे के दिनों में पढ़ी जाने वाली विशेष नमाज।

अफ्तार- रोजे का उपवास समाप्त होने के बाद शाम के समय में जो कुछ भी खाया जाता है उसे अफ्तार कहते हैं। अरबी शब्द अफ्तार का अर्थ नाश्ता होता है।

सेहरी- रमजान के वक्त सुबह चार बजे से पहले जो खाना खाया जाता है उसे सेहरी कहते हैं। सेहरी के बारे में अब्दुल बिस्मिल्लाह लिखते हैं- " दो बजे रात से ही सेहरी जगाने वालों की टोलियाँ निकल पड़ती हैं। "सेहरी के खायवालो ! जागो! सेहरी के खायवालो जागो ..."[83]

मुहर्रम- यह इस्लामिक वर्ष का पहला महीना होता है। इस्लाम में चार महीनों को सबसे अधिक पवित्र माना जाता है उसमें यह महीना भी है। इसी महीने में मुहम्मद साहब के नवासे हजरत इमाम हुसैन परिवार एवं दोस्तों के साथ शहीद कर दिया गया था। यह ग़मी एवं शोक का त्यौहार है। मुस्लिम परिवारों में महिलाएं इस दौरान चूड़ियां नहीं पहनती और न किसी विशेष तरह का मनोरजन ही होता है। 'ज़हरबाद' उपन्यास में लेखक ने मुहर्रम का यथार्थ चित्रण किया है। एक उदहारण द्रष्टव्य है- मुहर्रम के दिन मामू के लड़के को सवारी चढ़ाई जा रही है। अब्बा 'शहादतनामा' में से कोई नौहा पढ़ते हैं। और हम याली-याली (या अली) करके मातम करते। क्षण भर बाद रफीक भैया कांपने लगते और दूध का प्याला मांगते हैं। नाम पूछने पर बताते हैं 'मैं खूनी नाल हूँ...फिर देखता हूँ कि मुझे भी सवारी चढ़ी हुई हैं।"[84] इसी तरह झीनी-झीनी बीनी चदरिया में लेखक ने मुहर्रम का चित्रण किया है। इस उपन्यास में बुनकरों के जो परिवार हैं वे सभी धार्मिक भावनाओं के साथ जीवन व्यतीत करते हैं। ईद, बकरीद के बाद मुहर्रम की तैयारियां शुरू हो जाती है। छोटे-छोटे लड़के लुंगी पहनकर हाथों में तलवार लिए बहुत ही कुशलता के साथ अपनी वीरता का परिचय देते हैं और नारा लगाते हैं- "बोलो-बोली महमदीयाऽऽहुसैनऽन।"[85]

नौहा- मुहर्रम में गाए जाने वाले दुःख भरे गीत।

कर्बला – जहाँ ताजिए को दफ़न किया जाता है।

---

[83]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2008). झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ सं. 68
[84]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2016). जहरबाद, पृष्ठ सं. 37
[85]बिस्मिल्लाह, अब्दुल .(2018). झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृष्ठ सं.85

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में कर्बला का वर्णन किया है। वे लिखते हैं- " दोपहर के बाद जब कर्बला के लिए ताज़िये निकले तो नवयुवकों के दल छाती पिट-पिटकर मातम करते हुए आगे-आगे चले! गम को उत्सव की तरह मनाने वाले ये नौजवान यहाँ दिखा देना चाहते थे कि हुसैन की हत्या का असली गम बस हमीं को है। शिया युवकों ने तो ब्लेड से अपने सीनों पर चीरे लगा रक्खे थे और उनसे खून की बूँदे छलक रही थी। अनेक युवक लोहे की सिकड़ियों से अपनी पीठ पर चोट कर रहे थे। इस तरह बनारस के बुनकरों का यह झुण्ड हनुमान फाटक के पास इकट्ठा होकर 'हुस्से-हुस्से' करता हुआ कर्बला की और धीरे-धीरे बढ़ा जा रहा था।"[86]

उर्स- किसी सूफी संत के मजार पर लगने वाला वार्षिक मेला। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया', 'मुखड़ा क्या देखे' एवं कुठाँव उपन्यास में उर्स का उल्लेख हुआ है। उर्स पर मेले लगते हैं, लोग मन्नते मांगते हैं और चादर चढ़ाते हैं। 'मुखड़ा क्या देखे' में जब भूरी की बेटी बीमार होती है तो गांव की महिलाएं उसे गाजी मिया से मन्नत मांगने को कहती हैं। " जुम्मेवाले दिन अगरबत्ती सुलगा के गाजी मियाँ से मन्नत मांग लेना।"[87]

फातिहा- फातिहा एक सुरह का नाम है, जो क़ुरान का सबसे पहला सूरह हैं। अल्हम दो लिल्ला हीरब्बिल आलमिन, सारी प्रशंसा उस महान ईश्वर के लिए है जो सारे जहान का रब है। अररहमाननिर रहीम।[88] 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में अलीमुन के मृत्यु के बाद जब इकबाल को फातिहा पढ़ने को

[86]बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2008) झीनी-झीनी बिनी चदरिया, पृष्ठ सं.98
[87]बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2003). मुखड़ा क्या देखे, पृष्ठ सं. 184
[88]https://hi.quora.com/

कहा जाता है तो इकबाल कहता है-" जब वह ज़िंदा थी तब उसकी सेवा नहीं की। लाख सिपारा पढ़ने से उसे तसल्ली नहीं मिलेगी।"[89]

कुर्बानी देना- कुर्बानी का संबंध हजरत इब्राहिम से है। इब्राहिम को खुदा के तरफ से हुक्म हुआ कि अपने सबसे प्रिय चीज की कुर्बानी करो। हजरत इब्राहीम ने अपनी सबसे प्यारी चीज अपने बेटे का कुर्बानी करने को तैयार हो गए। कुर्बानी के एन मौके पर हजरत इस्माइल की जगह दुम्बा कुर्बान हो गया। तभी से कुर्बानी की शुरूआत होती है। कुर्बानी के सन्दर्भ में कहा गया कि जिसके ऊपर किसी भी तरह का बकाया नहीं होगा यानी कर्ज नहीं होगा वही कुर्बानी दे सकता है। झीनी-झीनी बीनी चदरिया में मतीन का विचार है कि -"कुर्बानी न की जाय क्योंकि कर्जदार पर कुर्बानी जायज नहीं है, पर अलीमुन अड़ी हुई थी। एक ठे तो लड़का है, किसका मुँह जोहेगा?"[90] कुर्बानी का जो संबंध है उसका अनुकरण समाज में नहीं हो पाता है। मतीन इस्लाम धर्म के पाखंडों का विरोध करता है।

समग्रता में देखें तो हम पाते हैं कि इनके उपन्यासों के कला पक्ष में विविधता है। इनके उपन्यासों के कथानक और पात्र हर उपन्यास में बदल जाते हैं। बदलता जीवन-रूप इनके उपन्यासों की केंद्रीयता में है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने जो भी कुछ कहना चाहा है वे सभी अपने पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया है। स्वयं उपस्थित होकर कथा को उबाऊ नहीं बनाते। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग, संवाद योजना एवं स्थानीय बोलियों का प्रयोग कर कथा को और भी अधिक यथार्थपरक बनाया है। स्थानीय पात्रों के माध्यम से इन्होंने गीतों का सुन्दर प्रयोग किया है। ये गीत इनके उपन्यासों का बीज तत्व जान पड़ते हैं। सूक्त वाक्यों एवं लोकोक्तियों व मुहावरों का संयोजन इनके उपन्यासों को सुरुचिपूर्ण बनाते हैं। इनके उपन्यासों के पात्र ग्रामीण जीवन से आते हैं जो निम्न मध्यम वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। अंग्रेजी, उर्दू, एवं संस्कृति भाषा

[89]बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2008) झीनी-झीनी बिनी चदरिया, पृष्ठ सं.161
[90]बिस्मिल्लाह, अब्दुल (2008) झीनी-झीनी बिनी चदरिया, पृष्ठ सं.109

का प्रयोग भी इनके उपन्यासों में बखूबी दिखता है। इनके उपन्यासों की भाषा बहुत ही सहज एवं सरल है। स्थानीयता का पुट होते हुए भी कहीं भी भाषा का प्रवाह बाधित नहीं होता। अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने बेजोड़ शिल्प और कहन के माध्यम से कथा को पठनीय बनाते हैं।

उपसंहार

किसी राष्ट्र के साहित्य को ध्यान से पढ़कर यह बताया जा सकता है कि उसकी जनता किस प्रकार की थी।

-लुई द बनोल

फ्रांसीसी दार्शनिक लुई द बनोल का यह कथन साहित्य और समाज के अंतर्संबंध को समझाने का आधार बिन्दु है। इस आधार बिन्दु में लेखक की रचना प्रक्रिया भी शामिल है। साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के अर्थ का संदर्भ सामाजिक यथार्थ के बिना संभव नहीं है। समाज मनुष्य जीवन के क्रिया-कलापों का ताना-बाना है। मनुष्य की इन्हीं क्रियाओं के फलस्वरूप साहित्य में समाज के अन्वेषण एवं विवेचन हेतु अनेक साहित्यिक पद्धतियाँ प्रचलित हैं। मनुष्य-जीवन में विविधताओं के बढ़ने से साहित्य में जीवन के आग्रह से साहित्य के समाजशास्त्रीय आलोचना की एक नवीन पद्धति सामने आई है । इस आलोचनात्मक पद्धति के अंतर्गत साहित्य और समाज के संबंधों पर अधिक बल दिया जाता है। मनुष्य की सामाजिकता को जानने समझने के अनेक रास्ते हैं उसमें से एक रास्ता साहित्य भी है। साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा उपन्यास में सामाजिक पहलू स्पष्ट और अधिक दिखाई देती है। आधुनिक भाव बोध के साथ ही साहित्य में खासकर उपन्यासों में जीवन के हर पहलू का चित्रण है। यह चित्रण न केवल कथ्य के रूप में है, बल्कि रचना के प्रत्येक स्तर पर अर्थात उसकी अंतर्वस्तु संरचना, शिल्प और भाषा में भी समाज की अभिव्यक्ति होती है। साहित्य के समाजशास्त्र में सामाजिक संरचना एवं उसकी अभिव्यक्ति लेखक अपने सृजनात्मक कौशल से करता है। अपने समय और समाज को उपन्यास बखूबी व्याख्यायित करते हैं। उपन्यास के मार्फ़त समाज के निरीक्षण, परीक्षण एवं अन्वेषण की संभावना उपन्यास में अधिक मिलती है। उपन्यास यथार्थ का नहीं अस्तित्व का परीक्षण करता है। अस्तित्व घटित का नहीं होता वह मानवीय संवेदनाओं का आभास है, जो मनुष्य हो सकता है, जिसके लिए वह सक्षम है। उपन्यासकार खोज के जरिए मानवीय संभावनाओं का नक्शा बनाता है। चरित्र और दुनिया सम्भावनाओं द्वारा जानी जाती है। अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ का परीक्षण करने के साथ ही मनुष्य के अस्तित्व और मानवीय संवेदना के साथ नजर आते हैं। ‘झीनी-झीनी बीनी चदरिया’ में सामाजिक यथार्थ एवं पूँजीवाद का धर्म से गठजोड़ का चित्रण सर्वाधिक हुआ है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध 'अब्दुल बिस्मिलाह के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन' के अंतर्गत बिस्मिल्लाह के उपन्यासों को केंद्र में रखकर उसका समाजशास्त्रीय अध्ययन किया गया है । अब्दुल बिस्मिल्लाह के शुरूआती दो उपन्यास आत्मकथात्मक होते हुए भी सामाजिकता से लबरेज हैं। इन दोनों उपन्यासों में बिस्मिल्लाह ने अपने जीवन-संघर्ष को इस तरह से चित्रित किया है कि कहानी स्व होते हुए भी आमजन से सीधे जुड़ती है। लेखक ने अभावग्रस्तता के साथ जीवन में जो भी संघर्ष किया है वह इनके सभी उपन्यासों में दिखाता है।

समकालीन उपन्यासकारों में अब्दुल बिस्मिल्लाह की अपनी अलग पहचान है। इन्होंने अपने उपन्यासों में आमजन के सभी पहलुओं को उद्धाटित करने का प्रयास किया है। आम जनता की पीड़ा को आवाज दी है। राजनीतिक, सामाजिक ढाँचें की परत दर परत पड़ताल करने के साथ ही जाति, वर्ग, धार्मिक आडम्बर, रुढियों की जड़ता का मुखरता से प्रतिरोध किया है। स्वतंत्रता के बाद धर्म, राजनीति और पूँजी का गठजोड़ किस तरह से लोकतंत्र को खोखला कर रहा है और किस तरह से आम जनता की पीड़ा, दुःख, अभावग्रस्तता , दरिद्रता कम होने का नाम नहीं ले रहा। समाज के नए बनते सम्बन्ध का ग्रामीण जीवन पर किस तरह का प्रभाव पड़ रहा है इसका चित्रण इनके उपन्यासों का प्रस्थान बिन्दु हैं। सामंतवाद से पूँजीवाद के तरफ बढ़ता समाज किस तरह से शोषण के नए हथियार ईजाद कर रहा हैं और आम जनता इन चालाकियों से वाकिफ़ नहीं हो पा रही इस को भी इन्होंने अपने उपन्यासों में प्रमुखता से चित्रित किया है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह का प्रारम्भिक जीवन अभावग्रस्तता में व्यतीत हुआ है इनका जीवन-संघर्ष इनके उपन्यासों में दृष्टिगत होता है। इनके सभी उपन्यासों में मानव जीवन के बेहतरी की आशा एवं उम्मीद है। जीवन की बेहतरी के लिए ही इनके पात्र गाँव से पलायन करते हैं, लेकिन यह पलायन भी शोषण के नए रूप ईजाद करता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह के लेखन का कौशल यह है कि वे स्व की पीड़ा को आमजनता की पीड़ा में तब्दील कर देते हैं। वे इसके लिए मार्क्सवादी दर्शन का प्रयोग करते हैं। इनके

उपन्यासों में सीधे-सीधे वर्ग संघर्ष या क्रांति की बात नहीं होती, लेकिन द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का संघर्ष इनके अधिकांश उपन्यासों ‘मुखड़ा क्या देखें’, ‘समर शेष है’, ‘झीनी-झीनी बीनी चदरिया’ में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत हुआ है। यही कारण है कि इनके लेखन की प्रक्रिया में मार्क्सवादी दृष्टिकोण हमेशा बनी रहती है। शोषक वर्ग धर्म का सहारा लेकर किस तरह से आमजन का शोषण करते हैं और समाज में प्रतिष्ठित होते रहते हैं इसका चित्रण भी इनके उपन्यासों में हुआ है। मुस्लिम समाज में किस तरह से जाति व्यवस्था कायम है, इसकी हर परत का पर्दाफाश है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने कहीं भी मुस्लिम समाज का महिमामंडन नहीं किया है, बल्कि समाज का जो खीजन है उसका चित्रण बखूबी किया है। मुस्लिम समाज की वर्तमान सामाजिक पृष्ठभूमि के साथ, उनकी आन्तरिक कमजोरियों को भी उजागर किया है। पूँजीवादी व्यवस्था में शोषक वर्ग जाति-धर्म की व्यवस्था से ऊपर अर्थ को महत्व देता है और इसके लिए वह धर्म का सहारा लेने से भी गुरेज नहीं करता।

‘ज़हरबाद’ एवं ‘समर शेष है’ उपन्यास ‘मैं’ शैली में लिखा है, लेकिन इन दोनों उपन्यासों में स्वयं की पीड़ा, दुःख, गरीबी आदि का कहीं भी विशेष उल्लेख नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि अब्दुल बिस्मिल्लाह को स्व की पीड़ा को पर-पीड़ा में तबदील करने का हुनर मालूम है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने जितने भी उपन्यास लिखे हैं उसमें मेहनतकश जनता की पीड़ा है। स्वतंत्रता के बाद जनता की स्थितियों में कोई बदलाव नहीं हुआ और न ही किसी तरह का कोई लाभ आम जनता को मिला। ‘मुखड़ा क्या देखे’ में आजादी के बाद भी आम लोगों के जीवन में किसी भी प्रकार का कोई बदलाव नहीं हुआ, स्थितियां ज्यों की त्यों बनी रही। सामाजिक परिवर्तन के नाम पर यह जरूर हुआ कि हिंदू-मुस्लिम में वैमनस्य बढ़ गया। सामाजिक संघर्ष के अलावा पारिवारिक टूटन का भी चित्रण लेखक ने किया है।

समकालीन उपन्यासकारों में बिस्मिल्लाह ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से एक नया स्वरुप विकसित किया है। इनके सभी उपन्यासों में समाज का विशेष रूप से चित्रण हुआ है। इस्लाम के जो सिद्धांत हैं जहाँ स्त्री-पुरुष के अधिकारों में विशेष अंतर नहीं है वही यथार्थ रूप में ऐसा कुछ

भी नहीं जान पड़ता। पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में स्त्री-पुरुष संबंध में असमानता की लकीर और चौड़ी हुई है। इस स्वरूप में समाज का यथार्थ चित्रण अधिक हुआ है। इनके सभी उपन्यासों में समाज के शोषित वर्ग का चित्रण हुआ है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने स्त्रियों को केंद्र में रखकर किसी उपन्यास की रचना तो नहीं की है, लेकिन इनके उपन्यासों में स्त्रियों खासकर मुस्लिम स्त्रियों की स्थितियों का चित्रण हुआ है। महिलाओं की वास्तविक स्थिति का चित्रण करते हुए लिखते हैं- 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' की कमरून, रेहना इस व्यवस्था के उदहारण हैं।

अब्दुल बिस्मिलाह के सभी उपन्यासों 'ज़हरबाद', 'समर शेष है', 'मुखड़ा क्या देखे', 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया', 'दन्तकथा','अपवित्र आख्यान', 'रावी लिखता है' एवं 'कुठाँव' में जीवन का वैविध्य है। इस वैविध्य में भी आमजन की पीड़ा ही है। बिस्मिल्लाह ने निम्न एवं मध्य वर्गीय मुस्लिम परिवारों के भीतर क्या-क्या घटता है को जिस तरह से चित्रित किया है वह अन्यत्र कहीं नहीं है। इनके उपन्यासों में मुस्लिम समाज के उच्च वर्ग का जिक्र बहुत कम हुआ है। 'ज़हरबाद', 'मुखड़ा क्या देखे' और 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में आर्थिक विपन्नता का चित्रण बखूबी हुआ है। आर्थिक विपन्नता के कारण ही घर में झगड़े होते हैं। 'ज़हरबाद' उपन्यास में कथानायक ने अपने माता-पिता के बीच होने वाले झगड़े का ज़िक्र किया। खाने-पीने की कमी का चित्रण 'समर शेष है' और 'ज़हरबाद' दोनों उपन्यासों में हुआ है। ईद आई तो अपने साथ कटुता लेकर आई। पता नहीं किस बात को लेकर ऐन ईद वाले दिन अब्बा और अम्मा में लड़ाई हो गई। बिस्मिल्लाह ने परिवारों में आपसी कलह की मुख्यों वजहों में अर्थ को केंद्र में रखा है।

'दन्तकथा' उपन्यास को छोड़कर इनके सभी उपन्यासों में अर्थ की भूमिका का चित्रण किसी न किसी रूप में अवश्य हुआ है। अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने उपन्यासों में निम्न वर्ग के मुस्लिम परिवारों का जीवन, उच्च वर्ग या कहें कि उच्च वर्ण शेख, सय्यैद, पठान, का वर्चस्व किस तरह से मुस्लिम श्रमिक जातियों के ऊपर है का भी निरूपण यथार्थ रूप में किया है । वर्ग विश्लेषण, सामंती एवं पूँजीवादी शोषण

का गठजोड़, पूँजी का जीवन में प्रवेश, नैतिक-अनैतिक की बहस, तीज त्यौहार, मेले, ऊर्स आदि का बहुत ही सजीव वर्णन किया है। बिस्मिल्लाह ने ग्रामीण जीवन खासकर मुस्लिम समाज के जीवन के विविध रूपों का जिस तरह से चित्रण किया है वैसा कहीं और देखने को नहीं मिलता। इनेक उपन्यासों में राजनीतिक चेतना की कमी दिखाती है। ‘झीनी-झीनी बीनी चदरिया’ के ‘इकबाल’ को छोड़कर कोई भी पात्र राजनीतिक रूप से सचेत नहीं हैं। मतीन हथकरघा में पॉवरलूम के आ जाने का मतलब समझता है और इसके लिए वह बुनकरों को संगठित भी करता है। इस उपन्यास में बुनकरों की जिंदगी के सन्दर्भ में भारत भारद्वाज कहते हैं- लाखों अंसारी बुनकरों की छोटी जिंदगी की बड़ी कहानी है यह उपन्यास। बुनकरों के जीवन की त्रासदी को लेखक ने बहुत ही जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है। मतीन बिनता रहता है जैसे वह लाग नहीं जिंदगी का अंतराल बुन रहा है । इनके कथानायक सामाजिक, राजनीतिक विद्रूपताओं से बहुत अधिक संघर्ष नहीं करते। झीनी झीनी बीनी चदरिया में शोषित वर्ग यानी साड़ी बुनकरों का संघर्ष दिखता है। मतीन पढ़ा-लिखा नहीं है, शोषित होते हुए भी वह वह शोषकों से कोई समझौता नहीं करता। इकबाल के मार्फ़त लेखक ने वर्ग संघर्ष को चित्रित किया है। इकबाल के संघर्ष के बारे में बिस्मिल्लाह लिखते हैं- इकबाल के अल्फाज अंगारों की तरह जल रहे हैं- यह कटौती, यह साजिश, यह बद- इन्तज़ामी ख़त्म होनी चाहिए। सरमायादारों की तिकड़में अब टूटनी चाहिए और आम बुनकरों को उनका हक़ मिलना ही चाहिए। हमारे बापों ने भले ही सब कुछ बर्दाश्त किया, पर हम नहीं करेंगे। हम एहतेजाज करेंगे। इकबाल क्रांति की बात तो नहीं करता, लेकिन शोषण के खिलाफ बुनकरों को संगठित कर संघर्ष का ऐलान करता है।

निष्कर्षत: हम पाते हैं कि अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने समय के अन्य साहित्यकारों की अपेक्षा निम्न मध्यवर्गीय मुस्लिम समाज का प्रतिनिधित्व अपने कथा साहित्य में वैचारिक परिप्रेक्ष्य में करते हैं। इनके उपन्यासों से गुजरते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि वैचारिक धरातल पर ये नारा नहीं लगाते और न ही उसका प्रचार-प्रसार करते हैं। उपन्यासों में अपने पात्रों के माध्यम से जीवन मूल्यों को इस तरह चित्रित करते हैं कि लगता ही नहीं है कि कथा नायक कोई गूढ़ दार्शनिक बात कह रहा है। अब्दुल बिस्मिल्लाह

के उपन्यास कल्पना से यथार्थ की यात्रा न होकर यथार्थ से यथार्थ की यात्रा है। बिस्मिल्लाह ने कथ्य और भाषा को इस तरह से पिरोया है कि उसमें गूढ़ सैद्धांतिक बात भी कथा की प्रवाह में सहज रूप से अभिव्यक्त हो जाती है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

आधार ग्रंथ

1. बिस्मिल्लाह, अब्दुल, समर शेष है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण,1989
2. बिस्मिल्लाह,अब्दुल, झीनी झीनी बीनी चदरिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1987
3. बिस्मिल्लाह, अब्दुल, मुखड़ा क्या देखे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1996
4. बिस्मिल्लाह, अब्दुल, ज़हरबाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1994
5. बिस्मिल्लाह, अब्दुल, दंतकथा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1990
6. बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 2008
7. बिस्मिल्लाह, अब्दुल, रावी लिखता है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 2010
8. बिस्मिल्लाह, अब्दुल, कुठाँव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 2019

सहायक ग्रंथ-सूची

1. शेख, बाबा रसूल, अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में मुस्लिम समाज, अमन प्रकाशन, कानपुर
2. सं. सुंदरलाल कटारिया- टेढ़ी-मेढ़ी सीढ़ियाँ, सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1976
3. बिस्मिल्लाह, अब्दुल, मेरी प्रिय कहानियाँ, राजपाल एण्ड संस , दिल्ली, संस्करण 2017
4. मक्रानी, वसीम, अब्दुल बिस्मिल्लाह का कथा साहित्य, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2009
5. बिस्मिल्लाह, अब्दुल, किसके हाथ गुलेल, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2014

6. बिस्मिल्लाह, अब्दुल, कविता फिर लिखी जाएगी, शिल्पायन प्रकाशन, संस्करण 2012,
7. बिस्मिल्लाह, अब्दुल , मध्यकालीन हिन्दी काव्य में सांस्कृतिक समन्वय, हिंदुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद, संस्करण 1985 (भूमिका-जगदीश गुप्त)
8. बिस्मिल्लाह, अब्दुल, विमर्श के आयाम, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2006,
9. बिस्मिल्लाह, अब्दुल, उत्तर आधुनिकता के दौर में, नयी किताब प्रकाशन,दिल्ली, संस्करण 2014
10. वृहत हिन्दी कोश, ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 1992
11. संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण 1996
12. Anand Navneet and Akhtar, shamin, sociology, sepectum books (p) ltd. New Delhi, edition 2009
13. नगेन्द्र, साहित्य का समाजशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण 1982
14. तिवारी, गोरखनाथ, अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2008
15. सिंह, वासुदेव, हिन्दी संतकाव्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2001,
16. संस्कृत्यायन, राहुल, मानव-समाज, महादेव साहा (संशोधन कर्ता), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2012,
17. राजशेखर, काव्य मीमांसा, चौखंभा संस्कृत सीरीज, काशी, पहला संस्करण 1934
18. डब्ल्यू एच् हडसन – इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ लिटरेचर
19. दास, श्यामसुंदर, साहित्यालोचन, राजकमल प्रकाशन,दिल्ली, 2015
20. प्रेमचंद, कुछ विचार, डाइमंड पॉकेट बुक्स, दिल्ली, 2010
21. विद्याभूषण और डी.आर. सचदेव, समाजशास्त्र के सिद्धांत, किताब महल, दिल्ली , 2013

22. एल.ए.कोजर : सोशियोलोजी थ्रू लिटरेचर / गृहीत- विश्वंभरदयाल गुप्ता : ग्रामीण समाज का समाजशास्त्र
23. एलिनवुड, द सोशियोलॉजी ऑफ लिटरेचर
24. सेमुएल कोइनिंग, समाजशास्त्र , अनुवाद-डॉ. एस.पी. जैन
25. डी.पी. मुखर्जी, डाइवर्सिटीज़
26. जे.एस.एच , सोशियोलॉजी ऑफ लिटरेचर
27. बर्न्स, सोशियोलॉजी ऑफ लिटरेचर
28. पाण्डेय, मैनेजर, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, तृतीय संस्करण, 2006
29. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2012
30. प्रेमचन्द, प्रेमचन्द के श्रेष्ठ निबंध, ज्योति प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2003,
31. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, साहित्य सहचर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2013
32. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
33. राय, गोपाल, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2019
34. तिवारी, नित्यानन्द, साहित्य का शास्त्र: आरंभिक परिचय, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2010
35. एस.एस. प्रावेर, कार्लमार्क्स एंड वर्ल्ड लिटरेचर (socialism and democracy)
36. डव्ल्यु.जे. हार्वी, केरेक्टर एंड द नॉवेल
37. जॉन राकबैल, फेक्ट इन फिक्शन
38. अंटोनियो ग्राम्शी, सेलेक्शन फ्राम कल्चरल राइटिंग
39. जैन,निर्मला,(सं) साहित्य का समाजशास्त्रीय चिन्तन (उपन्यास का समाजशास्त्र : कुछ समस्याएँ ,अनुवाद.शांतिस्वरूप गुप्त)

40. जार्ज लुकाच, स्टडीज़ इन यूरोपियन रियालिज़्म

41. लूसिए गोल्डमान, द सोशियोलॉजी ऑफ लिटरेचर-:स्टेट्स एंड प्रॉब्लेम्स ऑफ मेथड (लेख) संपादक- एम.सी.एलबर्ट और अन्य , (http://unesdoc.unesco.org/)

42. जार्ज लुकाच, द थियरी ऑफ द नॉवेल (1971) (https://analepsis.files.wordpress.com)

43. लूसिए गोल्डमान, द सोशियोलॉजी ऑफ लिटरेचर

44. एलन स्विंगहुड, द सोशियोलोजी ऑफ लिटरेचर

45. एम.सी.अल्ब्रेख्त, शायकोलोजिकल मोटिव्स इन द फिक्सन ऑफ जूलियन ग्रीन

46. रेमंड विलियम्स, द लॉन्ग रेवलूशन , (https://books.google.co.uk)

47. टेरी इगल्टन, क्रिटिसिज़्म एंड आइडियोलॉजी (http://www.msu.ac.zw/)

48. रेमंड विलियम्स, पालिटिक्स एंड लेटर्स (www.versobooks.com)

49. माइकेल जेराफ़, द नावेल एज़ लिटेरेरी फॉर्म एंड सोशल इंस्टीच्युट

50. जोसेफ०एस०रुचेक, द सोशियोलॉजी ऑफ लिटरेचर

51. पाण्डेय, मैनेजर, शब्द और कर्म, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1997

52. मिश्रा, राजेन्द्र, साहित्य की वैचारिक भूमिका, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण

53. फकरुद्दीन , डॉ. शेख शरफोद्दीन, अब्दुल बिस्मिल्लाह के साहित्य में संघर्षरत आम आदमी, वान्या पब्लिकेशन ,कानपुर, 2017

54. स्वर्णलता, स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि (प्रथम सं.) जयपुर : विवेक पब्लिशिंग हाउस,1975

55. यादव, चन्द्रदेव, (सं.) अब्दुल बिस्मिल्लाह का कथा साहित्य, चंद्रलोक प्रकाशन ,कानपुर , 2009

56. चंद्र, बिपिन, आजादी के बाद का भारत, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली 1991

57. मुक्तिबोध, एक साहित्यिक की डायरी, भारतीय ज्ञानपीठ , नई दिल्ली,2014

58. कालभोर, गोपीनाथ, धर्मनिर्पेक्षता और राष्ट्रीय एकता, जयुपर, सं. 2000,

59. राधाकृष्णन, डॉ. सर्वपल्ली, हमारी विरासत (अनु. विजय मल्होत्रा), पेंगविन रेंडम हाउस, इंडिया ,2020

60. चंद्र,बिपिन, आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, 1996

61. त्रिपाठी, चंद्रकला (लेख-अनदेखे अंधेरो की कथा)

62. यशपाल, झूठा सच, दूसरा भाग , लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद , 2010

63. राजकिशोर (सं.),भारतीय मुसलमान : मिथक और यथार्थ,वाणी प्रकाशन , दिल्ली ,2012

64. दुबे, कुमार अभय (सं.) , बीच बहस में सेकुलरवाद, वाणी प्रकाशन , दिल्ली ,2005.

65. शर्मा, गीतेश , साम्प्रदायिकता एवं साम्प्रदायिक दंगे,समायोजन प्रकाशन , कलकत्ता, 1985

66. मालती, डॉ. के.एम, स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य, वाणी प्रकाशन,2010

67. वर्मा, महादेवी, श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन , इलाहाबाद , 2008

68. कस्तवार, रेखा, स्त्री-चिंतन की चुनौतियां, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,

69. अवस्थी, ओम,रचना प्राक्रिया,राष्ट्रभाषा संस्थान , दिल्ली ,1985

70. गोर्की, मैक्सिम, मैंने लिखना कैसे सिखा, लेखन-कला और कौशल, 1986

71. डॉ. बेचन, आधुनिक कथा साहित्य चरित्र और विकास, सन्मार्ग प्रकाशन , दिल्ली 2010

72. टंडन, प्रताप नारायण, हिन्दी उपन्यासों में कथा शिल्प का विकास,हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ, 1956

73. यादव, राजेंद्र, कहानी: स्वरूप और संवेदना.वाणी प्रकाशन , दिल्ली 1977

74. डॉ. हेमलता, नई कहानी की संरचना,किताबघर प्रकाशन , दिल्ली , 2013

75. सिंह, नामवर, कहानी नई कहानी,लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ,2006

76. टंडन, डॉ प्रताप नारायण, हिन्दी कहानी कला, हिन्दी समिति सूचना विभाग ,लखनऊ, 1970

77. शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद, कहानी का रचना विधान ,हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय , बनारस 1961
78. सिंह, डॉ. कामेश्वर प्रसाद, नई कहानी और मध्यवर्ग,विजय प्रकाशन मंदिर प्राइवेट लिमिटेड , 1988
79. गौतम, डॉ. सुरेश, लोक साहित्य: अर्थ और व्याप्ति, संजय प्रकाशन , दिल्ली,2015
80. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव, लोक साहित्य की भूमिका, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड , इलाहाबाद,1957
81. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन , इलाहाबाद 2010
82. नेहरू, जवाहर लाल, डिस्कवरी ऑफ़ इंडिया, पेंगविन प्रकाशन, इंडिया,2008
83. तिवारी, गोरखनाथ, अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, (2008)
84. नवले, डॉ. भाऊसाहब नवनाथ ,उपन्यासकार अब्दुल बिस्मिल्लाह की संघर्ष-चेतना , अमन प्रकाशन, कानपुर सन् 2007
85. यादव, सं. चंद्रदेव, अब्दुल बिस्मिल्लाह का कथा-साहित्य, , अनंग प्रकाशन,दिल्ली -2005
86. पटेल, डॉ. तसनीम, समय के साखी : प्रमुख मुस्लिम उपन्यासकर, आशीष प्रकाशन, कानपुर - 2011
87. खान, डॉ. एम. फ़ीरोज़, मुस्लिम विमर्श : साहित्य के आईने में, वाङ्मय प्रकाशन, अलीगढ़- 2012
88. राय, गोपाल, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथी आवृत्ति : 2014
89. मधुरेश, हिन्दी उपन्यास का विकास, सुमित प्रकाशन, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण : 2011
90. राल्फ,फॉक्स, उपन्यास और लोक-जीवन, अनु- नरोत्तम नागर, भूमिका-रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन (प्रथम) संस्करण 2015, नई दिल्ली

91. श्रीवास्तव, परमानन्द, उपन्यास का पुनर्जन्म, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1995, आवृत्ति-2015
92. सं. भीष्म साहनी, रामजी मिश्र, भगवती प्रसाद निदरिया,आधुनिक हिन्दी उपन्यास (भाग-1) राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण : 1976, तीसरा संस्करण-2016, नई दिल्ली
93. सिंह,नामवर(सं) ,आधुनिक हिन्दी उपन्यास (भाग-2), राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2010, आवृत्ति : 2014,
94. सिंह,बच्चन, उपन्यास का काव्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, पहला संस्करण : 2008, नई दिल्ली
95. सिंह, त्रिभुवन, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद , हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस, प्रथम संस्करण : 1955
96. श्रीवास्तव, परमानन्द ,उपन्यास के विरुद्ध उपन्यास , लोकभारती प्रकाशन, संस्करण : 2012, नई दिल्ली
97. शंभुनाथ ,हिन्दी उपन्यास : राष्ट्र और हाशिया, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2016, नयी दिल्ली
98. विजयलक्ष्मी ,डॉ. एलाङ्बम ,समकालीन हिन्दी उपन्यास समय से साक्षात्कार, राधाकृष्ण प्रकाशन, पहला संस्करण 2006, पहली आवृत्ति : 2009, नयी दिल्ली
99. एन. मोहनन, समकालीन हिन्दी उपन्यास, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2013, पहली आवृत्ति 2015, नयी दिल्ली
100. जलील, डॉ. वी. के. अब्दुल(सं), समकालीन हिन्दी उपन्यास : समय और संवेदना, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2006, पहली आवृत्ति 2013, नयी दिल्ली
101. पाण्डेय, अरुण कुमार, भारतीय समाज और हिन्दी उपन्यास, दिव्यम् प्रकाशन 2017, दिल्ली
102. सिंह,प्रभाकर, (सं)उपन्यास : मूल्यांकन के नये आयाम, सं., प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, वाराणसी 2014
103. यादव , वीरेन्द्र, उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2009, नयी दिल्ली

104. कुमार , प्रवीण, मध्यवर्ग इतिहास एवं उपन्यास , स्कालर वर्ल्ड, संस्करण 2015, नयी दिल्ली

105. परदेशी, डॉ. अर्चना ,हिन्दी साहित्य विविध विमर्श, चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर , प्रथम प्रकाशन 2016

106. सिंह,पुष्पपाल ,21 वीं शती का हिन्दी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, पहला संस्करण : 2015

107. पाण्डेय, मैनेजर, उपन्यास और लोकतंत्र, वाणी प्रकाशन, संस्करण-2013

108. पाण्डेय, मैनेजर, भारतीय समाज में प्रतिरोध की समस्या, वाणी प्रकाशन संस्करण-2013

109. शंभूनाथ, हिंदी उपन्यासः राष्ट्र और हाशिया, वाणी प्रकाशन, दिल्ली प्रकाशन- 2016

वेबसाईट/ ब्लॉग

1. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%85%E0%A4%B2-%E0%A4%AB%E0%A4%BC%E0%A4%BE%E0%A4%A4%E0%A4%BF%E0%A4%B9%E0%A4%BE
2. https://www.hindisamay.com/contentDetail.aspx?id=2442&pageno=1
3. https://samalochan.blogspot.com/2019/06/blog-post_19.html
4. https://www.outlookhindi.com/view/general/who-we-were-and-what-we-have-become-writes-abdul-bismillah-32774
5. http://akhrawat.blogspot.com/2013/04/blog-post_6.html

पत्रिकाएँ -

1. गोपाल राय(सं.)(1987) समीक्षा, त्रैमासिक अक्टूबर- दिसंबर 1987, पृष्ठ सं.11
2. पुस्तक वार्ता, द्विमासिक समीक्षा पत्रिका, अंक 46 मई-जून 2013
3. डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद (सं), वांगमय, त्रैमासिक, (कथाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह अंक), अक्तूबर-दिसम्बर 2015,
4. पहल पत्रिका, लेख- प्रो. सूरज पालीवाल, अंक-जून 2019